साहित्य हृदय

प्रथम भाग

कान् पृच्छामः सुधा स्वर्गे निवसामो वयं भुवि ।
किम्वा काव्य रसः स्वादुः किंवा स्वादीयसी सुधा ॥

रचयिता

उपाध्याय श्रीहरिश्चन्द्र शर्म्मा

सम्पादक

नर्मदेश्वर प्रसाद उपाध्याय
एम. ए. एल एल बी.

पुस्तक मिलने का पता—
पं० नर्मदेश्वर प्रसाद उपाध्याय
एम. ए. एलएल. बी.
वकील—हाईकोर्ट—प्रयाग।

प्राणनाथ,

सुदामा के सदृश मुझे इस उपायन को आपके चरणों में समर्पण करते लज्जा लगती है किन्तु जैसे सुदामा के गृह में उससे और कोई विशेष वस्तु नहीं थी, विचारे करते ही क्या ? वा यों कहें कि जैसे सेवरी अनेक फलों को संग्रह कर, आप की बाट जोहती थी, पधारने पर साश्रु प्रेमसहित अर्पण कर अपने को कृतार्थ माना, वैसे ही साहित्य के अनेक उद्यानों, नदी और निर्झरों से संगृहीत यह साहित्य-हृदय, आपको, हिन्दी-साहित्य के नायक वा हिन्दी कविता के कुल देवता के नाते सविनय समर्पण करता हूँ और प्रार्थी हूँ कि 'साहित्य हृदय' को सहृदय अपना कर इसके हृदय को साहित्यमय कर दें।

आप की कृपा का आभारी

हरिश्चन्द्र।

सूची

प्रवेशिका

विचित्रबनक बनानेवाले वृन्दाबन विहारी को, संसार के विमोहित करने वाले, व्यवहार एवं हृदय को विकसित और लोचनों को अलोल करने वाली छटाओं के अर्थ, भक्ति-रस से असंस्कृत हृदय को भी वाधित होना कर्त्तव्य अथवा उसका अभाव कृतघ्नता है। विशेषतः जब वह हम सबों के द्वारा "निमित्तमात्रं भव सव्य साचिन्" सा कोई ऐसी अनोखीसृष्टि का सिरजन करा देता है जिसे देख सुविख्यात यूनानी स्टाच्यू बनाने वाला सा कर्त्ता स्वयं प्रेमी बन जाता है और अहंकार को उसी के आकार में निराकार कर देता है, ऐसी अवस्था में पाठकों की अनुग्राहकता और साहित्य रसज्ञता पर पूर्ण विश्वास है कि इस सनातनी प्रथा के सम्पादन में, संसारसाहित्य के सिरजनहार को धन्यवाद देने में सम्मिलित होंगे।

साहित्यसंसार की वस्तुतः समालोचना और भावरसना को सलोनी करनेवाली रचना को नागरी देवी के अर्चना में और आप की विवेचना में प्रस्तुत करने के सौभाग्य के उप-लक्ष्य में सम्पादक यह आवश्यक समझता है कि कुछ रचना

और रचयिता के विषय में निवेदन कर देना समयानुकूल है जैसा कि स्पेकटेटर (Spectator) कहता है "मैंने यह अनुभव किया है कि पाठकगण कभी ही किसी पुस्तक को रुचि से पढ़ते हैं जब तक यह नहीं जान लेते कि लेखक साँवला है या गोरा, सुशील स्वभाव का है या तिग्म, विवाहित है अथवा अविवाहित, और इसी प्रकार की वार्ता जो कि लेखक के आशय के समझने में सहायक होती हैं"।

इन लेखों के लिखने वाले को आपने देखा ही होगा कि भारतेन्दु के नाम को धारण करने का सौभाग्य प्राप्त है और यदि यही नागरी देवी के दरबार में पुरस्कार पाने का पर्य्याप्त सार्टिफिकेट होता तो आप लोगों की गुण-ग्राहकता में कलङ्क लग जाता। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि कौतुकी रसज्ञ यह अवश्य प्रश्न कर बैठेंगे कि सत्य हरिश्चन्द्र और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पश्चात् हरिश्चन्द्र नाम शरद का बादल हो गया था, अब उपाध्याय हरिश्चन्द्र कौन सा अनोखा अम्बु लेकर आए हैं? हम को उत्तर में केवल इतना ही कह देना पर्य्याप्त है कि साहित्य देवी को एसे (Essay) आरसी देने आए हैं जिसमें वह अपने साहित्य के रत्नों को लिखित विषय-अगूढी पर खचित देख प्रसन्न और पुलकित हो जायँ।

एसे (Essay) पश्चिमीयों में उस लेख को कहते हैं जिसमें किसी विषय पर लेखक पूर्व के लेखकों के रत्न-वाक्यों से अपने मत वा विवेचना की पुष्टि करता है और उनके भावों से विरुद्ध होने पर उनका खण्डन भी करता है। एसे (Essay) उस लेख को वास्तव में कहना चाहिये जिसको अंगरेज़ी में कहते हैं कि Last word on the subject (विषय पर निःशेष लेख) यही एसे (Essay) का उद्देश्य वा प्रथम कर्त्तव्य

है। वैज्ञानिक दृष्टि से जो लेख होंगे वे वास्तव में ऐसे ही होते हैं। उसमें तद्विषयक् वार्ता आद्यन्त वर्णित होगी। किन्तु साहित्य दृष्टि से ऐसे लेख नीरस और अरोचक हो जायँगे। इससे साहित्य के एसे (Essay) के लेखक को इन औषधियों की गोलियों को रोचक बनाने के लिए रसराज शृङ्गार की शहद और अलंकारों का रजत (चाँदी का वरक) देना पड़ता है। गम्भीर भावों को भी हृदय ग्राही बनाना और गद्य में भी पद्य की छटा दिखाना एसेइस्ट का कर्त्तव्य है। यद्यपि किसी पंडित ने कहा है कि—

"अर्थ विशेषो कव्वो भाषा जैशी तैशी"

तथापि एसेइस्ट को अर्थ की गम्भीरता के साथ साथ भाषा का लालित्य भी परमावश्यक है। "सर्वे चौराः कवयः" होने ही से वह उच्च कक्षा का लेखक नहीं समझा जा सकता है। उसमें Originality (नवीनता) भी होना परमावश्यक है। यदि वह और कवियों और लेखकों के भावों को संचित कर मालाकार सा वेध कर कोई माला बना दे तो वह एसेइस्ट (निबन्धकार) वास्तव में नहीं कहा जा सकता किन्तु कोषकार। एसेइस्ट को स्वयं भी अपना मत प्रकाश करना आवश्यक है जिसमें कुछ अनोखापन, नवीनता और विशेषता हो। इसीसे Essay एसे के लेखकों को अंगरेज़ी साहित्य में बड़ी उच्च कक्षा दी गई है और वास्तव में गद्य लेखकों के शिरमौर समझे जाते हैं।

उपाध्याय हरिश्चन्द्र जी इस दुस्तर कार्य्य में कहाँ तक कृतकार्य्य हुए हैं इसका समय और नागरी रसज्ञों ही पर निर्णय निर्भर है। किन्तु इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि इन लेखों के पढ़ने से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि यह इस

लिये नहीं लिखे गये क्योंकि कुछ लिखना अवश्य है, जैसा कि पत्र के सम्पादकों को लिखना पड़ता है, न इसलिए कि साहित्य के सैनिक वा सरदार बनने के लिए, किन्तु इनका उद्देश्य वही है जिसका अनुकरण कर श्यामा और दहियल गाते हैं और स्वयं ही सुन कर मुग्ध हो जाते हैं। यदि आप भी इनको पढ़ मुग्ध और प्रसन्न हो जायँ तो लेखक को धन्यवाद न दीजिए किन्तु उन रसज्ञों को जो लेखों की बहुमूल्यता निर्णय कर आपकी सेवा में उपस्थित कर रहे हैं। लेखक की तुष्टि तो लिख देने ही पर हो चुकी थी चाहे रसज्ञों के कान तक पहुँचे या नहीं। जिनको साहित्य देवी शक्ति देती हैं वे सदा ऐसे ही निर्द्वन्द होते हैं। यदि यह कह दें कि हिन्दी साहित्य इन लेखों को अपना अमूल्य आभरण समझेगा तो कदाचित् अतिशयोक्ति न हो। क्योंकि योग्य को योग्य न कहना न केवल अयुक्त है किन्तु असत्य भी है।

इस समय ऐसे लेखों की नागरी में बड़ी आवश्यकता थी और जब सम्पादक ने यह सुना कि प्रातः स्मरणीय मालवीय जी लोगों से लेख लिखवा रहे हैं तो मुझको यह एकाएक स्मृति हुई कि इन अपूर्व निबन्धावलियों को प्रकाशित करें।

उपाध्याय हरिश्चन्द्र जी, स्वर्गीय प्रेमधन जी के चौथे अनुज हैं। बाल्यावस्था ही से अध्यात्म सम्पत्ति प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा थी। उपनिषद् की आज्ञा कि "द्वे विद्ये वेदितव्य इति हस्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति पराचैवापराच।" (मुण्डक) उनको सत् संगति द्वारा विदित हो गई थी। अस्तु यद्यपि पठन पाठन में उन्हें अनेक विघ्न पड़े, जिनको आधिदैविक बाधा कहनी चाहिए, किन्तु ३५ वर्ष की अवस्था तक पहुँचते पहुँचते उन्होंने अंगरेज़ी साहित्य के ग्रन्थरत्नों को परीक्षार्थी

विद्यार्थी सा अभ्यास कर डाला, तत्पश्चात् संस्कृत साहित्य की वारी आई, जिसके उपरान्त पराविद्या में पराकाष्ठा की अभिलाषा से वेदान्त ग्रन्थों का अनुशीलन आरम्भ हुआ। उपनिषद् और गीता से वे ऐसे मोहित हो गए कि दश उपनिषद् और अट्ठारह अध्याय गीता कण्ठस्थ कर प्रति दिवस स्वाध्याय करते और मेक्सम्यूलर के इस वाक्य को कि भारतीय ब्राह्मण जंगम पुस्तकालय हैं चरितार्थ करते हैं। वे करीब १८ वर्ष से गृह कार्य्य को अग्राह्य स्थिर कर, अध्यात्म के अध्ययन में प्रवृत्त हैं जिसे वे कहते हैं कि सत्यतः गृहकार्य्य यही है। इससे इन निवन्धावलियों में प्रत्यक्षतः दो प्रकार की विषयावलि देख पड़ेंगी। एक तो वह जब कि वह भगवती सरस्वती की अर्चना में लगे थे और कादम्बिनी मासिक पत्र के साहित्य सौदामिनी स्तम्भ के लिए लिखते थे और दूसरी वह जब कि उन्होंने साहित्य के कपाट को बन्द किया और वेदान्त और अध्यात्म में अनुरक्त हुए।

उपाध्याय हरिश्चन्द्र जी को संस्कृत में वाणभट्ट की शैली बड़ी ही रोचक मालूम पड़ती है इससे आप सब विरोधालङ्कार की भरमार और विशेषणों की विशेषता और प्रचुरता प्रायः सबी लेखों में पाएँगे। किन्तु बाण का अनुकरण करते हुए भी वह कितने Original हैं यह देख आप अवश्य विस्मित होंगे।

अँगरेज़ी के लेखकों में Cowper काउपर उन्हें बड़ा ही पसन्द था। काउपर लिखता है कि "मैं तो उन शौकीनों में हूँ जो दिन रात्रि अपने ही शृङ्गार में लगा रहता हूँ।" इसी मार्ग का अवलम्बन कर हरिश्चन्द्र जी ने "हमारी दिनचर्य्या" "हमारी मसहरी" आदि लेख लिखे हैं किन्तु इनमें और काउपर में आप सहज ही वह भेद पाइयेगा जो ज्ञान संचित हृदय और

ससारी अन्तःकरण में देखने में आता है।

अँगरेज़ी के प्रकृति भक्त कवि बर्डसवर्थ की प्रकृति उपासना ने इनके चित्त को मोह लिया था इससे ये भी प्रकृति के बड़े उपासक हैं। प्रकृति जब बड़ी उच्छृङ्खल हो उत्पात मचाने लगती है और सामान्य जन अपनी कोठरियों में कूपमण्डूक बन बैठते हैं, तब भी इनकी भक्ति इन्हें बाहर ही आनन्द की सामग्री उपस्थित कर देती है। इनके लेखों में आप जो वस्तुतः प्रकृति का चित्र है, उसे आप पाइयेगा, चाहे उसके वर्णन में साहित्य दर्पण या कविकुलवार्ता के नियम प्रतिपद में भङ्ग क्यों न होते हों। प्रकृति का चित्रण इनका बड़ा रोचक, नवीन, और कवितामय है जो कि पाठक को शीघ्र ही उनके प्रकृतिभक्त होने का प्रतीत करा देता है।

इन निवन्धावलियों का दोष केवल यही है कि सामान्य जन के योग्य नहीं हैं और न उनके लिए वह लिखी गई हैं। साहित्य मर्मज्ञ-अवश्य इस साहित्य-पम्पासर में निमज्जन करने योग्य हैं और इनको अवश्य पढ़ने के पश्चात् भी साहित्य सुगन्धिसञ्चित समीर इनके मन को उल्लासित किया करेगी।

आशा है कि इसका प्रकाशन उपाध्याय हरिश्चन्द्र जी के चित्त को इतना प्रसन्न करेगा कि वे कुछ समय साहित्य सेवा के लिए भी निकालने का प्रयत्न करेंगे।

जब कि इस पुस्तक का प्रकाशन आरम्भ किया, तब यही निश्चय किया था कि उपाध्याय जी के कुल लेखों को एक ही पुस्तक में प्रकाशित कर देंगे किन्तु यह देख कि पुस्तक अभी ही २०० पृष्ठ से अधिक हो गई और यदि शेष लेख भी प्रकाशित कर दिये जायँ तो करीब ४०० पृष्ठ की पुस्तक होने से आकार में बेडौल हो जायगा यह निश्चय किया कि "साहित्य

हृदय" को दो भागों में प्रकाशित करें । दूसरे भाग में निम्न-लिखित लेख प्रकाशित होंगे । १-धैर्य्य २-ज्येष्ठ ३-भक्तियोग ४-स्वास्थ्य ५-सन्यासयोग ६-ब्राह्मण ७-हमारी कुटी ८-हमारा कृत्रिम शैलगृह ९-बदला १०-सत्य ११-मोह महिमा १२-श्री सुदामा जी १३-निशीथोच्छ्वास १४-मध्याह्न मनः कल्पना इत्यादि ।

काव्यतीर्थ साहित्य शास्त्री डाक्टर इन्द्रदेव प्रसाद चतुर्वेदी ने प्रूफ के देखने में बड़ी भारी सहायता दी है जिसके अर्थ मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ ।

आशा है कि हिन्दी साहित्य मर्मज्ञ इस पुस्तक को ऐसे अपनाएँगे कि शिघ्र ही मुझे दूसरा संस्करण, जो कि विशेष शुद्ध और सुचारु होगा, निकालने का सौभाग्य प्राप्त हो ।

सम्पादक
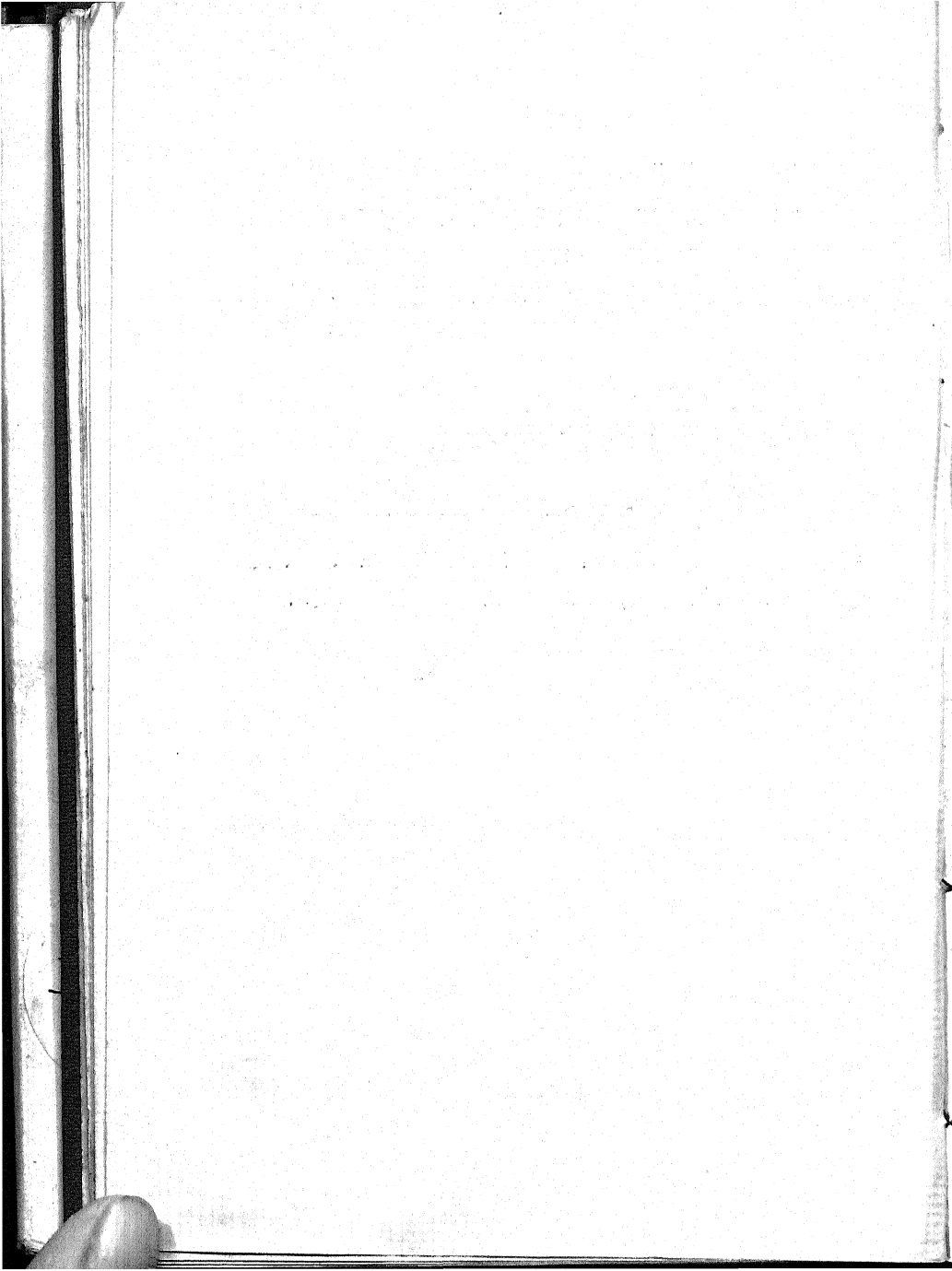
साहित्य हृदय

मित्र

सुहृदः स्नेहसम्पन्ना लोचनानन्ददायिनः ।
गृहे गृहवतां नित्यं नागच्छन्ति महात्मनाम् ॥

अर्थात् स्नेह से पूर्ण हृदय, लोचन के आनन्द देने हारे सुहृद पुरुष तो गृही महात्मा के गृह में भी नित्य नहीं आते। तो निश्चय वह अति बड़भागी तथा इस लोक के परम सम्पत्ति का अधिष्ठाता, और सदा शोक शून्य है, जिसे इस लोक में मित्र मिले हैं, क्योंकि इस मर्त्य लोक में यही एक देवता है जिसके सन्निकट जाकर मनुष्य अपने सच्चे स्वरूप में हो, अन्तःकरण की हाट को बाहर लगाता है। अथवा यों कहिए कि अन्तःकरण रूपी उद्यान के कपाट को खोल देता है और उसके साथ साथ विश्वास पूर्वक घूमता और पूछता कि कौन से वृक्ष की वृद्धि करनी चाहिए और कौन का समूल नाश करने योग्य है, केवल नेत्र सुख देने हारे फूलों का रखना समीचीन है, वा शोभाहीन, बेढंगे फल के वृक्ष को भी रखना उचित है, जिसमें कोई तो महफिल की सजावट के लिए, कोई

केवल गुण वा रूप के अर्थ और कोई हृदय आह्लाद के हेतु हों। इससे इस अपूर्व अलौकिक सम्पत्ति को जो इस लोक में दुर्लभ तथा कभी कभी सुलभ है, यदि बहुत परिश्रम से भी साध्य हो तौ भी प्राप्त करना चाहिए। दुर्लभ होने का यह कारण है कि वह अपना प्रतिरूप होता है, यानी दोनों के सौहार्द, पाण्डित्य, विचक्षणता, तथा जिनकी कुछ मन की वृत्तियों की धारा एक शैल से उठ कर एक ही समुद्र में गिरती हों और यदि दैववश वा कर्मवश इन चित्त रूपी नदियों का सम्मिलन हो तो तीर्थ-राज सी सबी स्थली निरख पड़ेगी, वा यही भूमि विश्व-नन्दन कानन की छवि धारण करेगी और सबी ठौर नेत्रोत्सव का सामान देख पड़ेगा। जैसे अषाढ़ की बूंदियों के पड़ते ही सब छिपी बनस्पतियाँ एकाएक उग उठती हैं, वैसेही मनुष्यों के यावत् आन्तरिक गुण हैं, प्रगट हो आते हैं, यानी कवि है वा पण्डित, शास्त्री है वा कर्म्मकाण्डी, तस्कर है वा साधु जो कुछ जिसमें गुण होता है वह सब अपने पूर्ण रूप से देख पड़ने लगता है।

हमने पढ़ा तथा देखा भी है कि मित्रों के मिल जाने से कवि को अपनी कविता शक्ति, तस्कर को अपने चौर्य, पण्डित को अपने पाण्डित्य तथा ज्ञानी को अपने ज्ञान का ज्ञान हुआ है। क्योंकि हम सब इसके पूर्व कौन कौन से सुख अनुभव किए हैं और कौन कौन से दुःख झेले हैं, वर्तमान में कौन सा सुख है और क्या आशा है, किन पर मरते हैं, और किन्हें देख जलते हैं, कौन से कवि हमें इस दुःखमई चिन्ता से पूर्ण मर्त्यलोक में भी स्वर्गसुख के निवास का सुख दिखाया है, अब इस जगत को क्या समझते हैं और पूर्व में क्या समझते थे, इन सब बातों के सुनने का अधिकार सिवाय मित्र

के और किस को है? इससे वह हमारे स्वरूप को देख कर कह सकता है कि हम किस योग्य हैं।

हम तो समझते हैं कि जैसे वह मकान जिसमें खिड़कियाँ नहीं हैं, रहने के योग्य नहीं होता, वा जिसमें क्षण भर ठहरने से मृत्यु की आशङ्का होती, वैसे ही वे मनुष्य जिन्हें की कोई सुहृद् मित्र नहीं है एक क्षण भर भी सहवास के योग्य नहीं होते। वे ऐसे मनुष्य हैं जिनके प्रवेश होते ही लोग नाक सिकोड़ने लगते और कहने लगते हैं कि साँस रुकने लगी, जी ऊब गया, अजी इस भयङ्कर राक्षस के आते ही सब मज़ा फीका पड़ गया, ऐसे वाक्यों से उनके कर्णों को आह्लादित करने लगते हैं, क्योंकि वह तो जङ्गली सा अनमेल चकित आ बैठेगा, और अपने सा चुप चाप एक स्थान को अपवित्र बनाये रहेगा, और यदि वह अपने उपमान के समान कोई नियत वाक्य भी बोलेगा तो हँसी वा ताड़ना की आवश्यकता आ पड़ेगी, क्योंकि वह निश्चय इतना बड़ा कुत्सित है कि किसी को अपना सा अधोमार्गगामी नहीं पाता, वा ऐसा दम्भपूर्ण हृदय है कि मैत्री के धरातल तक उतर नहीं सकता, वा चाणक्य सा नीति निपुण है, वा परम अविश्वस्त हृदय है, नहीं तो ब्रह्मा की सृष्टि में अपना प्रतिरूप क्यों न पाता? बहुतों ने कहा है और ठीक ही कहा है कि मैत्री का सुख बादशाह और शाहन्शाहों को नहीं मयस्सर है। कैसे हो, जब उन सब के बीच में अहर्निश नीति के गोले चलते रहते हैं, वा कुटिल, या चलस्वभाव नीति का समुद्र ऐसा आ पड़ा है जो उल्लङ्घन नहीं हो सकता। हमने इतिहासों में पढ़ा है कैसे एक नृपति दूसरे भूपति से मिलते हैं। वह एक तमाशा सा तो अवश्य होता है जिसमें विविध भाँति की स्वर्णमयी पताकाएँ फहराती तथा तूर्य्यरव के

भीम नाद से दिशायें वधिर हो जातीं, और भयङ्कर सेनाओं के आगमन से देश का देश उजाड़ हो जाता है, इसके सिवा और न कुछ सुना और न पढ़ा। उन्हें मित्रों के आपस का सरस सदालाप, वा वह आनन्द जो मित्रों के मिलने से होता है स्वप्न में भी दुस्तर है। क्योंकि मैत्री तो एक परम सुकुमार लता है, वह वहां कैसे उग सकती है, जहाँ पर आन्तरिक कूट-नीति के कीड़े सदैव उसे भक्षण करने को उद्यत रहते हैं। और यदि ये पुरुषव्याघ्र अपने पार्श्ववर्तियों से मैत्री करते तो वह "भक्ष्यभक्षकयोःप्रीतिर्विपत्तेर्कारणम्महत्" की भाँति होती, जैसा कि वूलज़े (wolsey) और टामस बेकट (Thomas Backet) एक समय में अपने स्वामियों के मित्र तथा उनके हृद्गत भावनाओं के वाहक थे, पर थोड़े ही क्रोध तथा द्वेषाग्नि के उठते ही उसने उन सबको अपने चटुल ज्वाल में भस्मी भूत कर दिया। गोल्ड स्मिथ (Goldsmith) ने भी राक्षस और बामन की कहानी में दिखाया है कि बड़े और छोटों की मैत्री में सदा छोटे की हानि देखी गयी है। यद्यपि मतिमान बेकन (Bacon) जो अपनी विद्या और बुद्धि के कारण सदा राजाओं ही की कृपा कटाक्ष पर निर्भर रहा, कहता है कि "लोक में मैत्री का अत्यन्ताभाव है, विशेषतः तुल्यों में जिसकी बड़ी प्रशंसा की जाती है। हां, मैत्री यदि सत्यतः कहीं है तो बड़े और छोटों में, या धनी और दरिद्रों में, यानी जब कि एक के भाग्य में दूसरे का पूर्ण रूप से समावेश हो सकता है।" ऐसी मैत्री तो स्वामी और भृत्यों में जो मैत्री होती है, वह होगी। किन्तु मैत्री तो सदा निष्कारण ही श्रेष्ठ और स्थायी होती है, पर हाँ, जब इस जगत के झमेले हम सबको चारों ओर से घेर लेते हैं, तो जिस देश से त्राण वा रक्षा होती, उसी को सब प्राणियों के लिये भी

हितकारी समझ लेते हैं, नहीं तो बेकन (Bacon) सा विचार शील मनुष्य ऐसा कथन क्यों करता? क्यों कि वही और जगह लिखता है कि "मित्रों के मिलने से हम सब का बुद्धि रूपी सूर्य्य उदय हो जाता है, जो तिमिर और झंझावातमयी भावनाओं का लोप कर, दुर्दिन से सुदिन करता है और तब मनुष्य अपने विचारों को मित्र के समक्ष श्रेणीबद्ध कर प्रकट करता, विना संशय के उन सबको कहता और देखता कि वे जब भाषा में किये जाते हैं तो कैसे लख पड़ते हैं और इस भाँति घंटे भर के संलाप से विशेष बुद्धिमान होता है, बनिसबत दिन भर अकेले चिन्तन करने के।" परन्तु ये सब बातें केवल तुल्योंही में पायी जा सकती हैं क्योंकि जब हम स्वामी अन्नदाता वा बड़े के सन्निकट जाते हैं तो उनकी भौंहें परखते हैं, न कि अपने मन की विविध भावनाओं को प्रगट कर, अपने अन्तः-करण की सम्पति दिखलाते हैं॥

यद्यपि परम ज्ञानी इमरसन (Emerson) ने जब इस-लोक में किसी को मित्र योग्य नहीं पाया तो खिझलाकर कहा "मित्र जैसा हम लोग चाहते हैं वह तो स्वप्न और कहानी की बात है। निस्सन्देह यदि हम भगवतकर्म्म में निष्ठ हो इस आत्मा को सर्वत्र व्यापक तथा कर्ता धर्ता जान, प्यार करते हैं, तो उसके पहले हमें आत्मा भी प्यार करती है। किन्तु मनुष्य में तो सत्स्नेह देखने में आसकता नहीं, इससे हम सब इस लोक में सदा अकले ही भ्रमण करते हैं," परन्तु हमारा मत इसके प्रतिकूल है, अर्थात् जो इस आत्म विद्या को भी पढ़ाना चाहते हैं, वा उस जगदीश्वर की भक्ति में लीन होना चाहते हैं तो उन्हें भी सत्संग के सिवा अन्यथा और कौन सा उपाय सुलभ है। इसीसे महामति सुक़रात को जगत के सकल पदार्थों के

बिना भी सब कार्य्य का निर्वाह होना सम्भव और सुलभ, परन्तु विना मित्र के कोई कार्य्य करना दुस्तर जान पड़ा, जब कि उसने यह कहा कि "विविध मनुष्यों की विविध भावनायें हैं किसी को अश्व, श्वान, मान वा धन की या जैसा उनका स्वभाव हो, चाह है, पर मैं तो इन सब के बदले में एक स्नेह सम्पन्न मित्र चाहूँगा"। इसी प्रकार मित्र की प्रशंसा में वाग्मी सिसरो (Cicero) कहता है, कि "वे जगत से सूर्य्य को लोप कर देना चाहते हैं जो मैत्री के विरुद्ध हैं, क्यों कि हम सब ने उस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर से इससे और कोई विशेष आह्लाद जनक वस्तु नहीं पाई है। इसलिये कि वे तो सदा वर्तमान हैं यद्यपि अनुपस्थित हैं, दरिद्र हैं पर तौभी धनी, अशक्त हैं पर तौभी स्वस्थ और सब से आश्चर्य्य तो यह है कि यद्यपि वे मर गए हैं तौ भी हम सब के साथ हैं" इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिसको इस लोक में मित्र नहीं उसे यह भूलोक जंगल वा उजाड़ सा है। क्योंकि बेकन कहता है "मनुष्यों का संघट्ट तस्वीरों की सजावट के सिवा और क्या है? क्योंकि न हम उन्हें प्यार कर सकते हैं न अपनी बीती वा उनकी बीती सुन सकते हैं।" अतिरिक्त इसके कि यह चित्र अच्छा है यहां चित्रकार ने प्रकृति को भी लजाया है, वा अपनी बुद्धिमानी को इस शीशे वा पत्र पर निवास दिया है। ऐसा ही तो हम सब जनसन्दोह को देखते हैं यानी जिन से कोई हृदय का सम्बध नहीं केवल आकृति मात्र से अर्थ है तो वह चित्र के सिवा और क्या है? इससे यदि इस लोक में सुख चाहे तो मित्र प्राप्त करने का उद्योग करे और यदि परमात्मा की कृपा से प्राप्त हो तो हृदय से भी अधिक प्यार करना उचित है। सुतराम् उसके गृह पर नित्य जाय यद्यपि मार्गकण्टकमय क्यों न हो और चाहे

ऐसा दुर्गम हो जहाँ कोई भी न जाता हो। क्यों कि वहाँ पहुँचने से हम सब के चिन्ता ज्वर से चञ्चल वृत्तियों का क्षणैक विराम होता और पुनरपि अपने सत्व में स्थित हो मनुष्य बालक सा प्रसन्न हो घर लौटता है।

कभी कभी हम सब किसी को मित्र मानकर धोखा भी खाते हैं जिसके कई कारण हैं। प्रथम तो जब कि हम लोग उसे जैसे सब मामूली चीज़ मोल लेते हैं, वैसे ही जान पहचान को भी मैत्री समझते हैं। दूसरे यह कि यह हमारे पेशे का या जो हम करते हैं वही यह भी करता है, समझ कर मित्र बना लेते हैं। इसी प्रकार जिनके मित्रों की संख्या बहुत होगी यदि विचार से देखियेगा तो उनके सत्यतः कोई भी मित्र नहीं मिलेगें, क्योंकि मित्र तो एक या अधिक से अधिक दो ही हो सकते हैं। इसलिये कि दुख, सुख, सम्पति विपत्ति के साथी तो विरले ही होते हैं चाहे सम्पत्ति में वहुत मित्र हों, पर जब जगत का तूफ़ान मनुष्य तरु पर आक्रमण करता और उसके डालपात छिन्न भिन्न कर उसे दीन कर देता है, तो ऐसे समय तो कम लोग हैं जो सहायता करें। इससे बहुत विचार कर किसी को मित्र की पदवी देनी चाहिये, यों तो बाज़ारू तौर पर सबी कह लिया करते हैं कि ये हमारे परम मित्र हैं, चाहे उनसे केवल प्रणामाशिष मात्र क्यों न हों। यों ही बहुतों को मैंने देखा है कि वे सकल जगत को मित्र कह पुकारेंगे चाहे उनके बग़ल में डेढ़ बालिश्त की छूरी सबी मनुष्य के लिये क्यों न हो? कौन जाने इसी कौटिल्य के छिपाने के अर्थ ही आपने ऐसा सरस शब्द का प्रयोग सामयिक समझा हो? ऐसे मनुष्य जो वचन के अत्यन्तात्यन्त मृदुल हैं त्रिकाल में विश्वास करने योग्य नहीं हैं, क्यों कि उनके हृदय में इतने कपाट हैं जिन्हें वे शायद यम के

सन्निकट भी बन्द रखना न चाहेंगे, मनुष्य को तो कौन कहे !

बहुतों के मित्र रहते भी हैं पर वे उन्हें नहीं समझ सकते जब तक कि वे जीवित हैं। ऐसे जन हमारी समझ में बड़े बेसमझ हैं। यानी इन से बढ़ के और कौन मूर्ख हो सकता है जो प्राप्त सम्पत्ति का अनादर करते और जब उसका अभाव होता तो कृपण सा, अपने सिर का बाल धुनते, जब कि उससे कोई लाभ नहीं हो सकता, इससे हम सब को चाहिये कि उसे जीते जी पहिचान लें, नहीं तो पीछे से केवल हाथ ही मलना रहता है।

मित्रों की कई श्रेणियाँ हैं, पहिली में, तो जो हम सब के अन्तःकरण का स्वामी है वा जो परम गोप्य कथाओं का श्रोता है, दूसरी में, जिसके साथ लड़कपन में पढ़ा और खेला है और तीसरी में, जिस्से हम लौकिक वा पारलौकिक विद्या पढ़ते वा सीखते हैं और यों तो मैत्री भाव सबी से रखना उचित है क्योंकि प्लूटार्क (Plutarch) कहता है "मित्र तो चाहे सहस्र भी हों और मुमकिन है कि वे एक भी मार्ग में न मिलें पर वैरी तो एक भी वायु सा सबी ठौर विराजमान रहता है"।

पुस्तकों की महिमा

द्राक्षा म्लानमुखी जाता शर्करा चाश्मतां गता ।
सुभाषित रसस्याग्रे सुधा भीता दिवं गता ॥
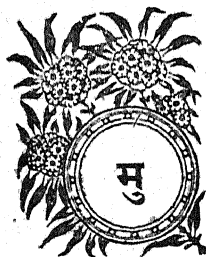
मुझसे यदि कोई पूछे कि हम किस पदार्थ की सम्पति से अपने को सम्पन्न वा धनी मानते हैं तो हम यही कहेंगे कि पुस्तकों के सञ्चय से सदा सञ्चित रहने से। क्योंकि इससे अधिक और कौन सुख है कि शान्त मन कमरे के किसी कोने में उन पुस्तकों को देखें जिन्हें हमारे कल्याण और मंगल के हेतु कवि ने रची हैं, वा जो हमें हँसी और दिल्लगी की बातों से सन् मार्ग में प्रवेश कराने का प्रयत्न करती हैं वा जो अपनी गम्भीर गिरा से हमें भी गम्भीर होने की शिक्षा देती हैं। कोई कहती कि उठो काम करो, समय थोड़ा है और कार्य्य बहुत है, कोई हमें परलोक वा इसी लोक की चिन्ता करातीं, कोई इस आत्मा के अद्भुत स्वरूप को दरसा चकित कर छोड़ देती है।

इसी से वाग्मी सिसेरो (Cicero) कहता है कि "वह कमरा जिस में अच्छी पुस्तकें नहीं हैं आत्मरहित शरीर सा है"। यद्यपि अपने देश के बड़े आदमियों के कमरे में जब मैं गया वा दैव वश यदि दो तीन दिन रहने की आवश्यकता हुई और पास में कोई पुस्तक नहीं रही, तो उनके यहाँ तुलसीकृत रामायण वा प्रेम सागर के अतिरिक्त और कोई ग्रन्थ न पाया और

वह भी न मिलता यदि भारतवर्ष की औरतें आस्तिक, ईश्वर-परायण, उनके गृह में न होतीं।

वे इस सम्पत्ति को नहीं समझ सकते क्योंकि इस सुख का अनुभव नहीं है। पर सर जान हारशेल (Sir John Harshel) ने एक कहानी कह अपने देश के ग्रामीणों को इस रस में कैसा कुछ आनन्द उठता है, यह दिखाया है कि एक गाँव में किसी लोहार ने 'धर्म्म की विजय' नामक रिचर्डसन (Richardson) का उपन्यास किसी भाँति पाया। इस पुस्तक को सन्ध्या के शान्त समय में उच्चस्वर से ध्यानावस्थित ग्रामीणों को सुनाया करता। यद्यपि यह पुस्तक छोटी नहीं थी तौभी प्रसन्नता पूर्वक उसने सब कथा को आद्यन्त सुना और जब नायक नायिका का संयोग दैववश हुआ और वे अपने गृह में गार्हस्थ धर्म्मानुसार स्थित हुए तो सारी सभा मारे आमोद के शोर मचाने लगी और कुछ ऐसी उस कथा में निमग्न थी कि गिरजाघर की ताली ले, शादी की खुशी का घंटा बजाया तथा बहुतों ने गिरजा घर में जा पाणिग्रहण के पुनीत भजन को गा कर जगदीश्वर को अनेक धन्यवाद दिया।

यह पुस्तकों ही में शक्ति है कि चाहे घर में बैठा हो किन्तु विश्व के सबी स्थलों में पहुँच जाय। किसी ने सच कहा है—

बैठ कर सैर मुल्क की करनी।
यह तमाशा किताब में देखा॥

चाहे अफ्रिका के तीव्र सूर्य्य से सन्तप्त रजत सा चमकता सहारा के वृहत मरुस्थल के निवासियों के दुःख का अनुभव करें, चाहे अमेरिका के प्रशस्त झीलों की प्रशान्त शोभा को देखें, चाहे सहस्त्रों रेल की ट्रेनों सा नाद करते हुए नायग्रादि के वृहत

प्रपातों के गम्भीर घोष को सुनें, चाहे घने लण्डन की बीथिओं में घूमें वा सुन्दरी पेरिस के सौन्दर्य्य को सराहें अथवा कश्मीर के खेतों में बैठ केसर की सुगन्धि घ्राण कर, हँसते २ विह्वल हो जायँ वा नगाधिराज हिमालय के प्रोत्तुङ्ग शिखरों पर आरूढ़ हो परमात्मा के औदार्य्य से रम्य वसुन्धरा की शोभा निरखें वा उसके परमप्रशान्त गम्भीरता को सराहें, अथवा हिम की सुबृहत चट्टानों के गिरने के गम्भीर शब्द को सुन मृगाधिराज के गर्ज्जन की शंका करें। चाहे चित्रकूट की रम्य स्थलियों में तपस्वी के बालकों के साथ साथ खेलें वा इन्द्र बन सौन्दर्य्य से सतराती स्वर्ग की अप्सराओं के अलौकिक नृत्य को देखें, चाहे महाभारत का वह युद्ध जो इस भारत के सर्व नाश का प्रथम चरण था, देखने को कुरुक्षेत्र में बैठ कौरव और पाण्डव का भयङ्कर हुंकार सुन दुखी हों। चाहे ग्रीस (Greece) के परम अद्भुत दार्शनिक और कवियों से संलाप कर बुद्धिमान हों, और चाहे रोम (Rome) की भयङ्कर सेनाओं का भीषण कर्म पढ़ें और उनके साथ एक देश के पश्चात् दूसरे देशों को पराजित करें; चाहे प्यारे शेक्सपियर के परम अलौकिक और गूढ़ कविता में लीन हो किञ्चित काल के लिये सारे विश्व को विस्मरण कर जायँ, वा मिल्टन की गम्भीर गिरा में निमग्न हो जावें।

इसमें सन्देह नहीं की पुस्तकों ही के कारण हम सब भी योगियों के सुख का अनुभव कर सकते हैं, अर्थात् चित्त के एकाग्र होने से हम सब अपनी आत्मा में लीन हो जाते हैं, जो सुख निर्विकल्प समाधि वा त्रिकुटी में स्थिति या भक्तिभावनाओं से पूर्ण हृदय के अतिरिक्त और कहीं सुलभ नहीं है। इसी से विद्या का पढ़ना वा इस विषय का मनन करना असम्प्रज्ञात

योग तथाच सात्विक सुख माना गया है, क्योंकि इसके भी आदि में विष सी कटुता और अन्त में पीयूष सी माधुरी है।

आज कल मनुष्यों के सुख की सामग्री के बहुत बढ़ जाने में सब से अधिक यह लाभ है कि हम उत्तम से उत्तम पुस्तक थोड़े मूल्य में पा सकते हैं। क्योंकि यन्त्रालय तो राक्षस सा हो गया जिसके सन्तानों की सीमा नहीं है। यदि उस उदार दैव ने भोजन और वस्त्र से सञ्चित किया हो तो मनुष्य इन पुस्तकों की महिमा से बादशाही कर सकता है वा उससे भी कुछ और अनुपम और अलौकिक सुख अनुभव कर सकता है। क्योंकि जब इस लोक की स्थिति हमी सब पर है तो निःसन्देह हम बादशाह हैं यदि जी में उनसे कुछ विशेष संतुष्ट हैं ; वा यों कहिये कि यदि सहस्रों नृपति क्षण के क्षण में आह्वान किये जा सकते हैं, जो अपने दुख सुख, जीत वा हार के सच्चे इज़हार प्रसन्नता पूर्वक कहने लगते हैं तो फिर शाहन्शाही इसे हम क्यों न कहेंगे ? यदि दैव ने इन्हें परम विस्तीर्ण राज्य दिया है तो उन्हें भावनाओं के अनन्त लोक का स्वामित्व दिया है यदि इन्हें दो चार सहस्र पार्श्ववर्ग दिया है तो उन्हें अनन्त पुस्तकों का साथ, जो इनसे कहीं सच्चे सुहृद हैं ; यदि उन्हें धन धान्य से सम्पन्न किया तो इन्हें बुद्धि और विज्ञान से भूषित किया है।

निदान पुस्तकों के हम सब बड़े ऋणी हैं। सर रिचर्ड डी वर्ग (Richard de Burg) कहते हैं कि "ये सब अध्यापक हम को विना दण्ड वा लगुड प्रहार के, कुटिल शब्द वा क्रोध किये और विना द्रव्य लिये हुए भी शिक्षा दे सकते हैं। यदि आप इनके सन्निकट जाइये, तो ये सोते न मिलेंगे, यदि आप जिज्ञासु हैं और इनसे प्रश्न करते हैं, तो ये आप से कुछ परोक्ष न रक्खेंगे यदि आप इनके रूप को यथार्थ न समझिये तो ये अुन-

सुनायेंगे नहीं ; यदि आप अज्ञानी हैं, तो वे आप की मूर्खता पर हँसेंगे नहीं; इससे बुद्धि, ज्ञान से पूर्ण पुस्तकालय इस लोक की समस्त सम्पत्ति से बहुमूल्य है और किसी स्पृहणीय वस्तु की तुलना उससे नहीं की जा सकती। सच तो यह है कि जो कोई सत्य, आनन्द, धर्म्म वा विज्ञान को जानना चाहता है तो उसे निश्चय पुस्तकों से प्रेम करना चाहिये"। जिन्हों ने पुस्तकों को अपना मित्र वा सर्वस्व धन मान रक्खा है वे कहते हैं कि " ये हमारे मित्र जो परम शिष्ट और प्रिय हैं सबी काल और देश के हैं। वे सब अपनी बुद्धि और पराक्रम से जैसे रण क्षेत्र में प्रसिद्ध थे वैसेही नीति नैपुण्य तथा विज्ञान चातुर्य्य में ; इन मित्रों के पास विना क्लेश ही मनुष्य पहुँच सकता है, हम जब चाहें उनसे संलाप करें और जब चाहें उन्हें बिसर्जन करदें, वे कभी दुखदाई नहीं, परन्तु जब हम उनसे प्रश्न करते तो वे उसका तुरन्त उत्तर देते। कोई हमें बीती कथा सुनाते, कोई हमें प्रकृति के रहस्य को बताते, कोई हमें कैसे इस लोक में रहना चाहिये सिखाते और कोई किस भाँति इस शरीर को त्यागना चाहिये जताते, कोई अपनी ललित कविता से शोक को छिन्न भिन्न कर प्रसन्न करते। कोइ धैर्य्य देते और कोई इन बलवान इन्द्रियों को कैसे वश करें सिखाते, और कहते कि केवल अपनी शक्ति पर निर्भर रहना भला है। वे हम सब को सबी शास्त्रों के कुञ्जों में ले जाते और विपत्ति काल के लिये ऐसी सच्ची सम्पत्ति देते जिस पर हम पूर्ण रूप से निर्भर हो सकते हैं। इन सब सत्कर्म्मों के अर्थ वे हम से केवल इतनाहीं चाहते हैं कि हम उन्हें मकान के किसी कोने में रख दें जिसमें वे सकुशल शान्ति पूर्वक स्थित रहें ; क्यों कि ये हमारे शान्त मित्र जन एकान्त में विशेष

प्रसन्न रहते बनिस्बत जन सन्दोह के"।

पुस्तकों की अद्भुत महिमा है। इनकी कृपा से चाहे सनातन षोडशकलावाले अद्भुत ब्रह्म की कथा उपनिषदों में देख पवित्र हों। चाहे भगवान वाल्मीक की पुनीत गिरा की पवित्र सरिता में स्नान कर, दोनों लोक को सम्पादन करें। चाहे रसिक शिरोमणि जयदेव जी के प्रेम और भक्ति से पूर्ण गीत गोविन्द को पढ़ भगवान कृष्ण की भक्ति करें। चाहे श्री सूरदास जी के भक्ति भावनाओं से भरे वृहत सरोवर में मज्जन करें। चाहे दुष्यन्त के साथ पुनीत तपोवन में जा तपस्विनी कन्यकाओं से अतिथि सत्कार करावें, वा इस अभागे कलियुग में सत्ययुग की दृष्टि देखें। चाहे पुरूरवा के उत्कट प्रेम की अवस्था देख, उसकी प्रगल्भता को सराहें। चाहे यक्ष के प्रिय मेघ के साथ आकाश मार्ग से सारे भारतवर्ष की सैर कर आवें, या अप्सराओं को भी अपने रूप और दाक्षिण्य से लजानेवाली सौदामिनी सी दमयन्ती के सन्निकट हंस बन संदेश लेजायँ। या माघ काव्य के दूरवीन से भगवान कृष्ण से महानुभाव भी इस लोक की आपत्ति में पड़, अपने रूप को विस्मरण कर गए देख, इस माया के दैवी होने का प्रमाण देखें। चाहे किरात के राजनैतिक कौशल्य तथा गूढ़ भावों को पढ़ अचम्भित हों, या भीम के भीम पराक्रम को वेणीसहाँर में पढ़ वीर रस पूर्ण हृदय करें और देखें कि हमारे यहाँ के क्षत्री कैसे पराक्रमी और शूर वीर थे। चाहे उत्तररामचरित्र की श्री जानकी जी के अपार दुःख के साथी हों, चाहे कादम्बरी की चाण्डाल दारिका की अनुपम शोभा को देखें और विलक्षण शुक की कहानी सुन विस्मित हों। या चन्द्रावली के असीम प्रेम को सराहें वा सत्य हरिश्चन्द्र के साथ बैठ पवित्र वाक्यों से शरीर

को पवित्र करें। दिलीप के साथ तपोवन में कामदुघा सौरभी को चरावें, वा मुद्राराक्षस में चाणक्य की कुटिल नीति से सराहें। या न्यायाध्यक्ष वन मृच्छकटिक में अर्थ निरूपण करें, वा विष्णु शर्म्मा के मित्र हिरण्यक के अनेक मित्रों से मिलें; और चाहे दण्डी के सरसगद्य को पढ़ इस मृत्युलोक को स्वर्ग मानबैठें।

जिन्हें परमात्मा ने प्रचुर द्रव्य दे महिमावान भी बनाया है उन्होंने भी यही कहा कि वे विशेष सुखी पुस्तकों ही से अपने को मानते थे जैसे लार्ड मेकाले (Lord Macaulay)। यद्यपि सब प्रकार से भगवान ने इन्हें सुखी और धनवान बनाया था पर तो भी पुस्तकों में निष्ठा जैसी कुछ उनकी थी, उनके योग्य स्वसासुत उनके जीवन चरित्र में लिखते हैं कि "वे पूर्व कवियों या दार्शनिकों के कैसे कुछ बाधित थे और कैसा प्यार करते थे सिवाय उनके और कौन कह सकता है। वे कहते थे कि वे पुस्तकों के संख्यातीत ऋणी थे, किस भाँति इन्होंने सन्मार्ग में प्रवेश कराया, कैसा इन सबों ने हृदय को उत्तम भावनाओं से तथा उत्कृष्ट स्वरूपों से पूर्ण किया, कैसा वे हम सब के सबीकाल और अवस्था में साथी रहे, शोक में सन्तोष देते, और बीमारी में उपमात्री सी सेवा करते। एकान्त के साथी ये सहृदय मित्र लोग सदा एक ही रूप में देख पड़ते थे जो हम सब के धन और दरिद्रता में, तथा कीर्ति और अविज्ञात अवस्था में भी सदा साथ देते हैं इस सुख के (अर्थात् पढ़ने केसुख के) नीचे ही वे अपनी कीर्ति और पारितोषिक को मानते थे। पढ़ने के सुख को गिबन (Gibbon) कहता है कि वह सारे भारतवर्ष के सम्पत्ति से भी न बदलना चाहेगा।

इतिहासों के पढ़ने से हम सब विना बृद्ध हुए वा बाल पके या चश्मों में झिल्ली पड़े हुए भी सहस्रों वर्ष की कथा जान

सकते हैं; और विना दुःख उठाए सवी प्रकार के दुःख को देख सकते हैं। इसकी महिमा हमारे पुरातन भारतीय मनुष्यों को नहीं समझ पड़ी, इसका कारण यह है कि वे सदा वर्तमान की चिन्ता करते और भूत भविष्य को अशोचनीय समझते थे। यद्यपि पुराण द्वारा हम सब बहुत कुछ पुरातन की कथा जान सकते हैं, पर तौ भी ये इतिहास नहीं कहे जा सकते।

इतिहास का पढ़ना मनुष्य को परमावश्यक है ताकि देखे कि इस नश्वर लोक में कैसे कैसे महिमावान, विद्वान्, कवि, तथा अद्भुत दार्शनिक और क्रूर मनुष्य हुए हैं। कोई तो राज्य और कीर्ति की वृद्धि करने में अपने प्राण को खोता, कोई मनुष्य लोक को दुखी करने में अपना परम कर्तव्य समझता। कोई योग्य विचक्षण नृपति सारे लोक को विद्वान् और सुखी करना चाहता, कोई अपने मत में लाने के हेतु सहस्त्रों के कण्ठों पर अपना कुटिल कृपाण फेरता। इन सब बातों के पढ़ने से क्या हम यह न कह सकेंगे कि ये सब अपनी सी गा गए पर हुआ वही जो उस चतुर्मुख ब्रह्मा ने चाहा, एवं मनुष्यों की विविध भावनाओं का अनेक परिणाम देख उन्हें त्याग करने की इच्छा करेंगे, यानी जगत से ये सब महाशय न कुछ ले जा सके हैं और न कोई ले जा सकता है, केवल भली वा बुरी मनुष्य की कथा मात्र अवशेष रह जाती है।

प्रगल्भ निरक्षर उत्तरीय मनुष्य (Northmen or Norse men) अक्षरों में दैवी शक्ति मानते थे। अरबी में एक कहावत है कि पण्डित के एक घंटे के तुल्य मूर्ख का सारा जीवन है, क्योंकि घंटे भर में जितना विद्वान् विचार सकता है उसे मूर्ख सारी उम्र भर में भी न सोच सकेगा। इससे उन महाशयों को

धन्य समझना चाहिये जिन्हें भगवान ने लिखने पढ़ने की शक्ति दी है, यद्यपि यह सत्य है कि केवल पुस्तकों ही के पढ़ने से मनुष्य कुछ लाभ नहीं उठा सकता यदि उनके सिद्धान्तों पर आरूढ़ न हो।

विचक्षण ब्लेकी (Blakie) कहता है कि पुस्तक केवल एक यन्त्र है जिसे यदि हम काम में लाना जानते हैं तो सुख अनुभव हो सकता है। इसी से नीतिज्ञ चाणक्य कहते हैं कि "लोचनाभ्याम्विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति" अर्थात् जिसे परमात्मा ने स्वयं प्रज्ञा नहीं दी है उसके लिये शास्त्र तो अन्धे के हाथ में आरसी है। किन्तु यदि विधाता ने बुद्धि वैभव से सम्पन्न किया हो तो पुस्तकों के विस्तीर्ण उद्यान में केवल सम्पत्ति और कीर्ति का सञ्चय करना इसका एकान्त फल नहीं मानना चाहिये, पर उन महौषधिरूपी महा वाक्यों के गूढ़ तत्वों के अर्थ को मनन करना चाहिये और यथाशक्ति उन पर दृढ़ रूप से स्थित होने का प्रयत्न करना चाहिये, जिसमें सदा के लिये सुखी हो जाय। वा यों कहिये कि शास्त्रों के अगाध रत्नालय में केवल कोष भरनेवाले रत्नों के अर्थ डुब्बी लगाना उचित नहीं है पर उस अनुपम और अपूर्व रत्न के प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये, जिसमें इस जगत के महा जंजाल से सदा के लिये छुटकारा हो जाय।

जैसे हम चुने चुने मनुष्यों से सम्बन्ध रखते हैं वैसा ही पुस्तकों को भी चुन कर पढ़ना चाहिये। क्योंकि जैसे उनकी सृष्टि अपरम्पार है वैसा ही पुस्तकों की भी है, और यह सम्भव नहीं कि आप सब को पढ़ लीजिये, इससे पण्डितों से या पुस्तकों से सम्मति लेना आवश्यक है कि कौन सी पुस्तक पढ़ने, कौन सी छोड़ने के योग्य हैं क्योंकि कोई तो

इनमें हरे भरे शस्य पूर्ण क्षेत्र सी, कोई मरुस्थल, और कोई ऐसी हैं कि जङ्गल के सदृश, जिनमें यदि चाहिये तो सारी जीवनी भर घूमते रह जाइये और फिर भी उनके पूरे ज्ञाता नहीं हो सकते। कोई झरने सी अपने मधुर निनाद से आप के कर्ण कुहर को संतुष्ट करतीं, कोई तुफ़ान सी हमें इस जगत जञ्जाल के महाजाल को दिखातीं, कोई अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र सी हैं जिनमें जो चाहिए वह बस्तु प्राप्त कर सकते हैं। कोई नगाधिराज हिमालय सी सबी प्रकार की शोभा से सम्पन्न है। इससे कोई तो ऐसी हैं जिन्हें भली भाँति कई बार पढ़ना चाहिए और इनके भावों को मनन करना चाहिये, कोई ऐसी हैं कि जो केवल आद्यन्त पढ़ डालने के योग्य हैं, फिर कोई ऐसी हैं कि जिनके केवल कुछ अंश पढ़ना चाहिये, और कोई अरेविया की भूमि सी हैं जो केवल कहीं कहीं पढ़ने के योग्य होती हैं।

पुस्तकों की महिमा एकान्त स्थलियों में देख पड़ती है। मैंने देखा है कि किसी समय कार्य्यवश सारा दिन परम नीचों के साथ बीतताथा —जिस कारण मैं अपने को परम दुःखी और नीच सा समझता—पर जब इन सब झंझटों से अवकाश मिलता और प्यारी रात्रि की सहचरी सन्ध्या में सन्ध्या कर शकुन्तला पढ़ना आरम्भ करता तो कुछ ऐसा समझ पड़ता था कि किसी दयालु गन्धर्व की कृपा से नन्दनवन के अनूठे उद्यान में घूम रहा हूँ और उन अलौकिक सरल स्वभाव वाली तपस्विनी वालिकाओं के सच्चरित्र को देख सारा दिन भर का परिश्रम और दुःख, शरद के मेघ सा छिन्न भिन्न हो जाता था और फिर यह अन्तःकरण रूपी आकाश अपनी प्राकृतिक शोभा को धारण करता था।

निदान ये हमारे प्राचीन मित्र लोग तो सदा दुःख सुख में साथी—मनुष्यों से चाहे खटपट हो पर ये तो सदा एक ही रूप में रहते—यदि हम हँसना चाहते तो ये सब हँसाते, रोते तो ये समझाते, यदि किसी के क्रूर बचनों से हृदय देश में व्रण सा हो गया है तो ये तुरन्त ज्ञान का मरहम लगाते, यदि वियोग से आकुल और अधीर हो रहे हैं तो लड़कपन कह लज्जित करते, और यदि कोई भारी दुःख से पीड़ित हैं तो वे ज्ञान की कहानी सुना, उसकी नश्वरता का बोध कराते और कहते कि न सुख रहा है और न दुःख ही रह जायगा, तुम्हारा उद्वेग और चिन्ता केवल तुम्हारे हाथ है, फिर वह भी व्यर्थ है क्योंकि वह करुणावरुणालय जगदीश्वर, सिवा मङ्गल के कभी अमङ्गल हम सब का न करेगा।

जिन्हें भगवान ने विद्या में गति नहीं दी है वे चाहे कैसाहू द्रव्यवान और शक्तिमान क्यों न हों, पर अकसर उनका समय उनपर भार सा आ गिर पड़ता है, और वे घबड़ाते, झीखते और मनहीमन में समझते हैं कि कौन सी नई तफ़रीह वा खुराफ़ात करना चाहिये जिसमें जी लगे और कुछ मज़ा उठे क्योंकि मनुष्य क्या, सारा जीव लोक क्षण भर भी निष्कार्य्य बैठ नहीं सकता और यदि निष्कार्य्य बैठा तो प्रति क्षण उसके अधःपात की शंका है इसी से यह मसल कही है कि "आलसी मनुष्य का मस्तिष्क तो पिशाच का डेरा सा है।

यद्यपि बहुत से द्रव्यवान, घर बैठे ही स्वतः अपने को बुद्धिमान मान द्रव्य के मद में कह दिया करते हैं कि पुस्तकों के पढ़ने से क्या लाभ, हम तो घर ही बैठे एक के दो कर लिया करते हैं। अर्थात् विद्या सीखने का प्रयोजन केवल धन उपार्जन, इन मूढ़ों ने समझ रखा है पर वे नहीं जानते कि

जो मनुष्य मूर्ख है वह एक प्रकार से मनुष्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि शिरोभाग ही इसका और पशुओं से विलक्षण है और वह विद्या शून्य होने से शिर हीन है यद्यपि जीवित है। और विद्या तो जानने को कहते हैं और जानना तत्वज्ञान है यानी प्रकृति और पुरुष के भेद को सम्यक रीति से समझना है और यही विद्या के पढ़ने का परम फल है।

जैसा परमात्मा ने इस अद्भुत ब्रह्माण्ड को सिरजा वैसाही इसका भोक्ता मनुष्य को बनाया किन्तु वह भी जगत् के इन सुखों का यथोचित भोग नहीं कर सकता यदि शास्त्र नीरीक्षण द्वारा उसको बुद्धि परिस्कृत न की गई हो।

एक हमारे भद्र मित्र पादरी साहेब यह कहते थे कि यदि हिन्दुस्तानी अमीर भी हों तब भी उन्हें अमीरी करना नहीं आता और इसका अविद्या ही मुख्य कारण कहा करते थे। यह सच है क्योंकि जिनके घर में भगवान की दया से खाने पीने को काफ़ी है और यदि उनका लड़का हिसाब किताब थोड़ा समझ सकता है तो वे गर्व पूर्वक कहते हैं कि लड़का काफ़ी पढ़ चुका और इससे अधिक पढ़ने से सिवाय किरिस्तान, ऐयाश, वा अमीर होने के और कुछ विशेष परिणाम नहीं हो सकता पर वे नहीं जानते कि उन्होंने अपने पुत्र को उस स्वर्ग की दृष्टि से विमुख किया जो फिर उसे कथमपि प्राप्त होने वाली नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि शास्त्रों के पढ़ने में उतनाही परिश्रम करना पड़ता है जितना पर्वतों के उन्नत-शिखर की चढ़ाई में, जो हमारे देश के रईसों के मान का नहीं। परन्तु यदि वे किसी प्रकार उसकी चोटी पर चढ़ जायँ या कुछ भी ऊँचे पहुँच जायँ तो निःसन्देह उस उदार जगदीश्वर को प्रत्येक पद पर सराहेंगे और देखेंगे कि नीचे के मनुष्य अर्थात् मूर्ख लोग

कैसे लघु और क्षुद्र देख पड़ते हैं।

अतः हे ज्ञान के महा महोदधि ! तुम्हें नमस्कार है। उस परब्रह्म सहस्र कला के मिलने में परम कारणभूता ! तुम्हें प्रणाम है। ब्रह्मा की सृष्टि को भी लजानेवाली भावनाओं की विशाल सृष्टि ! तुम्हें धन्यवाद है। मनुष्यों के विचारों को अजर अमर करने हारी ! तुम्हें प्रणाम है। दिग्दिगान्तर कवियों के यश को फैलानेवाली ! तुम्हें नमस्कार है, अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड की कथा कहने हारी ! तुम्हें सहस्रों धन्यवाद है। दुःख रूपी प्रचण्ड वात से उद्विग्न मानस को धैर्य्य देने वाली ! तुम्हें अनेक प्रणाम है।

कविता

कान्पृच्छामः सुधास्वर्गे निवसामो वयंभुवि ।
किंवा काव्य रसः स्वादुः किंवा स्वादीयसी सुधा ॥

द्यपि ब्रह्माके चार मुख हैं, पर एक मुख वाले कवि रचित काव्य रूपी परम् अद्भुत लोक को निरख, लज्जा और ईर्ष्या के बस हो उन्हें मलिन वदन होना ही पड़ता होगा। वा यों समझिये कि ब्रह्मा की सृष्टि में चाहे कुछ न्यूनता क्यों न हो, पर इनकी सृष्टि में न्यूनता का क्या काम है? क्योंकि यहाँ तो जब जी चाहा बरसात बुला बादलों की घेर घार को गगन मण्डल में दिखला दिया, अथवा चाहा तो वसन्त के आह्वान से सब पुष्पों को उन्निद्रित कर दिया। योंही चाहे किसी को बादशाह बनाया और चाहे किसी को रंक। चाहा तो भारतवर्ष की दुर्दशा का दृश्य दिखाया, और चाहा तो इङ्गलिस्तान और पेरिस की शोभा का समा सुझाया। सारांश इस लोक का बनाना और बिगाड़ना इन्हीं के आधीन है, जैसा जी में आया वैसा कर दिखलाया। इनके लोक में जितने मनुष्य देख पड़ते वे प्रायः एक प्रकार से परिपूर्ण होते

है, यदि ईर्षी है, तो सदैव सिर धुनता देख पड़ेगा, और यदि लोभी है तो दूसरे के अर्थ अपहरण करने ही में मग्न रहेगा, यदि तस्कर है तो उसमें प्रवीण और यदि विषयी है तो उसी में दक्ष दिखाई देगा।

यह सच है कि कवियों का आकाश दूसरा है, और भूमि भी कुछ दूसरी, यहाँ तक कि जितने प्रकार के पुष्प वहाँ खिलते हैं, वे निराले रंग ढंग के होते हैं उनकी नदियाँ कभी तो कामान्ध कामिनी सी पैतृक मर्य्यादा को तोड़ती, वेग से अपने पति महोदधि से मिलने को भागती अथवा इतराती आवर्त मिस निज नाभिदेश को दिखाती, स्वैरणी सी गाती चली जाती हैं, उनकी कोइलैं कभी कूक कूक कर वर्षा की सूचना देतीं, कभी विदेशियों को घर लौटने की सीख सिखातीं, और उनका वाग्मी पपीहा अपनी प्यारी बोल से सहानुमत्य प्रगट करता है। बादल संदेश-वाहक होता और चंचला दूती होती है। यदि कुमुदिनी पतिब्रता सुगृहणी सदृश अपने सुन्दर सरोवर गृह में आगत-पतिका बनी निज प्रियतम निशानाथ की बाट जोहती, तो कमलिनी मारे ईर्ष्या के पत्राञ्चल से मुहँ ढाँकती है। कहीं जो किसी लता ललना को बसन्ती साड़ी पहनाई, तो किसी को गुलनार ओढ़नी ओढ़ाकर, उनसे ब्रह्मा के बनाये माशूकों को लजाया। किसी को नील परिच्छद पिन्हा कर आकाश की छवि धारण करादी, तो किसी को उज्वल फूलों से सजा कर गर्विता नायिका बना दी और वे बहुतेरे धृष्ट और मदान्ध मधुकरों को अपने पत्रांगुलियों की तर्जना से चुम्बन का निषेध करने लगीं। योंही पूर्वदिशा से मारे प्रेम के दौड़ते आते हुए, सूर्य्य भगवान की किरणों से रात्रि भर के चिर वियोग दुःख से दुःखिनीबाला कमलिनी के अश्रु पूर्ण नेत्रों को प्यार से

पोंछवाते और आन्तरिक अनुराग का मानो उन्हें आदर्श बना देते हैं। इनका विलक्षण वायु कभी तो मतवाले हाथी सा द्रुम लताओं को छिन्न भिन्न करता, और कभी लता ललनाओं को बलात् भुज भर भेंटता, पुष्पों से अनेक प्रार्थना-चाटुकार-शब्दों को सुना, उनके अधरासव-मकरन्द को पीता, धीरे धीरे विश्व की छबि को निरखता चलता है।

इसी से पठनकाल ही से अब तक कितना हूँ सोचा, समझा, और विचारा देखा और सुना, पर शकुन्तला, उर्वशी, ज्यूलियट वा मेरिण्डा सी नायिका हमें इस विश्व में नहीं देख पड़ीं; सुतराम् यही कहना पड़ा कि अजी! कवि के अद्भुत लोक ही में ऐसे ऐसे सुन्दर और सुघर जन निवास करते हैं, इस विचारे भूलोक के निवासियों में ऐसी उत्कृष्ट सृष्टियाँ कैसे देख पड़ सकतीं हैं। अस्तु इससे यह न समझिये कि इन कवियों ने अपने अद्भुत लोक को रच कर हमारे इस लोक को फीका कर दिया, प्रत्युत उन्हों ने इसके आनन्द को कई गुना और भी बढ़ा दिया अर्थात् इन रूप-गुण सम्पन्न माया पुत्तलिकाओं के विविध भाव, वा उनकी अलौकिक रूप लावण्य की शोभा को अथवा उस शोभा को जो दिशा वधूटी के भाल पर शुक्र तारा की बिन्दी लगने से लखाई पड़ती, वा कृष्ण पक्ष की काली हबशी युवती यामिनी सी निशा की, जब अपने असित शृङ्गार से अकाश मण्डल में सुशोभित होती वा जब सूमनी सी वह अपने अखिल रत्नों को निकाल निकाल कर रखने लगती, कि जिसे देख क्षुद्र नृपति और रत्न बणिक अपने लोभ की ललक में पड़ मारे ईर्ष्या के आँखें ढाँकने ही से सुखी होते, वा उस शोभा को जब नक्षत्रनाथ अपने चुने सहवर्गियों के सहित पूर्व से पश्चिम को भागते हुए अन्धकार बैरी पर आक्रमण करते, और वह विचारा

सशंकित मन, पर्वत की गुहाओं वा समुद्र की खाड़ियों में अपने प्रिय प्राण को लेकर जा छिपता है, वा योगिनियों के समान आनन्द में झूमती छोटी छोटी नदियों की शोभा को जो कलकल शब्द करतीं मानो परमात्मा के औदार्य्य तथा दया की संगीत गाती हुई, अपने तटस्थ वृक्षों को सुनातीं कि जिसे सुन वे गर्दन हिला हिला कर विहंगमों के मुख से वाह वाह कर उठते, अथवा आकाश तक प्रलम्बायमान महोदधि की दिशाओं को अन्त करने वाली शोभा को, वा जब छैलमातरिश्वा मारे आमोद के वसुन्धरा को अपने वक्षस्थल में समेटता है, जिसे देख लता सखीजन प्रसन्नता से नर्तन करने लगतीं वा उन पर्वतों की शृंखला जो इस विस्तृत आकाश वितान को अपने मस्तक पर लिये खड़ी है, इस शोभा को और इन दृश्यों को यदि कविता ने हम सबों को अपना चश्मा न दिया होता तो इनसे हम सब सदा वञ्चित रहते। भला कहिए वर्षा की इस शोभा को यदि हम इन श्लोकों को न पढ़े होते तो कैसे अनुभव कर सकते थे?

अपास्यहि रसान् भौमांस्तप्त्वा च जगदंशुभिः।
प्रेताचरितां भीमां रविराचरते दिशम्॥
ऊष्मामन्तर्दधेसद्यः स्निग्धाद्दृशिरेघनाः।
ततो जहृषिरे सर्वेभेकसारङ्गबर्हिणः॥
पतितेनाम्भसाच्छन्नः पतमानेन चासकृत।
आबभौ मत्तसारङ्गस्तोयराशिरिवाचलः॥
पण्डुरारूणवर्णानि स्रोतांसि विमलान्यपि।
सस्त्रुवुर्गिरि धातुभ्यः सभस्मानि भुजङ्गवत्॥

अर्थात् जब भगवान भास्कर अपनी तीक्ष्ण किरणों से जगत के सकल रस को आचूषण कर प्रेतों से सेवित दक्षिण दिशा

को गए, तो ग्रीष्म अन्तर्धान हुआ और स्निग्ध घन आकाश में दिखाई पड़ने लगे जिसे देख देख कर चातक मयूर और मण्डूक महाशयगण बड़े प्रमुदित हुए। पानी बरस जाने और निरन्तर बरसने से, भीगे पर्वतों ने जिनमें मत्त मृग विचरते थे जल राशि की शोभा को धारण किया। यों ही उन स्रोतों का जल जो कि स्वच्छ था पर्वत के लाल पीले धातुओं के कारण काले भयानक भुजंग की नाईं अब टेढ़ा बहने लगा। सुतरां यदि हम यह कहें तो सत्य ही है, कि बिना कवियों के अद्भुत लोक के विचरे इस लोक का यथार्थ सुखानुभव नहीं हो सकता।

बहुतेरे कह उठेंगे कि "कवि चाहे कैसाहू वर्णन क्यों न करे, पर तौभी क्या वह कभी प्रकृति की अकथनीय सौन्दर्य्य शब्दों से दरसा सकता है? क्या सर्वलोक हितकारी भगवान सूर्य्य जब अपनी असंख्य मरीचियों के सहित प्राची दिशा को आ सुशोभित करते हैं, अथवा ललनाओं के हँसने से जो उनके कपोल पर लालिमा दौड़ती है वा चकित लोल लोचनों के कटार से जो वार होता, उसकी शोभा वा कथा क्या शब्दों में कही जा सकती है। हम इन सब प्रश्नों के उत्तर में केवल इतना ही कहेंगे कि जी हाँ। परन्तु बहुतेरी ऐसी बातें भी हैं जिन्हें हम देख वा समझ नहीं सकते, यदि कवियों के साहित्य का चश्मा आँख में न लगाये होते। योंही जहाँ शब्दों का सामर्थ्य नहीं है वहाँ वे और ही उपाय अवलम्बन करते, और लक्षणा, ध्वनि उपमा तथा उत्प्रेक्षा की सहायता लेते हैं। और इससे वे आपको उसके सौन्दर्य्य के विषय में बहुत कुछ स्वयं सोच लेने को भी छोड़ देते हैं, जैसे जब कालिदास शकुन्तला की उभड़ती जवानी को दरसाया चाहते हैं तो शकुन्तला से यह कहलाते हैं कि—

"सहिअणपूर अद पिणद्धेण वक्कलेणपिअंवदा ए णिअन्दित ह्मि। सि-ढ़िलेहिदावणं।

अर्थात् हे सखी अनुसूया! प्रियम्वदा ने चोली से दृढ़ रीति पर मुझे कस दिया है उसे ढीली करदे। जिस पर प्यारी प्रियंवदा हँस कर उत्तर देती है।

एत्थ पओहर वित्थार इत्त अं अत्तणो जब्बणं उवालह।

इसमें निरन्तर उभरते उरोजों के हेतु अपने यौवन को उलहना दे। इसी भाँति जब कवि चाहता है कि हम उसके सहज सौन्दर्य्य और लावण्य को भली भाँति समझें, कहता है—

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्
मलिनमपि हिमांशोलक्ष्म लक्ष्मींतनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिवहि मधुराणां मण्डनंनाकृतीनाम्।

सेवार के सहित जैसे कमल भला लख पड़ता है, जैसे हिमांशु का कलंक उसके सौन्दर्य्य को बढ़ाता है, वैसे ही यह कृशांगी यद्यपि वल्कल वस्त्र से आवेष्ठित है पर तौभी परम मनोज्ञा है। सच है सुन्दरियों को आभूषण की क्या आवश्यकता है। किसी उर्दू के कवि ने भी इसी के आशय पर कहा है कि—

नहीं मुहताज ज़ेवर का जसे ख़ूबी ख़ुदा ने दी।
कि जैसे ख़ुशनुमा लगता है देखो चाँद बिन गहने॥

महाकवि बाणभट्ट भी अपनी चाण्डाल दारिका के अलौकिक सौन्दर्य्य के वर्णन में कहते हैं कि "मूर्च्छामिव मनोहारिणीं" अर्थात् मन को मूर्च्छा सी हरने वाली और "आकर्षयन्निव

जीव लोकं" यानी प्राणी मात्र के प्राण को आकर्षण सी करती हुई।

इसी कारण बड़े से बड़े बड़े शाहंशाहों और महाराजों के यहाँ उत्तमोत्तम कवि संग्रह किये जाते थे जिससे वे उन्हें बतायें कि आकाश में विजली तिलमिलाई तो क्या आनन्द लायी, वा मलयमारुत जब मन्द मन्द गति से आता है तो कैसी कैसी विविध भावनाएँ विविध मनुष्यों के हृदय में उपजाता है, कोइल बोली तो क्या कह गई और पपीहा क्यों पिव पिव की रट लगा रहा है, सज्जनों के संग्रह से क्या आनन्द उठता है और नरपति होने से मनुष्य क्या सुख उठा सकता है, अथवा अपनी प्रजाओं को वह किस किस सुख से सञ्चित कर निहाल कर सकता है।

यद्यपि अब तक किसी न किसी रूप से सवी महाराजों के यहाँ कविराज लोग विराजमान हैं, चाहे वे चूरनवालों ही की सी कविता क्यों न कर सकते हों परन्तु अविद्या के कारण स्वयम् महाराज को तो कविता समझने की शक्ति रहती ही नहीं अतः बालकों के समान इन्हीं सब की कविता पर वह वाह वाह कर लोट पोट हो जाते, और समझते हैं कि बस साहित्य का मटका तो फुट चुका। इस नियम के देखने से यह तो निश्चय सिद्ध होता है कि अवश्य ही किसी समय इन कवियों की राज-दर्बारों में बहुत बड़ी चाह थी। परन्तु आज कल के महाराजों को तो यदि विषयिता और विलासिता से कुछ अवकाश भी मिलता तो घोड़दौड़, पोलो, इमारतबाज़ी वा उसके साज बाज वा बाराह अथवा व्याघ्र के आखेट की उत्कट चाह में नगर छोड़ अरण्य निवास करने ही में उनकी मनोरञ्जनता की परमावधि है। तब सत्कवि

साक्षात्कार वा सत्कविता के सुख का भागी होना उनके लिये कैसे सम्भव है। इसीसे उनके यहाँ पुश्त दर पुश्त से जो पुरोहित से कवियों की वंशावली चली आई है वही रहेगी। जिससे भाग्यवशात् यदि किसी सत्कवि की कविता भी वहाँ पहुँची तो रद्दीदान में गई। वा स्वयम् कोई सत्कवि उनके द्वार पर जा पड़ा तो शायद रोते ही लौटेगा। हाय! आज यदि ये महोदयगण यथार्थ सत्कवियों की चाह करते तो अब तक हमारी प्यारी नागरी क्या यों आभूषणों से रहित छविहत रहती! परन्तु चूंकि जैसा कि शेक्सपियर (As you like it) अँज़ यू लाइक इट् नामक नाटक में सिलिया से कहलाता है कि "आओ, अन्धी क़िस्मत को चिढ़ावें जो अर्थों का समुचित विभाग नहीं करती"। फिर जब सब को हर्ष, शोक विभाग करनेहारी क़िस्मत ही अन्धी है तो हम इन बड़े बड़े नरपतियों को क्या दोष दें। परन्तु हाँ यदि ये इन बुलबुल हज़ार दास्तानों को वाचाल विहंगों के स्थान पर, अपने महलों में निवास दें, तो न वे केवल स्वयं ही अकथनीय आनन्द के भोक्ता हों, वरञ्च संसार में सदा के लिये निज अटल उज्वल यश के अतिरिक्त एक अति सुखदायिनी सामग्री भी छोड़ जाँय। क्योंकि न यह केवल वीरों ही को वीर कामनाओं से परिपूर्ण करते, वरञ्च दुःखियों के घाव पर भी मर्हम लगाते, वियोगी और वियोगिनियों को अपनी अनुपम शक्ति से उन्हें वियोग के दुःख को विस्मरण कराते हैं। प्राचीन यूरप के बड़े बड़े महलों में कविजन अपनी तन्त्री लेकर प्रायः कविता सुनाते थे, जिसे सुन वीर अपनी मोछें ऐंठते, ललनायें अपने पति के संग्राम से विजयी होकर लौटने के सुख को समझतीं, कन्याएँ निश्चय करतीं कि यदि हम पाणिग्रहण करेंगी तो किसी ऐसे ही

बीर से, बालक विस्मित चुपचाप उनके परम अलौकिक अपूर्व कथा को सुनते और थके मनुष्य अपनी थकावट भूलते थे।

कवि लोग श्री सरस्वती के परम प्रिय पुत्रों में से हैं, अतः लक्ष्मी जी उनसे रूठी ही रहती हैं। मैंने अभी तक नहीं सुना कि किसी जीवित कवि का सम्यक सम्मान हुआ हो वा उसकी कविता जीते जी समझी गई हो। कविवर होमर जिसकी समता श्री वाल्मीकि से दी जाती है हार्प (तन्त्री) को बजा बजा एक घर से दूसरे घर भिक्षाटन करता था, परन्तु २,५०० वर्ष के पूर्व जो महा काव्य वह लिख गया, आज वह समस्त सभ्य देशों के विद्वानों द्वारा अत्यन्त सन्मानित है और बड़े चाव से पढ़ा जाता है। योंही गोल्डस्मिथ, जब अन्य देशों में यात्रा करता था, दरिद्रता के कारण प्रायः उसे अपनी सुरीली बाँसुरी ही की कृपा से भोजन प्राप्त होता था। प्लूटार्क कहता है कि "जब ग्रीस की सेना सिसिली के भीषण सैन्य से निकृष्ट रीति से विध्वस्त हुई तो सिसिली के वीरों ने उन मनुष्यों को प्राण दान दिया था, जो उन्हें युरूपाइडी (Euripide) की कविता सुना सकते थे" क्योंकि ग्रीस के और कवियों की अपेक्षा इस कवि को वे लोग अधिक प्यार करते थे। जब कभी उनके देश में कोई यात्री आ उतरता था तो वे उससे इस कवि की कविता बड़े चाव से सुनाते और फिर बड़े प्रेम से अपने सहवर्गियों को सुनाते थे। ऐसा कहा है कि उस समय जब उन पराजित वीरों में से कुछ घर लौटे तो वे उस कवि के घर जा, अनेक धन्यवाद देकर कहा कि "आपकी अनुपम कवित्व शक्ति के कारण हमारे प्राण बचे और भोजन पान भी प्राप्त हुआ, जब कि हम निपट निराधार विचरते थे"। किसी ने कहा "हमने तो आप की कविता के कारण घृणित गुलामी से छुटकारा पाया"।
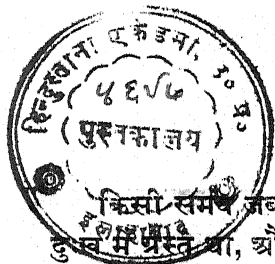
किसी समय जब कि मैं एक ऐसे असह्य और अनिवार्य्य दुःख में ग्रस्त था, और नित्य के झंझटों को झेलते झेलते मन की अवस्था कुछ ऐसी दीन हो गई थी कि निश्चय यही समझ पड़ा कि ऐसे जीवन से तो आत्महत्या भली है तो उस समय इन्हीं का काम था जो मुझको इस महाविपत्ति से बचाया और चारों ओर से छिः छिः करके कहने लगे कि अजी यदि एक देश में विधि ने कंटक बो रक्खा है तो क्या हानि हुई ? क्योंकि और देशों में तो तुम्हें सुख सम्पत्ति से सम्पन्न किया है उन देशों में विचरो और देखो कि क्या क्या सुख प्रस्तुत हैं। कोई कहता कि ऐसी अनोखी आँधियाँ तो अकसर आया ही करतीं किन्तु वे चटपट चली भी जाया करती हैं। कोई समझता कि इस चिन्ता चाण्डालिनी को हृदय देश में स्थान दान देना ही पाप है, तो कोई बतलाता कि अजी सुख दुःख दोनों एक में मिश्रित है, इससे जो एक को ग्रहण करता, तो दूसरा उसके साथ ही में रहता है। कोई बोलता कि हम न सुखी को समझें और न दुखी को मानें, क्योंकि यह हमी सब पर है "चाहे कुटी को प्रासाद कर दें और चाहे प्रसाद को कुटी बना दें"। सारांश इसमें सन्देह नहीं कि जब आपत्ति का समुद्र उमड़ता और मनुष्य समझने लगता है कि बस हम इन मौजों में सदा के लिये आप्लावित हुए तो उस काल में प्रायः यह नौका सी हो पार पहुँचा देते हैं।

इससे अच्छी कविता को हम एक परम सुन्दरी, गुणवती, सरस स्वभाव वाली नायिका सी कहेंगे जिसके समीप मनुष्य बैठ कर, तत्क्षण सारे लोक को विस्मरण कर, प्रायः उन्हीं के भावों के सराहने में निमग्न हो अपनी आपत्ति विपत्ति मात्र को भूल जाता है। अथवा यह कहेंगे कि कविता भूलोक की एक

आरसी के समान है, अथवा मनुष्य के हृदय कपाट को खोलने वाली ताली है। इसी से सर सिडनी स्मिथ (Sir Sidney Smith) कहते हैं कि "यदि स्वाभाविक सरस सुरसीप्यारी कविता तुझे भली नहीं लगती तो हम अवश्य यह आशीर्वाद देंगे कि जब तक तूँ इस लोक में जीवित रहे, प्रेम भार से सदैव दबा रहे और तेरी प्रियतमा तुझे इसलिये न चाहे कि तुझ में कवित्व शक्ति नहीं है और जब तूँ मरे तो तेरी कब्र पर कोई (Epitaph) एपिटाफ़, लौहेरूज़ार, वा स्मरण सूची शिला न हो"।

हमने तो बहुत दिनों से यह सिद्धान्त स्थिर कर लिया है कि जिसको कविता से कुछ आनन्द नहीं उठता वा जो कभी पवित्र प्रेम के सरोवर में स्नान नहीं किया है, उससे प्रणाम आशीर्वाद के सिवा और कोई विशेष सम्बन्ध न रक्खेंगे। सच तो यह है कि ऐसी प्रकृति के शुष्क जन, चाहे वे अफ़लातून (Plato) से विचक्षण क्यों न हों, हमारी समझ में देश से निकाल देने के योग्य हैं।

कवि वही है, जो स्वभाव ही से विरञ्चि के द्वारा विरचित हुआ है और मनुष्य जाति को सिखाने के हेतु दयालु प्रकृति का परम उदाहरण है। ऐसे ही जनों की कविता में आनन्द उठ सकता है, क्योंकि इसके चक्षु दूसरे, कर्ण दूसरे, और हृदय दूसरे ही होते हैं। ये प्रकृति के सौन्दर्य्य को जैसे चाव और प्यार से देखते हैं वह तो आप स्वप्न में भी नहीं देख वा समझ सकेंगे, यों तो साहित्य के ग्रन्थों को पढ़ कर सबी कोई कुछ न कुछ वाक्यावलियां छन्दोबद्ध कर लिया करते हैं, परन्तु सच्ची कविता तो जैसा कोलरिज (Coleridge) कहता है, कि "मस्तिष्क से उत्पन्न होती, और सीधे हृदय देश में जा स्थित

होती है"। वा जैसा महा कवि मिल्टन (Milton) कहते हैं कि वह निष्फल न लिखेगा, वरञ्च उसकी कविता सब काल और सबी देश में पठनीय होगी, यदि उसका हृदय स्वयम् कवितामय है।

पण्डित-कुल-कमल-प्रकाशक, बुद्धिसागर सुक़रात (Socrates) कहता है कि "कवि उस दयालु प्रकृति के लेखक से हैं"। इसमें सन्देह नहीं कि कवि, और मनुष्यों से बिलकुल निराली प्रकृति के होते हैं। वे तो जैसा महाकविवर शेक्सपियर कहते हैं कि "पागल, प्रेमी और कवियों की भावनायें एक सी हैं ; कवि के परमोत्सुक नेत्र आकाश से पृथ्वी और पृथ्वी से फिर आकाश को देखते हैं और ज्यों ज्यों भावनाएँ उठती हैं, कवि की लेखनी उनको स्वरूप और वायु सरीखी निराकार भावनाओं को नाम और स्थानीय देश से भूषित करती है"। जैसे प्रेमी सारे संसार भर पर लात मार और उसे अन्धा समझ, अपने प्रिय कार्य्य में निरन्तर दत्तचित्त रहता, वैसे ही यह सब अपनी भावनाओं के विस्तीर्ण लोक में विचरा करते हैं। जैसे प्रेमी अपनी प्रियतमा के अलौकिक रूप को एकान्त स्थान में बैठ कर स्मरण करता, वैसे ही ये भी इस प्यारी प्रकृति की अनेक शोभाओं के सराहने में निमग्न रहते हैं। इसी से वर्डसवर्थ (Wordsworth) ने एक परम प्रसिद्ध विद्वान से कि जो उनके साथ साथ टहल रहा था, उसके वार्तालाप पर, यह कहा कि "क्या आप चुप नहीं रह सकते" यानी जब देवी वसुन्धरा अपने असित शृंगार और अपने अनुपम रूप को दिखा भगवान मरीचिमाली को किञ्चित् काल के लिये विदेश जाने से रोकना चाहती है, तथा उसकी प्रार्थना को विहङ्गावली अपने मधुर संगीत में सुनाती हैं, भला ऐसे समय में महात्मा वर्डसवर्थ

को कहाँ अवकाश कि वे किसी के वार्तालाप को सुनें।

कवि लोग अपने मन के मौजी होते हैं जैसा चाहते वैसा करते। "निरंकुशाःकवयः" तो लोग इनको साहित्यबन्धनों के तोड़ने ही पर कहते हैं परन्तु ये सब, प्रायः सबी विषयों में अपने ही मन की करते और यथार्थ में समझिये तो कुछ ऐसे ही उच्छृङ्खल और मनस्वी होते हैं, किन्तु प्रायः देश व्यवहार के विषय में तो बहुत ही कच्चे हुआ करते हैं। इसी से तो इन सब को अफ़लातून ने अपने स्वराज्य से निष्कासन कर दिया था। परन्तु चाहे लोक व्यवहार में वे परम अनभिज्ञ हों, यहाँ तक कि चाहे अपने खाने पीने का भी प्रबन्ध ठीक ठीक न कर सकते हों, तथापि जब वे क़लम उठाते हैं तब सबी बातों के पण्डित से लखाई पड़ते हैं। क्योंकि ये यदि बीर की कहानी कहते तो आप परम उद्भट वीर, यदि ज्ञानी की कथा छेड़ते तो ज्ञानी और यदि दुःख की कथा सुनाते हैं तो आप दुखी बन जाते हैं, यानी जिस रस को ये आविर्भूत करना चाहते हैं, उसके पूर्ण रूप से अधिष्ठाता देख पड़ते हैं और उदारता से विधि पूर्वक हम सबों को वे सबी रसों का आस्वादन करा देते हैं। इसी से आइरविंग (Irving) कहता है कि "हम इन बड़े बड़े उपाधिधारी महाराजाओं के क्या ऋणी हैं, हम इनकी अधिकृत भूमि से एक विस्वा भी तो नहीं पाये हैं, किन्तु इन कवियों के कारण तो हमने बड़े बड़े आनन्द उठाये हैं। घंटों हँसे हैं, बादशाहों के साथ शराब पीए, खाने खाये और उनके अनेक सौख्यों के भी सुख अनुभव किए हैं"।

सच्ची कविता तो मनुष्य की हृदय ग्रन्थि को खोलती है और उसे उस प्रकार का आश्वासन देने में समर्थ होती जो और किसी भाँति सम्भव नहीं। कविता का देश वैसाही

विस्तीर्ण है, जैसा कि आकाश, उसका उपासक निज समय रूपी क्षेत्र में बीज बोता है, जो काल पाकर उगते हैं। जिनमें कुछ तो ऐसे विस्तीर्ण और प्रलम्बायमान तरु होते हैं कि उनकी शाखाएँ दिगदिगन्तरों में जा पहुँचती हैं, जैसे वाल्मीकि, होमर, कालिदास और शेक्सपियर के काव्य। उनमें से कोई तो ऐसे होते जो केवल अपने देश ही के मनुष्यों को सुख दे सकते, कोई ऐसे प्रसून होते जिनकी जवानी एकाध ही दिन की होती, कोई ऐसे महीन और मधुर महकवाले होते, कि साधारण व्यक्ति को उनका ज्ञान ही असम्भव, और कोई ऐसे, जो पुष्पों के अतिरिक्त फलवाले भी होते हैं। देखने में आता है कि इस कराल काल के गाल में कैसी कैसी राजधानी और बादशाहियाँ कवलित हो गईं, परन्तु इनका कविता रूपी राज्य वा कीर्ति में सिवा विस्तार के सूत भर की भी कमी नहीं हुई, इसीसे किसी कवि ने सच कहा है।

कतिपय निमेषवर्तिनि जन्मजराविह्वले जगति।
कल्पान्तकोटिबन्धुः स्फुरति कवीनां यशः प्रसरः॥

अर्थात् इस जन्म जरा और मरण से विह्वल क्षणिक संसार में कवियों का यश ही एक कल्पान्त पर्य्यन्त स्थायी रहने वाला है। जब तक यह मानव सृष्टि है, तब तक इन कवियों की कविता मनुष्यों के कर्ण कुहर को पवित्र करती रहेगी। स्काट (Scott) सत्य कहता है कि "यह कदापि असत्य नहीं है जो कहते हैं कि जब कवि मरता है तो मूक प्रकृति भी अपने उपासक कवि की अन्तिम क्रिया करती, शोकाकुल हो आँसू गिराती और उनकी क़ब्र को पुष्पों से सजाती है"। वह क्यों न सजाये? क्योंकि यदि निर्झर निनाद कर रहा है तो वे घंटो तक उसकी कहानी सुनते, यदि कुञ्जों में पतत्रियोंने

संगीत प्रारम्भ किया, तो उन्हें घर लौटने की सुध कहाँ ? यदि गिलहरी ऊपर से नीचे मारे प्रमोद के चढ़ और उतर रही है तो आप घण्टों घास पर लेटे उसके अनेक कौतुकों को देख रहे हैं। यदि समुद्र में आँधी उठी और वह अपनी बृहत् ऊर्म्मियों से निर्लज्ज शशांक रमणी के मुख पर घूंघट डाल चला तो मानो आप के घर उत्सव हो गया। यदि इन्द्र धनुष आकाश में देख पड़ा तो वे मारे प्रसन्नता के उछल पड़े। सारांश इसी प्रकार ये लोग इस प्रकृति के सब ही रूप के उपासक और प्रेमी होते हैं।

हम सब को चाहिये कि जब कविता पढ़ने लगें तो ठीक वैसाही अपना चित्त भी कर लें, नहीं तो उनके अपूर्व अलंकार और भावों को पूर्ण रीति पर न समझ सकेगें। इसी से किसी ने बहुत सच कहा है कि कविता लिखनी कौन सी बड़ी बात है, जब कि हम जिस चीज़ को जैसा वर्णन करना चाहें वैसाही चित्त भी बना लें और समझें कि यदि हम वहाँ होते तो क्या कहते या समझते। इसमें क्या सन्देह, जो ऐसा कर सकेगा वह अच्छा लिखेगा और ठीक ऐसीही कविता पढ़ने की भी चाल है अर्थात् आप भी तद्रूप हो जायँ जिसमें उसके यथार्थ अर्थ को समझ सकें। क्योंकि यह तो भावना का लोक है. यदि आप को ब्रह्मा ने साहित्य रूपी महोद्यान की कुञ्जी दी है तभी आप उसमें प्रवेश पा सकते हैं और उसके विविध कुञ्जों तथा अनेक सौन्दर्य्यों का अनुभव कर सकते हैं ; जैसा कि किसी ने सच कहा है।

सरसा सालंकारा सुपदन्यासा सुवर्णमय मूर्तिः।
आर्य्या तथैव भार्य्या न लभ्यते पुण्य हीनेन ॥

लक्ष्मी
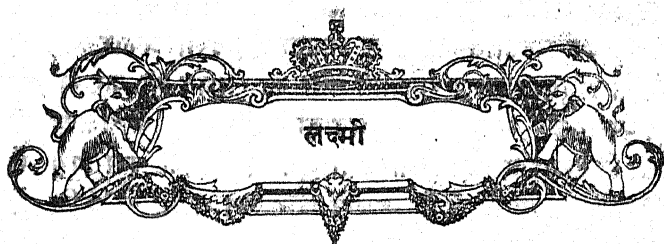
हलाहलो नैव विषं विषं रमा, जनाःपरम् व्यत्ययमत्र मन्वते ।
निपीय जागर्त्ति सुखेन तं शिवः स्पृशन्निमां मुह्यति निद्रया हरिः ॥
कनक कनक तैं सौ गुनो , मादकता अधिकाय ।
उहि खाये बौरात नर इहि पाये बौराय ॥

मनुष्य धन से लोक और परलोक दोनों सिद्ध कर सकता है। क्योंकि इस लोक में तो प्रत्यक्ष ही उसके द्वारा अनेक प्रकार के मनमाने सौख्यों का यथेष्ट अनुभव कर सकता, बड़े बड़े नृपतियों को ऋण देकर, उनकी आखें नीची कर सकता, जंगल में भी मंगल करता और नगर में अधिपतियों के समान जीवन व्यतीत कर सकता है। मूर्खातिमूर्ख भी हो, तथापि अवश्य एक प्रतिष्ठित व्यक्ति गिना जाता और चाहे तमाचे खाने ही के योग्य बातें क्यों न बोलता हो, पर तब भी उसकी बात को सुन कर सब लोग सराहते और हँस कर यही कहते कि आप बड़े विचक्षण और समझदार हैं। यों ही परलोक इस कारण सिद्ध कर सकता है, कि इस लोक में धन द्वारा बहुतों का उपकार कर सकता, पण्डित और कवियों को उत्साह दे

सकता, तपस्वियों के तप में सहायता कर सकता, दरिद्रों को वस्त्र और भोजन दे, परमात्मा के सुपुत्रों में गिना जा सकता और अनेक सत्कीर्ति लाभ कर सकता है। इसी प्रकार यज्ञादि धर्म के अनुष्ठान द्वारा सहजही स्वर्ग का साधन भी कर सकता है। परन्तु उन सब का मूल दान ही है विशेषतः कलिकाल में जैसा कि कहा है "दानमेकं कलौ युगे"। क्योंकि इस युग में दरिद्रता की अधिकाई है, इससे और सब धर्म्मों से कलि में दान ही अति कठिन और उपयोगी है।

इस दान के विधान में भगवान श्रीकृष्णचंद्र गीता में यों आज्ञा करते हैं—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम्॥

अर्थात् जिसमें प्रत्युपकार की कोई आकांक्षा नहीं है, पवित्रदेश और युक्त काल में जो दान सत्पात्र में दिया जाता है वही सात्विक और श्रेष्ठ है। तब क्या ऐसा दान कर, मनुष्य स्वर्ग वा ब्रह्मलोक तक सीधी सोपानपंक्ति नहीं लगा सकता? दान मनुष्य जीवन की सुगन्धि है। जैसे बहुत से प्रसून हैं जिनकी महक से सारा वन आमोदित हो जाता है, वैसे ही जहाँ दानी जन रहते, वहाँ के सब लोग उन्हें जानते और उनके उपकार रूपी सुगन्धि को प्राप्त कर प्रमुदित होते हैं। कालिदास सूर्य्यवंशियों की प्रशंसा में कहते हैं कि वे अर्थ का संचय इस लिये नहीं करते थे कि उपभोग करें किन्तु त्याग करने ही के अर्थ। निदान जो उपकारी जन हैं, वे अपने सुखों में औरों को भी भाग देते हैं। महाराज भर्तृहरि कहते हैं कि दान मनुष्य का सच्चा आभूषण है—

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन दानेन पाणिर्नतु कङ्कणेन।
विभाति कायः खलु सज्जनानां परोपकारैर्नतुचन्दनेन॥

इसमें सन्देह नहीं कि जैसे शस्त्रों को काम में लाने की कुशलता चाहिये वा जैसे विद्या पढ़ उससे विविध कार्य्यों में सहायता लेने की विचक्षणता चाहिये, जैसे शक्तिमान मनुष्य को अपनी शक्ति को अच्छे कार्य्य में लाने की बुद्धि चाहिये, वैसे ही प्रचुर अर्थ को भी उचित कर्त्तव्य में विनियोग करने के लिये भी सत्यतः कुछ न्यून पाण्डित्य की आवश्यकता नहीं है। दैवी सुकवि शेली (Shelly) कहता है कि "हम अर्थ चाहते हैं क्योंकि उसके यथार्थ उपयोग और उपभोग को जानते हैं। वह सहस्त्रों से काम ले सकता और वह यथेष्ट अवकाश दे सकता है। और जो सुकवि वा दार्शनिक अपने ऐसे अवकाश को सत्य विचारों के प्रचारार्थ में लगाते हैं, हमारी समझ में वे इस लोक को परम उत्कृष्ट उपहार समर्पण करते हैं"।

यों तो कोई इसे ईंट पत्थरों की दीवारों के बनाने में व्यय करने को परम उचित समझता, कोई अनेक दास दासियों को रखने ही में इसकी परम सफलता मानता, कोई स्वैरिणियों के मिथ्या प्रेम पाश में पड़, अपने शरीर और अर्थ दोनों को पतङ्ग सा भस्मी-भूत कर देना हो जीवन की सफलता जानता, कोई कुत्तों का झुण्ड रखता, तो कोई बड़ी स्पृहा से सहस्त्रों कुक्कुटों को पालता, कोई घंटे में नब्बे मील चलनेवाली गाड़ियाँ मँगाता, यों ही कोई चाँदी और सोने की कुर्सी मेज़ और आसा सोटा बनवाता और उसे अपने साथ ले चल कर, निज कर्तव्य की इतिश्री समझता, वा श्वान और अश्वों को अनेक आभूषण से भूषित कर प्रशंसा की आशा से चतुर्दिक दृष्टिपात करता, योंही इस अर्थ से अनेक व्यर्थ कार्य्य करता है। किन्तु ऐसे सज्जनों की संख्या, इस संसार में बहुत ही विरल है कि जो अपनी इस अपूर्व शक्ति को किसी अच्छे और सत् कार्य्य

में लगाते कि जिससे इस लोक में कोई उचित व्यक्ति, जाति, समाज वा देश उपकृत होता, स्वयम् उनकी भी आत्मा सुखी होती और परलोक में वे धर्म के भी भागी होते।

मेरे एक परम प्रिय और विचक्षण मित्र ने किसी अपने वृद्ध मित्र से यह कहा "आप अब अति वृद्ध हुए सन्तानहीन भी हैं, इससे अच्छा होता कि यदि आप अपने इस प्रचुर अर्थ को किसी सत्कार्य्य के अर्थ उत्सर्ग करते। यह सुन कर वह बड़े क्रुद्ध हुए और आँखें लाल लाल कर कहने लगे कि वाह साहब! आप तो अच्छे शुभचिन्तक मिले। क्या आप मुझे मरणासन्न समझते हैं, जो इन अन्तिम उपदेशों को देना प्रारम्भ कर चले? क्या आप यह चाहते हैं कि मैं अपना सर्वस्व खोकर अभी से कौड़ियों का तीन २ बन जाऊँ? आप कृपा कर मेरे कर्णों को और अपनी जिह्वा को ऐसे व्यर्थ उपदेशों से कष्ट न दिया कीजिये और प्रथम आप स्वयम् कुछ कर दिखलाइये"। इसे सुन वे विचारे हितकारी मित्र जी चुपचाप धीरे से उदास मन घर लौटे और कहते हैं कि उन्होंने परोपदेश करना उसी दिन से छोड़ दिया, क्योंकि उन्होंने समझा कि उपदेश से मित्र भी प्रायः शत्रु बन जाया करते हैं। और इसी सत् उपदेश के कारण ही महात्मा सुक़रात को (Socrates) प्राण नाशक विष पीना पड़ा था।

इसोप (Æsop) एक कहानी कह दिखाता है कि अर्थ का महत्व केवल उसके सम्यक विनियोग में है। कहानी का सारांश यह है कि किसी सूम ने रक्षा के अर्थ अपने समस्त धन को बटोर, एक स्वर्ण का पिण्ड बनाकर एक ठौर पृथ्वी में गाड़ दिया और वह नित्यप्रति प्रातःकाल एक यष्टि के द्वारा उसके अस्तित्व का ज्ञान कर, मारे आनन्द के दिन भर, तुरंग सा

उछलता टहला करता। उसको एक दास भी था, जो इन सूम जी से भी अधिक समझदार और परिडत था। मनीमन में वह तर्क करने लगा कि साहु जी नित्य इस कोठरी में जाकर छड़ी से क्या टटोला करते हैं। एक दिन उसने साहु जी के परोक्ष में जो पृथ्वी खोदी तो देखा कि उसमें अग्नि सा देदीप्यमान कांचन पिण्ड चिथड़ों में लपेटा एक घट में रक्खा था, बस वह वहाँ से उसे तुरंत निकाल कर, अपने हृदय में लगा लिया, और उस दयासागर जगदीश्वर को सतत् धन्यवाद दे, स्वगृह को चलता हुआ। दूसरे दिन जब प्रातःकाल सूमजी ने नियमानुसार अपने प्रियतम स्वर्ण पिण्ड को नियत स्थान में नहीं पाया तो लगे ढाढ़ै मार मार कर, अधीर हो बिलपने और बिलखने, जिस दीन दृश्य को देख उसका एक दयालु पड़ोसी उसके गृह पर आया, और उसकी शोक कथा को सुनकर कहा कि हम उतनाहीं स्वर्ण वा उससे अधिक उसी ठौर पर रख देते हैं आप उसे यष्टि से नित्य टटोल लिया कीजिये। और वह वहीं पर मृत्तिका का एक वृहत् पिण्ड स्थापन कर दिया और मुस्कुरा कर कहा कि यह पिण्ड भी आपका उतनाही काम देगा जितना कि स्वर्ण पिण्ड देता था। सारांश यह कि बहुत से मनुष्य मधुमक्षिकाओं की प्रकृति के होते हैं जो अनेक उपायों से दूसरों ही के हित के अर्थ, अर्थ का संग्रह करते और आप स्वयम् बहुत थोड़ा खाते पीते वा भोग करते हैं। लार्ड एवबरी (Lord Avbury) कहते हैं कि यदि मनुष्य सारा जीवन केवल अर्थ के संग्रह करने में व्यतीत करता है तो जिस उपाय से अर्थ को उपार्जन करता है वह उसे उपभोग करने से वारण करता है और दरिद्रता की वासना उसके प्रति रोम कूप में प्रविष्ट हो जाती है।

यह एक और आश्चर्य्य की बात है कि द्रव्य के उपार्जन

करने में और उसे संग्रह करने से मनुष्य की कदापि तुष्टि नहीं होती, वरञ्च उसके संग्रह करने की तृष्णा दिन प्रति दिन अधिक ही होती जाती है। ओलिवर गोल्ड स्मिथ (Oliver Goldsmith) ने सत्य कहा है कि यद्यपि तोड़े के पश्चात तोड़े खनाखन्न ख़ज़ाने में इच्छानुसार चाहे भरते जाते हों, पर खेद है कि तौभी वह अहर्निश तोड़ों ही के लिए आहें भरा करता है। बाण भट्ट कहते हैं कि लक्ष्मी तोय राशि से उत्पन्न होने पर भी तृष्णाग्नि को प्रदीप्त करने वाली हैं। और यतीन्द्र श्री कृष्ण मिश्र भी लोभ के मुख कहलाते हैं कि—

> सन्त्येते मददन्तिनो मदजलप्रम्लानगण्डस्थलाः,
> वातव्यायत पातिनश्च तुरगो भूयोऽपि लप्स्येऽपरान्।
> एतल्लब्धमिदं लभे पुनरिदं लब्धाधिकं ध्यायतां,
> चिन्ता जर्जर चेतसां वत नृणां कानाम शान्तेः कथा॥

मदजल से मलिन गण्डस्थलवाली हस्ती और वायु सदृश तीक्ष्णगामी तुरंग हुई हैं फिर और भी प्राप्त करेंगे। यह तो प्राप्त हुआ और प्राप्त कर रहे हैं ऐसा ही प्राप्त से अधिक प्राप्त करने के ध्यान में मग्न और उसकी चिन्ता से जर्जर हो उठते हैं, ऐसे मनुष्यों के हृदय को शान्ति लाभ की क्या कथा है? फिर नितान्त भूखी और प्यासी जिनको प्यारी तृष्णा कहती है कि हाय! कोट्यवधि ब्रह्मांड भी तो मेरी जठराग्नि को शान्त नहीं कर सकता। दार्शनिक इमरसन (Emerson) कहता है कि "दरिद्र ही अर्थ को चाहेगा और ज्यों ज्यों उसके समीप अर्थ इकट्ठा होता जायगा त्यों त्यों वह और भी अभिलाषा करेगा। जैसे मद्यपी ज्यों ज्यों मद्य पीता है, त्यों त्यों उसकी और भी अधिक मद्य पान की तृष्णा प्रतिक्षण बढ़ती जाती है"।

अर्थ ही के अर्थ यह बात नहीं यथार्थ है वरञ्च सब विषयों के संग्रह में यही कठिनता वा न्यूनता है। क्या सिकन्दर ने संसार के विजय करने से कभी विश्राम पाया? क्या सीज़र की तृष्णा सारे यूरप में फैल कर भी विश्राम पा सकी? वा ययाति सहस्रों वर्ष काम के उपभोग करने पर भी काम-दावानल को शान्त कर सके? वा आठ पहर चौसठ घड़ी संगीत की सरस सरिता में निमग्न रह कर भी हज़रत वाज़िद अलीशाह बहादुर प्यारी जुगुप्सा को न पा सके। सुतराम् वह निश्चय बड़ा ही अज्ञ है, जो समझता है कि जब वह किसी विषय के संग्रह करने से प्रयोजन से अधिक प्राप्त कर लेगा, तृप्त हो जायगा अथवा उस भोग से थक जायगा। क्योंकि "न जातुकाम, कामानां उपभोगेन शाम्यति"।

निदान हमारी समझ में तो अर्थ के उपार्जन करने वाले अहर्निश आह भरते, देखनेवाले हाय! हाय! करते और सुनने वाले ईर्षा से मुर्छित ही रहते हैं। जान्सन (Johnson) कहता है कि—"द्रव्यवान को न कृष्ण पक्ष में सुख है, और न शुक्ल पक्ष में आनन्द है। क्योंकि काली रात चोरों को छिपाती है, और उजेली चौर्य्य वस्तु को दिखाती है"। इसी से वह रात्रि कि जिसमें सारा संसार सुख पूर्वक सोता रहता है, वे भयावह स्वप्न देखते और चिल्लाते हैं कि हाय हाय चोर सब धन लूटे चले जा रहे हैं, क्योंकि जैसा कहीं हमने पढ़ा है कि जिस वस्तु को हम बहुत प्यार करते हैं उसके नाश की शंका प्रतिक्षण हमें सताया करती है। इसी से ज्ञानी जन अर्थ का संग्रह नहीं करते क्योंकि वह उनके शान्ति रूपी राज्य में अवश्य ही विद्रोह फैलाता है। पर क्यों कि हम गृहस्थों का इसके बिना काम नहीं चलता अतः यह चाहे कैसाही अशान्ति दायक क्यों न हो, हम सब इसे प्रणाम ही करेंगे। इसीसे कोई इसे पुत्र कलत्र और

सब वस्तुओं से अधिक प्यार करते और कहते हैं कि द्रव्य ही इस जगत में सबसे श्रेष्ठ और स्पृहणीय है क्योंकि यह भी एक प्रकार का इन्द्रजाल का खेलाड़ी है कि जब जो चाहा बात की बात में प्रस्तुत कर लिया।

यद्यपि इसमें कुछ सन्देह नहीं कि अर्थ परम स्पृहणीय वस्तु है, पर तौ भो इसे इतना प्यार न करना चाहिए कि इसके अभाव में प्राण त्याग करना पड़े। जैसा इपिसियस (Apicias) ने किया। सेनीका (Seneca) लिखता है कि जब इपिसियस ने व्यसन में अपनी समस्त पैतृक सम्पत्ति को नाश कर दिया और जब केवल दो तीन लाख रुपया अवशिष्ट रह गया तो यह समझा कि कौन जाने वह एक दिन दरिद्रता के कारण भूखों मर जाय, आत्महत्या कर ली।

मनुष्य ज्यों ज्यों धनी होता है त्यों त्यों और भी विशेष वह उदार होने के स्थान पर स्वभाव से कृपण और दरिद्र होता जाता है। किसी ने सच कहा है कि—तवंगरी व दिलस्त नव-माल व बुज़ुर्गी व अक़्लस्त, न वसाला। वाण भट्ट कहते हैं कि "लक्ष्मी इन्द्रजाल के समान अपने परस्पर विरुद्ध चरित्र को दिखला रहीं हैं। अर्थात् ऊँचे पद पर स्थित कर देतीं हैं पर तौभी स्वभाव क्षुद्र बनातीं। यद्यपि अमृत के साथ उत्पन्न हुई हैं परन्तु परिणाम में कटु हैं। यद्यपि पुरुषोत्तम में रत हैं पर तौभी खलजनों की प्रिया हैं ज्यों ज्यों यह चपला प्रकाशित होती, त्यों त्यों दीप शिखासी मलिन कज्जल रूपी कर्म्म को प्रगट करती है"।

चार्ल्स द्वितीय (Charles II) जब जंगल में निःसहाय घूमता था तो अहीर और गड़ेरियों की झोपड़ियों में विश्राम लेता और उनसे अपने असली रूप को प्रगट करता था। वह

लिखता है कि यदि हम उन धनाढ्यों के घर जाते, जिनके पुरखों ने हमारे बाप दादों से अनेक उपाधियाँ तथा असंख्य धन पाये हैं तो वे निश्चय थोड़े से भी अर्थ की प्राप्ति के हेतु हमें क्रूर क्रामवेल (Cromwell) के हाथ दे देते और वह दारुण, निश्चय मेरा शिरच्छेद कर देता। एक हमारे परम प्रतिष्ठित वृद्ध मित्र कहते थे, "जनाब बड़े आदमियों में इमान कहाँ ? हमने तो देखा है कि एक समय जब हमें द्रव्य की परम संकीर्णता थी और कार्य्यवशात् एक लखपती महाजन के घर जाना पड़ा तो वहाँ पर संयोग से हमारी एक चवन्नी पैसों के सहेजने में गिर पड़ी। जब मैं सवेरे उनके यहाँ गया और पूँछा कि गतदिवस मेरी एक चवन्नी छूट गई थी क्या आपने पाया है ? तो उन्होंने कहा कि मैं तो यहीं था यदि आपकी चवन्नी गिरी होती तो अवश्य मिलती। आप देखते हैं कि इसी आ-शंका से तो मैं कोई सेवक भी नहीं रखता"।

धन का मद अति उत्कट है। इस विष को पचाने के लिये भगवान शिव की सी सामर्थ्य की आवश्यकता है। बाण कहते हैं कि "लक्ष्मी जनित उन्माद से वधिर हो गये हैं कर्ण जिनके वे उपदेश करने पर भी नहीं सुन सकते और सुनने पर भी मातङ्गों की भाँति अपने नेत्र पट को ढाँप लेते हैं और इस भाँति अहंकार रूपी दाहज्वर से मूर्च्छित और विह्वल हो गई है प्रकृति जिनकी, वे प्रायः हितोपदेश देने वाले गुरुजनों का अव-हेलन करते हैं"। वे अपने को प्रायः स्वयम् बुद्धिमान पण्डित तथा विचक्षण मान लेते हैं क्योंकि "अर्थस्य सर्वेदासाः" अर्थ के निमित्त सबी लोग उनके पास जाते और अपने अपने अनेक दुःखों को सुनाते कि वे उनकी दीन अवस्था पर कुछ कृपा करें और कुछ अर्थ द्वारा उनकी सहायता करें। पर धनी लोग अपने मनीमन में यह सोचते कि यदि मैं पण्डित न होता तो

इतने मनुष्य मुझसे अपने अनेक दुःखों को सुनाकर क्यों सम्पत्ति लेते और बात बात पर कहते कि आप धन्य हैं आप सा और कौन समझदार तथा ज्ञानी है। वास्तव में अनेक मनुष्य प्रायः अपने रूप को इन अर्थी चापलूसों के कारण विस्मृत कर जाया करते, और अपने को कुछ दूसराही समझने लगते हैं। मैंने ऐसे बहुत ही कम मनुष्यों को देखा और इतिहासों में पढ़ा है कि जो प्रचुर द्रव्य के अधिकारी होते हुये भी उसके अनेक अवगुणों से रहित हों।

कादम्बरी में जब चन्द्रापीड़ सकल शास्त्रों को पढ़ चुका और जब उसका राज्याभिषेक होने वाला था, वैशम्पायन ने कहा कि यद्यपि आपको अब अल्प शिक्षा की भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि शास्त्रों के निरीक्षण से जो कुछ जानना था आप जानते हैं। तौभी इस लक्ष्मी से उत्पन्न तिमिर को कोई दूर नहीं कर सकता। यह अविनय का निधान हैं, शास्त्र जलसे प्रक्षालित निर्मल बुद्धि को भी कलुषित कर देती है। यद्यपि आप बड़े श्रेष्ट वंश के हैं, तौ भी क्या चन्दन के संघर्षण से दावा नल सारे वन को नहीं दहन करता? क्या बड़वानल तोय राशि में रहने के कारण जल को नहीं सन्तप्त करता?

हमारे यहाँ के कवियों ने भगवती लक्ष्मी का नाम ही चञ्चला रक्खा है। क्योंकि यदि वे आज इस देश पर मुस्कुरा रही हैं तो कुछ काल के अनन्तर दूसरे देश के भाग्य के सितारे को चमकाती और अपने पुराने प्रेमियों का नाम भी नहीं लेतीं। आज यहाँ, तो कल दूसरे ठौर पर इतराती हैं, यों ही एक स्थान पर रहना मानो आप पाप समझती हैं। इन्हें इसमें आनन्द ही नहीं कि एक ठौर निवास करें वा प्रकृत्या ऐसी ही हैं। एडिसन (Addison) मुद्रा के विविध यात्राओं में

मुद्राके मुख से कह लाता है कि हम सब को यात्रा से अधिक और कोई प्यारी वस्तु नहीं है।

उद्भट बाण भट्ट लिखता है कि "खड्ग मण्डल रूपी कमलवन में बिहार करनेवाली भ्रमरी लक्ष्मी, क्षीरसागर के मथन समय में पारिजात पल्लव से राग को, चन्द्रमा की कला से उनकी एकान्त वक्रता को, उच्चैश्रवा अश्व से चञ्चलता को, कालकूट से मोहन शक्ति को, मन्दार से मद, कौस्तुभ मणि से निष्ठुरता आदि चिन्हों को एक साथ रहने के कारण उनकी विरहावस्था में चित्त विनोदार्थ संग्रह करती हुई उत्पन्न हुई"। संसार में इनसे निःशील और निष्ठुर कोई नहीं है। यह तो अनेक गुणों से वद्ध होने पर भी खिसक जाती और बड़े योद्धाओं के कृपाण रचित पिंजड़े से भी उड़ जाती हैं। न परिचय वा योग्यता ही पर दृष्टि देतीं, न रूप, कुल, शील, पाण्डित्य, धर्म्म वा सुलक्षण को देखतीं किन्तु गन्धर्व नगर सदृश देखते ही देखते क्षणमात्र में लोप हो जाती हैं। मानो मन्द्राचल से मन्थन के कारण महोदधि में जो भारी भारी भँवर उत्पन्न हुए थे, उनके मध्य घूमने के कारण, अद्यावधि परिभ्रमण किया करती हैं। बहुतों ने बहुत ही यथार्थ कहा है कि जिनके समीप लक्ष्मी का निवास होना चाहिये, वे तो दीन और दरिद्र रहते और जिन्हें कौड़ियों के लाले पड़ने चाहियें वे श्री सम्पन्न और समृद्धिवान होते हैं। बाणभट्ट कहते हैं, "यह कौलिन्य को साँप सरीखा देख कर कूद जातीं, शूरबीर को काँटा सी बचातीं, दाता उदार को भयावह स्वप्न के समान कभी स्मरण भी नहीं करतीं, विनीत को पापी सा लाँघ जातीं और मनस्वी पर पागल सा हँसती है"। इसीसे तो यूनान वालों ने क़िस्मत को अन्धी बनाया और उसके हाथ में एक चर्खा दे दिया कि जिसे वह अहर्निश चलाती है। कहते

हैं कि इसी कारण मनुष्य धनी से दरिद्र और दरिद्र से धनी हुआ करते हैं। कालिदास ने भी मेघदूत में मनुष्यों के भाग्य पर ठीक कहा है।

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा।
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।

अर्थात् ऐसा कौन मनुष्य इस विश्व में हुआ जो सदा केवल सुख वा दुःख ही झेले हो। यह दशा तो चक्र के पहिये के सदृश ऊँचे से नीचे और नीचे से ऊँचे घूमा करती है। और यदि प्रकृति देवी ऐसी चर्खा-कातनेवाली क़िस्मत को न नियुक्त किये होती तो सत्यतः संसार में कुछ आनन्द न आता। यदि केवल भारतवर्ष ही समृद्धिवान बना रहता और शेष सब देश निवासी दरिद्र और भूखों ही मरते होते, अथवा युनान और रोम ही में लक्ष्मी रह जातीं और लण्डन का मुख न उजेला करतीं वा पेरिस में पहुँच अपने सहज स्वभाव को न धारण करतीं वा न्यूयार्क में बैठ कर जगत् को न विस्मित करतीं अथवा जापानियों को आलिङ्गन कर, संसार को न ललचाती वा हमी धनवान होते और सब हमारे दास वा सेवक ही होते अथवा सब धनी ही धनी रहते तो क्या आनन्द था? क्योंकि आनन्द तो सदा विभिन्नता और परिवर्तन ही में है। चाहे इस समझ का यही कारण क्यों न हो कि हम प्रकृति के सवी कार्य्यों के प्रसंशक हैं, और उसी को उचित और कल्याणप्रद समझते हैं। अतएव हमें भाग्य देवी को भी अल्प ही उलहना देना पड़ता है क्योंकि किसी के कथनानुसार यही सिद्धान्त रहता कि "राज़ी हैं हम उसी में, जिसमें तेरी रज़ा है"। हम तो मनुष्य के भाग्य की नदी की विविध अवस्थाओं से समता देंगे जो कभी तो ऐसी बाढ़ पर रहती कि फूली नहीं समाती और जिसकी अपूर्व शोभा को देखने और प्यारी निनाद

संगीत को सुनने के हेतु, उसके तटों पर दर्शकों के झुण्ड के झुण्ड आ एकत्रित होते और आनन्द मनाते हैं। कभी शरद ऋतु में वही निर्मल और शान्त बहती और ग्रीष्म में दुर्बल प्रतनु सलिला हो जाती, जिस दीन दशा को देख मनुष्य सहज ही सेतु, बाँध वा शिला उसके हृदय पर रख देते। योंही क्षुद्र झरनाओं को देखिये कि जब अपनी बाढ़ पर होते, तो उस समय तो वे अगम्य और अपार देख पड़ते, परन्तु कुछ ही काल के अनन्तर फिर सिकुड़कर अपने पूर्व रूप को धारण कर लेते हैं। किसी की दशा ऐसी भी होती, जो आती और चली जाती और किसी को पता भी नहीं लगता अथवा भाग्य के दिन वसन्त ऋतु से हैं जिसमें जिधर दृष्टि फेरिये वहीं नेत्रोत्सव निरख पड़ेगा और दरिद्रता के दिन ग्रीष्म ऋतु से हैं कि जिस ओर देखिये उजाड़ और भयंकर दृश्य दिखाई देते अथवा वृक्षों के समान कहें कि जब वे पुष्पोद्गम दशा में हैं तो चारो ओर से चाहनेवाले चापलूस भ्रमरों की झंकार मची रहती है और जब वे फलवान होते तो सवी उन पर लक्ष्य लगाने के लिये उद्यत रहते हैं किन्तु दुर्भाग्य से जब फल पुष्प विहीन होते तब कोई आँख उठा कर चाव से देखता भी नहीं।

द्रव्य के उपार्जन में इसका सदा ध्यान रखना चाहिये कि वह अन्याय से न उपार्जन किया जाय। यद्यपि इस का लोभ बड़ा कठिन है तथापि इसलिए कि वह चिरस्थाई रहे हम सब को चाहिये कि उसे असत रीति से न उपार्जन करें, क्योंकि ऐसा उपार्जित धन, अल्प कालही में कपूर के समान उड़जाता है। जैसा कि लोग कहते हैं कि हरामी का माल किसी भी यत्न से क्यों न रखिये पर वह निश्चय चला जाता है। यद्यपि लोभ की ललक कुछ ऐसी ही होती है कि मनुष्य प्रेमियों की भाँति

सब प्रकार की लज्जा को त्याग कर, द्रव्य देव को जिस किसी प्रकार से हो हस्तगत करता और लोक की समालोचना पर कुछ भी ध्यान नहीं देता है।

परन्तु ऐसा भी देखा गया है कि जो अर्थ वा राज्य अन्याय से प्राप्त किया गया है, वह उपार्जन करने वालों के हृदय को भी सुख के स्थान पर दुखदायक ही हुआ है। क्योंकि मैकवेथ (Macbeth) साहस करके, अपने सरल स्वभाव तथा दयालु राजा को स्वप्नावस्था में मार कर आप राज्य सिंहासन पर बैठ कर, क्या अपनी नितान्त दुखी आत्मा को विराम दे सका? वा हेमलेट (Hamlet) का चचा अपने सोते हुये भाई के कर्ण कुहर में प्राणापहारक विष डालकर और उसको प्रियतमा पत्नी का संयोग सुख सुलभ कर, एवम् सारे डेनमार्क का राज्य पाकर, क्या किञ्चित मात्र भी अपनी आत्मा को शान्ति दे सका? अथवा दुर्योधन अपने योग्य भाइयों को कपट प्रबन्ध से जङ्गल में निष्काशन कर, विस्तीर्ण हस्तिनापुर का साम्राज्य सुखपूर्वक भोग कर सका? इतिहास ग्रन्थों में लिखा है कि दुर्दान्त महमूद गज़नवी जब मरणासन्न हुआ तो अपने भृत्यों को आज्ञादी कि जो कुछ उसने अद्यावधि अर्थ कोश सञ्चय किया है, वह सब उसके समक्ष लाया जाय। कहते हैं कि जब उस लोभी बादशाह के आगे ढेर का ढेर धन और रत्नराशि गाँज दी गई तो वह ढाढ़ें मार कर रोने लगा और कहा कि यदि मुझे यह निश्चय होता कि यह सब मेरे साथ नहीं जायगा तो मैं इतने पवित्र देवालयों को तोड़ तथा अनेक नगरों को लूट और सहस्रों दीन हिन्दुओं के गले काट कर इसको कभी न लाता।

चाहे भगवती विश्वविमोहनी लक्ष्मी को कवियों ने अनेक अवगुणों से क्यों न दूषित किया हो परन्तु हम तो इस सर्वजन

वल्लभा को नमस्कार हो करेंगे, क्योंकि इन्हीं की कृपा कटाक्ष से अनेक नगर बस जाते और हिमालय शृङ्ग सदृश प्रोत्तुङ्ग उच्च अट्टालिकायें आकाश को चुम्बन करने लगतीं। उद्यानों में ऋतुपति कुसुमाकर की शोभा के हेतु सरस और सुन्दर कुसुमों की वृद्धि होती, जिसे देख उत्साहित प्रेमी पिक आम्र की मञ्जरियों पर आरूढ़ हो उसकी शोभा और स्वाद के प्रशंसा के संगीत गाते। कृत्रिम नदियाँ प्राकृतिक प्यारी नदियों को शोभा को लजातीं। महोदधि का अन्तःकरण विदीर्ण करके उसके विविध रत्न; जिसे कि वह बड़े यत्न से अपने हृदय में छिपाकर रखता है, धनियों के लिये पनडुब्बों के द्वारा अपहरण किये जाते। उर्वशी सदृशस्वैरिणियों के कटाक्ष निरीक्षण का अलौकिक सुख इन्हीं की कृपा से वैषयिकों को सुलभ हो सकता है। यों ही जो कुछ इस लोक में अनूठी और और अपूर्व वस्तु देखने में आती है, वह सब उन्हीं की कृपा से प्राप्त हो सकती है। इससे हे मूर्ख को पण्डित करने वाली! और पण्डित को मूर्ख, ग्राम को नगर और नगर को ग्राम, मनुष्य को देव, सती को स्वैरिणी और असती को सती, अन्धकार को उँजेला और उँजेला को तिमिरमय बनाने वाली, पापी को पुण्यवान और पुण्यवान को पापी, कुत्सित को रूपवान और रूपवान को कुत्सित कर देने वाली, सर्वजन मनवशकारिणी लक्ष्मी! तुम्हारी महिमा अपार है। ये कविजन तो प्रायः मुखर हुआ ही करते हैं इन सब की बातों पर ध्यान न देकर, मुझपर और मेरे इस भारत वर्ष पर निरन्तर कृपा विस्तार कीजिये।

प्रेम

म को हम तीन भागों में विभक्त किया चाहते हैं, प्रथम वह जो इस अखिल भुवन के रचियता और पालनकर्ता में होता है। परन्तु इससे कि हमारा भक्ति पर एक स्वतन्त्र लेख लिखने का विचार है अतः उसके विषय पर यहाँ कुछ न कहेंगे। द्वितीय प्रकार का प्रेम वात्सल्य और तीसरे प्रकार का स्त्री सम्बन्धी है।

निःसन्देह भक्ति के पश्चात् यही दूसरे प्रकार का प्रेम है जो सात्विक तथा राग और द्वेष से रहित है। वीर भद्र डगलस राज्य से निष्कासित हो, अकेले कानन शैल और दुर्गों में अपने प्रिय लुफ़ा नामक श्वान के साथ घूमते २ उस गिरिगह्वर के सन्निकट जा पहुँचा, जहाँ उसकी प्राण से भी अधिक प्यारी दुलारी दुहिता एलेन (Ellen) रहती थी; उसे देखते ही मारे दया और प्रेम के उसके नेत्रों से पवित्र बाष्पविन्दु बहने लगे, जिसपर स्वदेशानुरागी स्काट कहता है, कि "इस में सन्देह नहीं कि इसका कारण तो निश्चय कुछ इस लोक ही की भावनायें हैं, तथापि इनमें अधिकांश मानुषीय

की अपेक्षा दैवी ही अंश प्रतीत होते हैं। यदि करुणाजनित अश्रु-विन्दु भी हैं, तो वे ऐसे पवित्र हैं कि यदि देवताओं के भी कपोलों पर दर्शित होते तो उन्हें कलुषित न कर सकते"।

माता पिता में स्नेह तो केवल बालकों ही के बाँटे पड़ा है, परन्तु यह स्नेह ज्यों ज्यों बालक जरठत्व को प्राप्त होता है प्रतिदिन क्रमशः ह्रास को प्राप्त होता चला जाता है ; वा योँ कहिये कि ज्यों ज्यों उसका मन इस लोक के और विषयोँ में प्रलीन होता है, त्यों त्यों उसकी पूर्व सात्विक शिशुता के सरल स्नेह का अभाव होता जाता है। बहुत से इसे लड़कपन का स्वभाव समझ, हृदय देश से दूर करते जाते हैं, इसी से किसी कवि ने सच कहा है, कि लड़कपन में माता और पिता से बालकोँ का वियोग कराना मानो वात्सल्य रूपी द्रुम को काटना सा है। इससे यथा शक्ति लड़कों को छात्रभवन (Boarding House) में रहने के लिये भेजना समीचीन नहीं है ; क्योंकि ऐसा कौन है जो अपने प्रिय सन्तान को अज्ञात पथिक सा बनाना चाहेगा। मैं जब छात्र भवन से लौट कर घर को आया तो न जाने क्यों अपने माता और पिता से भी लजाने लगा और यदि यह भी कहें तो कुछ अन्यथा न होगा, कि वे सब मेरी आँखो में कोई माननीय देवता से जान पड़ने लगे, न कि प्रिय माता पिता के से। क्योंकि इनके समीप जाने में अब त्रास आता, माँगने में लज्जा लगती, और कदापि हृदय यह नहीं स्वीकार करता कि अपनी आवश्यकता या कष्ट को सुनाकर, उन की सच्ची सम्मति लें। इससे माता पिता को चाहिये कि अपने लड़कों को अपने साथ रक्खें, जिससे कि उनकी शिशुता का अनन्य अनुराग उनके हृदय में यथावत् खचित रहे, क्योंकि यह तो एकवार विस्मृत होने से पुनः स्थापित नहीं हो सकता।

वात्सल्य प्रेम की न्यूनता चाहे मनुष्यों में देख पड़े, परन्तु पशु पक्षियों में तो कदापि इसका अभाव नहीं देख पड़ता। मैंने ऐसे मनुष्य देखे हैं जो अपने सुख के अर्थ निज सन्तानों को छोड़ अलग घर बना चैन करते और उनके बालक और बालिकाएँ कुत्तों की नाईं घर घर के टुकड़े माँगते फिरते, किन्तु उनके हृदय में किञ्चित दया का उद्गार न हुआ। अनेक मनुष्य राज विद्रोह के त्रास से अपने बच्चों से मुँह मोड़, निज देश छोड़, अन्य देशों को भाग गये, परन्तु यह तो न कभी पढ़ा और न सुना कि पशु वा पक्षी अपनी सन्तान को निःसहाय छोड़ अलग घर बना कर बसे हों ; वरञ्च बहुतेरे अपने प्राण को भी देकर अपने बच्चों को त्राण दिये हैं। कादम्बरी में, जहाँ कि यमकिंकर सदृश भयंकर व्याधा की शाल्मली वृक्ष पर शुक के फँसाने के लिये चढ़ने की कथा है, शुक कहता है, कि "जब तात ने प्रतीकार शून्य प्राणहारिणी विपत्ति को आसन्न देखा तो मारे त्रास के थर थर काँपने और अश्रुपूर्ण चञ्चल नेत्रों से चतुर्दिक देखने लगे, भय से उन का कण्ठ नाल सूख गया, आपत्ति निवारण में असमर्थ और किंकर्तव्यता विमूढ़, स्नेह से परवश, यही तत्कालोचित प्रतीकार मान, हमारी रक्षा में अति व्याकुल, शिथिलगात्रबन्ध हो, अपने पक्षों से ढाँक कर मुझे अपनी गोद में छिपा कर बैठ गए। और जब कि वह कुटिल बहेलिया अपने बाएँ हाथ से उस कोटर को टटोलने लगा तो उन्होंने अपने पर और चोंच से चोटें चलाईं, किन्तु हाय ! उस दुष्ट ने वृद्ध शुक की गर्दन मरोड़ डाली परन्तु मुझे न लख पाया और इससे मैं बँच गया"।

प्रायः इतिहासों में भी देखने में आया है, कि मनुष्यों ने भी अपने प्राणों को त्याग अपने बाल बच्चों को बचाया है। साधु

चरित बादशाह बाबर से जब राजवैद्यों ने यह कहा कि युवराज हुमायूँ के बचने की अब कोई आशा नहीं है ; तो स्नेह से व्याकुल धीर धुरन्धर बाबर ने हुमायूँ के पलङ्ग की तीन वार परिक्रमा कर, हाथ जोड़ उस करुणानिधान जगदीश्वर से यह प्रार्थना की, कि हे जगदीश्वर इस बच्चे का प्राण दान दे और इस के बदले में मेरा प्राण लेना स्वीकार कर। कहते हैं कि उसी घड़ी से हुमायूँ अच्छा हो चला और मनस्वी बाबर बीमार हो परलोक को सिधारा।

लड़कों के बीच सन्तुष्ट मन बैठना और उनके अनेक सहज कौतुकों में साथ देना कुछ न्यून भाग्य का विषय नहीं है। अवश्यही वे मनुष्य धन्य हैं, कि जो अकारण हँसते हुए बालकों के, जिनके चाँवल से महीन दाँत किञ्चित दीख पड़ रहे हैं, तोतली बातों को सुनते हुए, गोद में लिए, उनके धूलि धूसरित अङ्ग से अपने वक्षस्थल को मलिन करते हैं। किसी ने सच कहा है कि—

दिगम्बरं गतव्रीडं प्रसन्नं धूलि धूसरम्।
भाग्यहीना न पश्यन्ति गंगाधरमिवार्भकम्॥

साहित्य दर्पणकार ने वात्सल्य को एक प्रधान रसमान कर, काव्यप्रकाशकार के इस रस को स्थान दान न देने पर आक्षेप करते हुए, प्रसिद्ध कवि कालिदास के इस अनुपम श्लोक को उदाहरण में लिखते हैं—

तमङ्कमारोप्य शरीरयोगजैः सुखैर्निषिञ्चन्तमिवामृतं त्वचि।
उपान्तसम्मीलितलोचनो नृपः चिरात् सुतस्पर्शरसज्ञतां ययौ॥

अर्थात् उस प्यारे बालक रघु को अपने अंक में बिठा कर, जिसके प्रत्येक अंगो से मानो अमृत की धाराएँ निकल रही हैं, दिलीपने आनन्द से नेत्र निमीलन करते हुए, बहुत काल तक सुत

सुखस्पर्श के आनन्द का अनुभव किया। एक दिन मैं प्रातःकाल की सुनहरी किरणों में सन्ध्यावन्दन कर, प्रसन्न मन लता मण्डप में बैठा, सुम्बुल की सरस शोभा एवम् पातालनिम्बकी नई निकली हुई चोटी तथा नर्गिस के नेत्र सरीखे पुष्पों को सराहता, छोटे बच्चों के साथ अपने क्रीड़ाशैल में खेल रहा था, जिसे देख एक हमारे वृद्ध पण्डित और मित्र अति प्रसन्न मन हो, हँसकर कहने लगे "तुलसी बाल गोपाल मैं, इन्द्र बापुरो कौन" जिसे सुन मैंने हाथ जोड़ ईश्वर को धन्यवाद दे कर कहा कि पण्डित जी मैं तो परमात्मा से प्रायः यही प्रार्थना करता हूँ कि भगवान पहिले तो इस विषय वासना पूरित लोक में पुनर्जन्म न दे और यदि जन्म दे तो ऐसे ही सज्जन सुहृद स्नेहसम्पन्न सरस परिवार में जैसा कि इस जन्म में दे कर सुखी किया है। यद्यपि यह कहावत सच है कि कोई ऐसा गुलाब नहीं है जिस में काँटे न हों परन्तु उस के स्नेही तो उस के काँटा रूपी दोष को स्वप्न में भी नहीं समझते।

महाराज दिलीप जब भगवान वशिष्ठ के पवित्र शान्त आश्रम को पधारे तो पुत्र प्राप्ति की प्रार्थना में यों कहा कि यज्ञ दान और तप जनित पुण्य, मनुष्य को केवल परलोक में सुख देता है, परन्तु शुद्ध वंशज इस लोक और अपर लोक दोनों में सुख का देनेवाला है। भगवन्! आप के स्नेह सलिल से सञ्चित आश्रम वृक्षसा मुझे सन्तति फल से विहीन देख क्या आप दुखी नहीं होते?

इस में सन्देह नहीं कि शुभ सन्तति से श्रेयस्कर कोई अन्य सम्पत्ति इस लोक में नहीं है। यदि सन्तान नहीं है तो राज्य और प्रचुर अर्थ का स्वामित्व केवल दुख का हेतु होता है। क्योंकि ऐसे जन तो विचारे, अपनी सम्पत्ति को देख रोते और

झीखते ही हैं कि हा! यह सब दूसरे ही के काम आएगा। यह राज्य हमारे वंश से गया, हमारे पुरखों के नाम का अन्त हुआ, इस वंश को अब कोई न जानेगा। पूजन, अपनी प्रार्थना और विविध विधि से विधि की लिपि को भी मिटाया चाहते और उसके जीर्ण कर्ण को बधिर करते, पर हताश हो अपने सारे वर्तमान सुख को सन्तान के अभाव के कारण अनुभव नहीं कर सकते। कौन जाने अत्यन्त विषय के उपभोग के कारण वा जिसमें थे सब निश्चिन्त न रहें, परमेश्वर धनवानों को पुत्र सुख नहीं देता। एक बङ्गाली बाबू हमारे साथ रेल पर किसी स्टेशन पर सवार हुये। कौतुकवश मैंने उन से पूछा कि बाबू साहिब आप का कुर्ता बहुत फटा और जीर्ण सा मालूम देता है भला यह मेरी दृष्टि का दोष है वा दरिद्र के दुलारे दारकों में से आप हैं। बाबू साहिब ने कुछ क्रोध और कुछ हँसी से यह उत्तर दिया कि इस कुरते को बहुत से सन्तान हीन राजा महाराजाओं के ढाखे की मलमल और टाँडे की जामदाँनी से प्रशस्त समझिये, क्योंकि हमारा अन्तःकरण यह समझ कर कि हमारे सन्तान चैन से खा-पी रहे हैं, नितान्त सन्तुष्ट रहता है और इन सब के अन्तःकरण में अनपत्य शोक की अग्नि सदा धधकती रहती है। मैं हँसने लगा और इस बुद्धिमत्ता के उत्तर को सुन कहने लगा कि इसमें सन्देह नहीं कि आप बहुतही ठीक कहते हैं क्योंकि परिवार के बिना वस्तुतः यह लोक शून्य और उजाड़ सा है, और यह भी ठीक है कि अच्छे लड़कों के खिलाने पिलाने और उनको सन्मार्ग में प्रवृत्त कराने से बढ़कर, मनुष्य को इस लोक में कोई दूसरा सुख नहीं है।

अब हम तीसरे प्रकार के प्रेम के विषय में जो सुप्रसिद्ध विश्वविमोहनी नारियों से सम्बन्ध रखता है कुछ कहा चाहते

हैं, जिसने की श्वेतवर्ण आवक्षस्थल-लम्बायमान श्मश्रुवान सर्वलोक पितामह चतुर्मुख ब्रह्मा पर भी न तरस खाया, जिस ने भगवान शिव से योगिराज को भी सती भवानी की मृतक शरीर को त्रिशूल पर रखा कर, शोक से अधोमुख कराये हुए, त्रैलोक्य में पर्यटन कराया, यों ही जिस ने बृहस्पति सरीखे विचक्षण विद्वान को भी मदान्ध कर उनसे परम असाधु आचरण कराया, एवम् साक्षात् भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी से भी किञ्चित काल पर्य्यन्त अपने विराट स्वरूप को विस्मरण करा, आधुनिक लीलाएँ कराई, जिसने भक्त जनों के मौलि मुकुट भगवान नारद को मर्त्यलोक की अप्सरा दमयन्ती के रूप में आसक्त करा, दीन हीन और मलिन बनाया। कादम्बरी में कपिञ्जल, पुण्डरीक की कातर वियोग दशा को देख कहने लगा कि "हा ! कामदेव को कुछ भी करना दुःसाध्य नहीं है, नहीं तो कहां हरिणशिशु सदृश सरल चित्त वनवासी मुनि कुमार पुण्डरीक और कहां विविध विलास भूषित हाव भाव कटाक्षादि पूरित गन्धर्वराज-पुत्री महाश्वेता"। परन्तु ये तो चैतन्य व्यक्ति हैं, यदि वह चाहें तो सुकुमारी कुमुदनी को भी दिवाकर का प्रेमी बनायें, एवम् कमिलिनी से चद्रमा का द्वेष छुड़ाये, रात्रि को दिन की सहचरी और दामिनी का जल से संयोग करादे।

प्रेम हृदय की एक अपूर्व ग्रन्थि, किम्वा ज्वर, अथवा मूर्छा, वा प्रियतमा के रूप की शोभा का हृदय में खचित हो जाना है। वा प्रतिदिन देखते देखते हृदय दर्पण पर एक प्रतिविम्ब का बन जाना है जो फिर त्रिकाल में मिटने वाला नहीं। शेक्सपियर कहता है कि प्रेम सीसे का पर है, उज्वल धूआँ है, ठंढी आग है, भला चंगा बीमार है, जागती नींद है, अवश्यही यह उस का रूप नहीं है कि जो दिखाई पड़ता है।

इस वृहत प्रेम के पाश में मनुष्य कई प्रकार से फँसाये जाते हैं। किसी के मन विहङ्ग तो नेत्रों से बन्दी किए जाते, कोई रूप दीपक पर अपने आप को पतंग से आगिराते; कोई किसी के हाव भाव पर चाव से प्राण देते, कोई संगीत सुन वहीं के वहीं लक्का कबूतर से ऐंठ जाते, कोई अलकावलि के जाल में फँसे पड़े कराहते हैं और कोई चतुर, उत्तम गुणों पर लट्टू हो जाते हैं जो सब से चिरस्थाई है, क्योंकि वह रूप और चञ्चल यौवन पर निर्भर नहीं हैं। कोई कहते कि चक्षुचार होने से एक प्रकार की विद्युत किम्बा चुम्बक की सी आकर्षण शक्ति उत्पन्न होती जो कभी तो एक ही के मन को मूर्छित करती और कभी एक साथ ही दोनो का वारा न्यारा कर डालती है। शेक्सपियर कहता है कि "मुझे बताओ कि प्रीति की प्रसूति कहाँ है, हृदय वा मस्तक में? वह नेत्रों में उत्पन्न होती और दर्शन से पोषित होती है"। कोई कहते हैं कि बसन्त के दिनों में जब सुखद छाया में ठहरे, पशु और प्रहर्षित पक्षी भी अपने अनुराग की सुहृद कथा को रसाल की मञ्जरियों पर बैठ कर, प्रारम्भ करते और ललित लतायें भी जब निज कोमल तन्तुओं से अपने परम प्रिय वृक्षों को दृढ़ रूप से आलिङ्गन करती हैं तो ऐसे सुहावने समय में भगवान कुसुमायुध मनुष्यों के मन का आखेट प्रारम्भ करते हैं। कोई कहते हैं कि जब प्रथम अषाढ़ की नीली मेघ माला अपनी अलौकिक और अनुपम छटा से आकाश मण्डल को घेर लेती है, जिसकी शोभा को देख उद्दाम दर्दुरगण उच्चस्वर से नाद कर मनुष्य के कर्ण को बधिर करते और चातकचमू मानो, मनसिज मन्त्र का एक स्वर से पाठ करने लगती, मयूर मण्डली मुदित मन हो अपने अलौकिक नृत्य को दिखा, सबी के मन को चञ्चल करती,

प्रवासी और पथिक धीर छोड़ घर लौटते, और मानिनी नायिकायें मान को त्याग अपने अनुचित आमर्ष पर कलहान्तरिकाओं की नाईं पछताती हैं, तो सामान्य कारण को भी पाकर अकस्मात् विशेष प्रेम का प्रादुर्भाव होता है। कोई कहते हैं कि यह सब ऋतु एकत्रित हो इन्हीं कामिनियों में अन्तर्लीन रहती हैं और समय पर अचानक वहीं उदित हो उठती हैं, जिसे देख मनुष्य बावला बन, उनके पैरों पर गिर देवताओं की नाईं उपासना करने लगता और हाथ जोड़ कर विनय भाव से कहने लगता है कि आपही मेरे प्राणाधार हैं आपही जीवन दाता हैं और आपही मोक्ष रूपा हैं। कोई कहते हैं कि नेह की गठड़ी को वह परमात्मा सदा अपने सन्निकट रखता और जब किसी पर परम अनुग्रह करता है तो उस में से किञ्चित अंश दे देता है। बहुतेरे लोग यों कहते कि प्रेम, ऐसा शक्तिमान और त्रैलोक्य विजयी कदापि न हो सकता, यदि उसे सत्कवियों की कविता की सहायता न मिलती, क्योंकि ये सब इस की प्रशंसा कर यह कहते हैं कि प्रेम, कभी निष्फल घर नहीं लौटता चाहे इस लोक वा अपर लोक सम्बन्धी क्यों न हो, परन्तु परिणाम में उस को संयोग सुखनिश्चय होता है। फिर कहते हैं कि भला वह दया सागर करुणानिधान भगवान कैसे ऐसा ईर्षी हो सकता है कि हम सबों को सदा वियोग ही से व्यथित रक्खे। निदान ऐसे ऐसे सन्तोष दायक वाक्यों को सुनकर यदि प्रेम की कोई चिनगारी शरीर के किसी कोने में दबी पड़ी हो तो वह बात की बातमें सारे शरीर में ऐसी अभिव्याप्त हो जाती है कि फिर शोकोल्लास रूपी धूआँ ज्वालामुखी पर्वत के समान उसके मुख से अहर्निश निकलने लगता है।

कादम्बरी में महाश्वेता पुण्डरीक से प्रेम के प्राबल्य में

यों कहती है कि "जब मैं उन्हें देखकर प्रेम से मुग्ध हो गई तो मनीमन में कहने लगी कि यह अति लज्जास्पद, अयोग्य, नीच कुल की कन्याओं के सदृश मैं क्या कर रही हूँ। पर हा ! यह समझने पर भी, न जाने इन्द्रियों के कारण असमर्थ सी, जड़ सी, शिथिल सी, वा अंधी सी, मुर्छित सी, वा मानो किसी से पकड़ी गई सी, जड़ी भूत अवयव और तत्क्षण उत्पन्न हुए मोह के कारण, मनसिज वा मन के कारण, नव यौवन वा प्रेम की प्रेरणा से, अथवा और ही किसी कारण से, जिस विषय को मैंने कभी न सुना, न शिक्षा पाई, न किसी ने उपदेश दिया वा कौन जाने यह स्वतः हृदय से उत्पन्न भाव ही के कारण, मैं उस महती रूप सम्पत्ति को बहुत देर तक देखती रही। पश्चात् उनके समीप इन्द्रियों से बलात फेंकी जाती सी और हृदय से आगे को खींची जाती, एवम् पीछे से कामदेव से प्रेरित सी, अपने को मैंने विवश और प्रतिकार में असाध्य जानकर, मनीमन में सोचने लगी"।

यदि ऐसा प्रेम का उद्गार हृदय में हुआ तो अवश्य आदरणीय है, क्योंकि वह तो मनुष्य नहीं वरञ्च एक भांति का हिंसक क्रूर जंगली पशु है जिसका हृदय इतना कठोर और अन्धे दर्पण के समान है कि जिसमें प्रेम का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ सकता। हमारी जान जैसे शास्त्रकारों ने क्लीव पुरुषों को ज्ञान का अधिकारी नहीं माना है वैसेही ऐसे कुत्सित पुरुष भी भगवद् भक्ति के उपयुक्त नहीं हो सकते। यही कारण है कि कहीं कहीं पर महात्माओं ने निज शिष्यों को यह आज्ञा दी कि वे प्रथम किसी से नेह लगाएँ और अपने चञ्चल चित्त को एक ठिकाने ठहरायें, तब वे भक्ति योग के योग्य हो सकते हैं। क्योंकि आखों के लगने वा दो दिलों के एकदिल होने पर,

यदि सच्चा प्रेम है तो मनुष्य उसी काल से और विषयों का सोचना छोड़ देगा और अपनी प्रियतमा ही को अहर्निश निरखता रहेगा। इसमें उसे सोचने तथा मन एकाग्र करने की भी शक्ति स्वतः उत्पन्न हो जाती है और फिर यदि ऐसी अवस्था में उसे सद्गुरु मिला और उसने कृपा कटाक्ष भी फेर दिया तो भृङ्गी के सदृश यह मन सीधे परमात्मा के ध्यान में लीन हो जाता है।

प्रेम के दिवसों को मनुष्य प्राण से भी अधिक प्यार करता और उनको अपनी स्मरणभूमि की परम रम्य स्थलियों में स्थान देता है। एवम् जब वह प्रसन्न वा दुखी होता तो प्रायः उन रम्य स्थलियों में भ्रमण करता और मनोमन में यह कहता है कि धन्य वे दिन थे कि जब यह सारा जगत प्रेममय लखाई पड़ता था और इस संसार में अपनी प्रियतमा से अधिक प्यारी कोई अन्य वस्तु, अहर्निश विचारने के योग्य, नहीं थी। युवक जन जब इन दिनों को स्मरण करते हैं तो उच्छ्वासों से वायु को सन्तप्त कर देते हैं। प्रौढ़ावस्था के लोग छाती पीटते और आह भर भर कर कहते कि हा! वे दैवी दिन चले गये। बुड्ढे जब स्मरण करते तो उनके नेत्र अश्रुओं से पूर्ण हो जाते वा शुक्लकेशयुक्त दन्तहीन मुख पर भी ईषत् हास्य आ जाता। इससे प्रेम सबी के सुख का मुख्य हेतु है।

लार्ड एवबरी (Lord Avebury) कहते हैं "कि प्रेम इस जीवन का ज्योति रूप है। हम सब किसी वस्तु के सुखको तब तक पूर्णतया अनुभव नहीं कर सकते, जब तक कि हमारे साथ वे भी न भागी हों जिन्हें हम प्यार करते हैं। और यदि संयोगतः ऐसे अवसरों पर एकाकी रहते तो भी अपनी

सुखानुभूति को इस आशा से संचित करते कि अपने प्यारों के मिलने पर विभक्त कर देंगे।

प्रेमियों का समय जब उनके समीप उनकी प्रियतमा रहती तो पवन से भी अधिक तीक्ष्ण वेग से भागता है, वा यों कहिये कि भगवान सूर्य्य के हरित चञ्चल अश्वों को भी वह पीछे छोड़ देता है। यथा कश्चित्—

कल शबे वस्ल में क्या जल्द कटी थीं घड़ियां।
आज क्या मर गये घड़ियाल बजाने वाले।

हज़रत आदम अपनी पत्नी हौवा से यों कहते हैं कि "तुम्हारी बात चीत में समय ऋतु और उसके परिवर्तनों का ज्ञान जाता रहता और सब एक ही सा सुहावना प्रतीत होता है। कूजित बिहंगों के कलित संगीत से उठाया गया प्रभात का समीर सुखद होता; योंही हिमविन्दु से चमकते हुए फल पुष्प और वनस्पतियों से युक्त इस रम्य भूमि को भगवान प्रभाकर की प्रथम किरणें रंजित करती भली लगतीं और मन्द वर्षण के अनन्तर सुवासित वसुन्धरा आनन्दप्रद होती। एवम् सरस सन्ध्या अपनी प्रशान्त मन्दगति से आती सुहाती, सन्नाटी रात अपने गम्भीर घोषी पक्षियों के साथ और सुन्दरी चन्द्रकला अपनी गगन रत्न रूपी तारावली सहेलियों से शुशोभित होती सरस लख पड़ती है; परन्तु न ऊषाकाल का प्राणदायी समीर, दम्पति पक्षियों के मधुर निनाद, न भगवान प्रभाकर के उदय के संग इस रमणीय वसुन्धरा पर उन ओस से नवल द्युतिधारी वनस्पति वृक्ष, फल और फूलों की अलौकिक सौन्दर्य्य ही, न वर्षा के पश्चात् पृथ्वी की सुहावनी सुगन्ध, न सन्ध्या की शान्त शोभा और न ज्योत्स्नावती रात्रि में परिभ्रमण वा अखिल नक्षत्रों की शोभा ही आपके विना भली लगती है"।

यह सच है कि आँख की चोट सहनेवाले जन विरले ही होते हैं क्योंकि हमने देखा है कि इस तीर के लगने पर, न तपस्वी जन का धैर्य्य रहता, न ब्राह्मणों की ब्रह्मनिष्ठा, और न गुरोपदिष्ठ ज्ञान का अंशही हृदय में अवशिष्ट रह जाता है। इसीसे लोग कहते हैं कि तत्क्षण प्रेम में फँसे हुए मन को न शास्त्र, न शास्त्री, न गुरु, न मित्र तत्काल लौटा सकता है।

कादम्बरी में पुण्डरीक को महाश्वेता के प्रेम में मुग्ध, भूत ग्रह से ग्रस्त, उन्मत्त वा प्रतारित, अथवा अन्ध वा वधिर वा मूक सदृश देख कर उसके परम सुहृद कपिञ्जल का कलेजा कांपने लगा और दुःख से कातर हो वह कहने लगा कि "हा! भगवान मकरकेतु का कैसा दुस्सह वेग है जिसने कि इतने थोड़े समय में भी मित्र को ऐसी प्रतीकार होन अवस्था में पहुँचा दिया और ऐसे सच्चरित्र मुनिकुमार की ज्ञान राशि को लुप्त कर दिया। तथापि मुझे कुछ कहना उचित है 'सखे पुण्डरीक! यद्यपि मुझे ज्ञात है, परन्तु मैं यह पूँछता हूँ कि जिस चाल पर आपने चलन आरम्भ किया है, क्या इस का गुरू ने उपदेश दिया? वा इसे धर्म शास्त्र में पढ़ा अथवा धर्म के सञ्चय का यह कोई नूतन उपाय है? वा यह कोई तप का नया विधान है अथवा स्वर्ग का कोई नवीन सोपान है? वा व्रत का कोई रहस्य है वा मोक्ष प्राप्त करने का कोई साधन है? क्योंकि भावना में भी ऐसी वस्तु आप सरीखे मनुष्यों को विचारने के योग्य नहीं है तो देखने वा करने की कौन कथा है"। इन बातों को सुनकर पुण्डरीक अपने आँसुओं को पोंछ कर कहने लगा कि "मित्र! बहुत क्या कहूँ आप तो सर्वथा स्वस्थ हैं क्योंकि कभी सर्प के विष से भी अधिक विषवाले काम के बाणों की चोट आपने नहीं खाई, इसी से सुख पूर्वक दूसरों

हे। उपदेश दे रहे हैं। अवश्यही जिसकी इन्द्रियाँ और मन अपने वश में है और जो देख भाल सकता है, तथा सुनकर समझ सकता है एवम् अपने शुभाशुभ के समझने में समर्थ है, केवल वही पुरुष उपदेश का भाजन हो सकता है। किन्तु हम तो इन सब से दूर हैं। ज्ञान, धैर्य्य और अध्यात्मिक ज्ञान की सब कथाएँ मेरे लिये व्यर्थ हो गईं, मेरे प्राण कैसे स्थित हैं, यह मैं स्वयम् नहीं जानता। उपदेश का काल अब नहीं रहा और धैर्य्य धारण करने का भी समय नहीं है, न ज्ञान ही अवशेष है। यह मैं जानता हूँ कि तुम्हें छोड़ ऐसे समय में मुझे कौन उपदेश देने वाला और उन्मार्ग में प्रवृत्त हुए को निवारण करने वाला हो सकता है, क्योंकि आपसा इस जगत में मेरा और कौन सुहृद है। पर मैं क्या करूँ? अपनी आत्मा को वश नहीं कर सकता। शेक्सपियर ने प्रेमियों की भावनाओं को, कवि तथा पागल से उपमा दी है, जिन पदों का आशय कादम्बरी के इन पंक्तियों के पढ़ने से भली भाँति बोध होगा :—कादम्बरी का मन चन्द्रापीड़ पर आसक्त है वा नहीं, इस पर वह शंका कर यह कहता है कि कौन जाने कि ये सब मेरी भावनाएँ केवल प्रेमातिशय्य ही के कारण हों, क्योंकि प्रियतमा जल के समान यौवन मद को प्रेमियों के प्यारे हृदय देश में प्रवाहित कर देता है। या यह कहें कि कवियों की कल्पना सदृश प्रेमी जन, क्या नहीं कल्पना कर सकते, वा चित्रकार की लेखनी सदृश अपनी भावना में कौन सा रूप नहीं निर्माण कर सकते अथवा रूप गर्विता कुलटा सदृश अपने को किस गुण का निधान नहीं मान सकते, निदान जादू की लकड़ी सदृश प्रेमियों की भावनायें सबी असम्भव वस्तु को बात की बात में प्रस्तुत कर सकती हैं।

प्रेमी जन अपनी प्रियतमा को प्रशंसा में कभी अत्युक्ति की न्यूनता नहीं करते, कोई कहते हैं कि यदि उर्वशी वा शकुन्तला

सी सुन्दरी अप्सरा भी होती, तथापि उसे देखकर वह अपने आनन को मारे व्रीडा और ईर्ष्या के घूँघट में छिपा लेती। कोई कहते हैं कि चन्द्रमा उस के आनन की अमल आभा को देख स्पर्धा से फीका पड़ गया है। एक प्रेमी यत्त निज प्यारी को कहता कि विधाता की सृष्टि में वह सुन्दरियों में प्रथम है। ऐसे ही "रोमिओ" कहता है कि मेरी प्रियतमा सी सुन्दरी तो सर्वसात्ती सूर्य्य ने भी, जब से यह जगत निर्माण हुआ है, नहीं देखा। रोज़लिन की प्रशंसा में ओरलेण्डो कहता है कि—पूर्व से पश्चिम तक कोई रत्न रोज़लिन का सा नहीं है, और यदि उस के गुण पवन के अश्वपर आरोहित किये जायँ तो वह उन्हें सप्रेम सारे विश्व में लिये घूमता फिरेगा। कोई कहते हैं, कि सारा नगर उस के नेत्र की ज्योति से देदीप्यमान है। तो कोई कहता कि भगवान मातरिश्वा भी उसकी सेवा में उपस्थित हो आमोदित होते और नितान्त निरस सूर्य्य भी उस पर सरस होते। कोई कहते कि वह तो शाहंशाहजादी सी है, जिसे कि सारे विश्व ने अपने अपने अपूर्व रूप की भेंट दी है। अतः हे विश्व के हृदय को प्रेम से ग्रथित करने वाले, सर्व विजयी मनोभव! तुम्हें नमस्कार है। मानिनी नायिकाओं के मनाने हारे! तुम्हें अनेक धन्यवाद है। हब्शिनो के रूप को अप्सरा सा दिखलाने वाले! तुम्हें अनेकानेक आशीर्वाद है। जीर्ण पर्णकुटी और टूटी खाट को भी स्वर्गसा सुखदाई बनाने में समर्थ, एवम् धूप को चाँदनी और चाँदनी को धूप करनेवाले देवता! तुम्हें अनेकानेक प्रणाम है। सर्प और विच्छुओं से विकीर्ण कृष्ण-पत्त की रात्रि में अभिसारिकाओं को अपने प्रियतम से मिलने की चाह रूपी विद्युत शरीर में भरनेहारे! तुम्हें धन्यवाद है। योगियों के प्रशान्तहृदयरूपी समुद्र में भी काम की वृहत् ऊर्मियों के उठाने हारे! तुम्हें कोटिशः प्रणाम है।

विवाह

सार में मनुष्य के लिये विशेषतः गृहस्थाश्रम में सुख का मूल हेतु विवाह है। वरन यदि यह भी कह दें कि मनुष्य समाज, उसकी उत्पत्ति, स्थिति और वृद्धि का हेतु विवाह ही है, तौभी अनुचित नहीं है। वह विवाह तभी सुखद और सार्थक होता कि जब वर और वधू सब प्रकार से तुल्य रूप, गुण, वा सामान्य न्यूनाधिक रहने पर भी एक दूसरे के सन्तोष और स्नेह के कारण हों, जिस कारण दोनों का संयोग सुख पूर्वक निर्वाहित हो सके, और संसारिक कार्य्य में एक दूसरे का सहायक और दुख सुख का भागी हो सके। इसी कारण हमारे यहाँ स्त्री को अर्धाङ्गिनी कहते हैं। इस तुल्य मेल मिलाने के लिये संसार के विविध देशों में भिन्न भिन्न प्रकार के वरण निर्वाचन और विवाह की प्रथायें प्रचलित हैं। सभ्यशिरोमणि यूरप निवासी वर वधू के परस्पर गुण, कर्म्म स्वभाव की परीक्षा पूर्वक प्रेम स्थिर करने, और विवाह बन्धन से परिवद्ध होने में बरसों लगाते हैं, क्योंकि वहाँ वर वधू के माता पिता विवाह सम्बन्ध स्थिर करने का दायित्व कुछ भी अपने ऊपर न लेकर

निज सन्तान के सिर पर छोड़ देते हैं। वास्तव में एक छोड़, दो दो मनुष्यों की रुचि की पूरी परख करके, आजन्म उन दोनों का सम्बन्ध जोड़ देना कैसा कुछ कठिन कार्य्य है, यह विचारने ही से सम्बन्ध रखता है। हमारे देश में माता पिता ने जो यह दायित्व अपने सिर लिया, क़दाचित् उसका यही कारण था कि उन्होंने केवल अपनी अनुभवहीन भोली भाली सन्तान की कोमल बुद्धि पर इस भारी भार का सौंप देना उचित नहीं जाना। क्योंकि सुकुमार अवस्था में सामान्य रूप यौवन पर आसक्त हो, आजन्म के लिये अयोग्य प्रेम बन्धन में बँध जाना, मनुष्य के स्वभाव से सहज सुलभ समझा और इस प्रकार हीन कुल के सम्बन्ध से निकृष्ट सन्तान होने और उससे परम्परागत कुल मर्य्यादा के नष्ट होने के भय से वे सर्वथा उदासीन न रह सके। तथापि ऐसा कदापि न था कि वे वरवधू की रुचि वा उनके तुल्य रूप गुण, शीलता पर कुछ भी ध्यान न देकर निज मनमानी कार्य्यवाही कर, उनके आजन्म दुःख के कारण होते थे किन्तु खेद पूर्वक कहना पड़ता है, कि आज कल प्रायः सर्वथा उसके विरुद्ध बर्ताव होता है।

मुझे पण्डितों के, जो अनेक प्रतिष्ठित पुरुषों के दीक्षा गुरु और पुरोहित भी हैं, समाज से विशेष सम्बन्ध रहता है इसीसे प्रायः बहुधा ऐसे अनमेल विवाहों की लीला और उसके द्वारा अनहोने अनेक उपद्रव देखने का अवसर मुझे अनायास प्राप्त हुआ करता है। अभी थोड़े दिन हुए कि एक प्रतिष्ठित एतद्देशीय कुलीन ब्राह्मण के बालक का अनमेल विवाह का विलक्षण बेढंगा व्यापार देखकर, मैं बहुत ही विषाद युक्त हुआ, अस्तु इससे कि मैं यह जानता हूँ कि आज कल अनेक जातीय सज्जन अपने जातीय कुसंस्कारों का सुधार कर रहे हैं, अतः

इस विषय पर भी उन्हें सावधान करने की इच्छा से, उसे प्रकाशित कर देना कुछ अनुचित नहीं समझता।

एक सुप्रतिष्ठित कुलीन ब्राह्मण के बालक को जानता हूँ, जो शुभ रूप, गुण शील सम्पन्न, अन्य और विद्याओं के साथ जिसने अँगरेज़ी भी यथेष्ट पढ़ी है, माता पिता जिसके बहुत अच्छी दशा में वर्तमान हैं, घर में खाने पीने की सब प्रकार की सुविधा है, वरञ्च अनेक आश्रित और सेवक भी उनके सुख सम्पन्न हैं। यद्यपि वे एक ग्राम के निवासी हैं तथापि लड़के के पिता शिक्षित शिष्ट और बालविवाह के समर्थक नहीं हैं। विवाह के विषय में सामान्य और समयोचित विवेचना और अनुसन्धान आदि करने के भी पक्षपाती हैं किन्तु हा! कुलीन सम्बन्ध का आग्रह उनमें अवश्य है अर्थात् दरिद्र कुलीन ब्राह्मण से सम्बन्ध करेंगे, परन्तु धनवान विद्या आदि युक्त भी अकुलीन की लड़की कदापि न लेंगे चाहे धर्म्मशास्त्र चिल्लाया करे कि "स्त्री रत्नं दुष्कुलादपि"। और जातीय नियम भङ्ग का साहस तो कोई कब कर सकता है। अस्तु अब आगे का वृत्तान्त सुन चलिये।

इन दिनों की चाल तो प्रायः सबी जन जानते हैं, कि माता पिता और भाई भौजाई पर विवाह का सारा कर्तव्य निर्भर रहता है, और जो प्रायः पुरोहित द्वारा कुण्डलियों के मिलान से ठीक किया जाता है। यदि बहुत दूरदर्शिता से कार्य्य लिया गया, तो कोई परम साधारण मनुष्य वा घर की चाकरानी दुलहिन के देखने के लिए भी भेज दी जाती है, जो कि वहाँ से आठ दस मुद्रा भी पाकर, एक राक्षसी का रूप ऊर्वशी शकुन्तला के समान कह देती, जिसे सुन पूर्वापर न विचार दुलहे के माता पिता, जिनका कि इस विषय में एकमेव अधिकार है, वर-

रत्ता धर लेते, और तिलक ले लेते हैं। फिर क्या पूछना है उसी दिन से घर में व्याह के गीतों की धूम मच जाती है, और दुलहे को दोनों समय उबटन से शरीर घसवाना पड़ता है। बस ऐसे ही शुभ अवसर पर मैं भी वहां जा पहुँचा था। देखता हूँ कि धूमधाम की तैय्यारी हो रही है, मकान तोरण पताकाओं से सुसज्जित अपनी पूर्ण महिमा को धारण किये है। रोशन चौकी और तुरही आनेवाले शुभ अवसर की ऊंचे स्वर से सूचना दे रही हैं। मैंने वर के बाप से पूंछा कि महाराज दुलहिन देखने भी कोई विश्वस्त व्यक्ति गया था कि नहीं ? उत्तर मिला कि हाँ दुलहिन बहुत अच्छी है। अस्तु चार दिन के पीछे वेश्याओं के कलित नूपुरों की धुन भी कान में सुनाई पड़ने लगी। बरातियों के संग दुलहा भी महफ़िल में आ बैठा और अपनी अनुपम शोभा से सब को चौकन्ना करता, इन वेश्याओं के प्रत्येक हाव भाव को देख मनीमन में कवियों की ऊँची उत्प्रेक्षाओं के चक्कर में चकराता, आसमानी ख़यालात के साथ ज़मीन पर एकाएक प्रेम का हरा भरा उद्यान देख, भावी पत्नी समागम आनन्द का अनुभव करता, मुस्कुराने लगा। अब बरात के कूच का सवेरा आया। प्यारा दुलहा विविध वाद्यों से प्रातः काल ही जगाया गया है, उत्साह से भरा विवाह के सब कर्म्मों को करता हुआ, कुलकामिनियों से चूमा जा रहा है। सुनहरेपूर्व की भी कुछ विचित्र ही छटा छहर रही है। बरात की तैयारियों का कौन वर्णन करे, दुलहे की खुशियों का कहां ठिकाना है ! उसकी माता ने उसे ससुराल बिदा किया। बाजे बजे, नालकी उठी, बरात चली। लड़की वाले के गांव पर पहुँची और द्वार पूजा का अवसर आया। पर हा ! यह तो फूस की झोपड़ी है। इस के निवासी जिन से सम्बन्ध होने वाला है, परम नीच और

असभ्य हैं। तब भला इनकी लड़की कैसी होगी? कौन जाने कदाचित् सर्पों से आच्छादित केतकी, अथवा पङ्क से उत्पन्न कमलिनी हो, इस भाँति सोच समझ मन से चिन्ता दूर कर, दुलहा फिर कुछ कुछ प्रसन्न हुआ। युवतियों के लाज बर्षण और बीड़ों की मार के उपरान्त, बारात जनवासे गई और शिष्टाचार हुआ। अब जो काना फूसी हो चली तो लोग कह चले कि भाई! कुलीन ब्राह्मणों के और क्या होता है। यहाँ शहर की हवेलियाँ और जर्क़ बर्क़ कपड़ों के ठाठ कहाँ मिले। मनुष्य भी ग्रामीण प्रायः सीधेही सादे होते हैं। इतने में विवाह का समय आया।

अब तो दुलहे को चकित मृगनैनी भामिनियों की आँखों का सामना पड़ा। पण्डितों ने उच्च स्वर से मङ्गलाचरण पढ़, उसे पालकी से उतारा और मड़वे में लेगए, जहाँ युवतियों का ठट्ठ लग रहा था। इन सब के सत्य स्नेह को देख दुलहे का होश उड़ गया और सत्यतः वह दृश्य देखा जो कदाचित और कभी इस झोपड़ी में सम्भव न था। सारांश शाखोच्चार होने लगा पाणिग्रहण हुआ, भाँवर फिरी, सिन्दुर दान और अग्नि की साक्षी देकर विवाह हुआ। वर वधू श्रेष्ट वयस्क होने से गौना, भी साथ ही साथ हुआ। दुलहिन ऊँचे स्वर से रोती बिदा हुई, मानो उसका सर्वस्व लुट गया। घर समीप पहुँचने पर दुलहा भी उसी पालकी में बिठाया गया, जिस में दुलहिन बैठी थी। दुलहे की माता आज आनन्द समुद्र में झोंका खा रही है। वह बड़े उत्साह से बहुत सी स्त्रियों के साथ द्वार पर दुलहिन उतारने के लिये आ उपस्थित हुई, गीतों से घर गूंज रहा था, पास के गावों की स्त्रियां भी नई दुलहिन देखने के लिये लपकी चली आ रहीं थीं, नौकर चाकर बारात के स्वागत

के हेतु इधर उधर घूम रहे थे, लड़के भी अपना अपना खेल छोड़ दुलहे की बाट जोह रहे थे, कि दुलहे की पालकी विविध वाद्यों के साथ बरामदे में आ पहुँची, जहाँ वर की माता पुलकित गात मोदमयी मन से उतार, इस नये दबकते जोड़े को कोहबर (कौतुकागार) में लेगई। वहाँ से थोड़ी देर बाद दुलहा अपने सब कृत्यों को कर बाहर आ जाता है। अब वधू मुख दर्शन का अवसर है। स्त्रियाँ सब जुट आई हैं, दुलहे की माता प्रसन्न मन घूँघट के पट को खोलती है, तो क्या देखती है, कि न तो शकुन्तला सा प्राकृतिक सौन्दर्य्य है, और न उर्वशी सा सुहावना स्वरूप, जैसा कि उसने निज प्रेषित दासी से सुन, फूले अङ्गो नहीं समाती थी। वरञ्च एक मोटी थूली भयावनी सी सूरतवाली राक्षसी, जो अपने भाग्य को सीता से भी ऊँचा मान मनीमन में मुस्कुराती लखाती है। सब के मुख से राम! राम! निकल आया, पर दुलहे की माता के डांटने से सब सङ्कुचित हो गईं। निदान शोक को दबाती दुलहे के भाग्य पर खीझती, अपनी जाँच की भूल और एक सामान्य दासी की बात पर विश्वास करलेने की गलती पर कुछ न पछताती, दुलहे की माँ कोहबर से रूखे मुँह हँसती, आँगन में आई कि जहाँ दुलहा बैठा हुआ था। और कहने लगी कि हाँ तुम्हारे सी तो नहीं है, पर दुलहिन के चेहरे में कोई ऐब भी नहीं है। दुलहा चुपका रह गया और मनीमन में बिचारने लगा कि दाल में कुछ काला है।

अब दुलहा जी वहाँ से निकल बाहर आए जहाँ सब मित्रों की मण्डली बोली ठोली कसने के लिये उपस्थित थी। इन्हें देख सब के सब हँसने लगे, और पूँछने लगे कि कहिये पालकी में तो अच्छा अवसर हाथ लगा होगा। वह बिचारे कुछ तो व्रीड़ा और कुछ माता के उस द्विविधामयी वाक्य को स्मरण कर,

उन सब के किसी बात का उत्तर देने में मूँ तक नहीं खोले। मित्र जन इस अचाञ्चक स्वभाव के परिवर्तन को देख, भौंचक से हो रहे। प्रिय पाठक गण! दुलहे के चिन्तासमुद्र की लहरों को कौन गिनाये, परिवार की हँसी ठिठोलियों को कौन सुनाये, जिसे सुन सुन कर वह व्याकुल हो इधर उधर घूमते दिन बिता दिया।

अब रात आई दस बज गये हैं। परिवार का कलरव अभी शान्त नहीं हुआ है। आप अकेले पलङ्ग पर पड़े चिन्ता नदी में डूब रहे हैं। इतने में दासी आ उन्हें जगाने की चेष्टा करती है, परन्तु आप झूठी निद्रा में अचेत से मानों पड़े हैं। बहुत जगाने पर हूँ के सिवाय और मूँ से कुछ नहीं निकलता। अस्तु ब्रीड़ा को त्याग कर, अपने अभिलषित मनोरथ के पूर्ण करने को उठ खड़े हुये और घर में पधारे। अब उन शंकाओं का समाधान एक दम भर में हो गया, और पूर्वोक्त द्विविधामय वाक्यों से उत्पन्न चिन्तित मूर्ति प्रत्यक्ष देख पड़ी। फिर क्या था, आनन्द का पर्दा अचाञ्चक आँखों से उठ गया आशाओं की सजी धजी इमारतें सब ढह गईं। चिरपालित मनोरथ वृक्ष को दुर्भाग्य वायु ने जड़ से उन्मूल कर, धैर्य्य सीमा के बाहर फेंक दिया। वह प्रेम का रम्य सरोवर चिन्ता ज्येष्ठ के प्रचण्ड चण्डांशु के ताप से शुष्क हो गया। तथापि किसी प्रकार पर्य्यङ्क के कोने में पड़ रजनी बिताई, प्रातःकाल दीनातिदीन हृदय हो वह मुझ से निष्कपट भाव से सब कथा सुना कर कहने लगा, कि हाय! हम अब कहाँ जायं, कैसे किस कोने में भाग बचें। भला तब हम कौनसा उत्तर देंगे? जब कोई मुस्कुराता हुआ मित्र मेरी खुशी के लिये पूछेगा, कि कहो तुम्हारी प्यारी पत्नी कैसी है? क्या यही कहेंगे कि अच्छी है,

हाँ, अवश्य यही। क्योंकि संसार का यही नियम है कि कितना ही मारा जाय परन्तु मूँ से चूँ तक न करे। चलो बस अब तो चतुर्दिक सूना ही देख पड़ता है अब कवियों की वाक्पटुता में भी विशेष आनन्द नहीं उठेगा, क्योंकि वे सब इसी की चर्चा करते हैं जो इस दुःख को और भी बढ़ाता है। मैं इन बातों को सुन ऐसा ऊबा कि लाचार हो चुपके से अपने घर सिधारा।

इसके पीछे बारम्बार उसकी कई चिट्ठियाँ मिलीं कि अब तो घर में भी जाने से त्रास उपजता है। भूल से यदि जा भी पड़े, तो वह आँधी सी एकाएक वह चलती है। घर के बाहर तक उसकी प्रचण्ड बोल सुन पड़ती है। डांटने से लड़ने को उद्यत हो जाती है और तीन पुश्त के स्वर्गवासी पुरखों को गाली से नित्य ही सत्कार करती है, और यदि मारने को तत्पर हों तो कुएँ में कूद पड़ने को खिरकी की राह खड़क जाने को, वा वेश्या हो उसी शहर में रहने को धमकाती है। कहीं लड़के दौड़कर आते, और कहते हैं कि तुम्हारी बहू ने मुझे मारा है। माता कहती है कि तुम्हारी स्त्री हमारा घर ही लुटाना चाहती है। नौकरानी कहती है कि हे! देखो हमें दो चैला निर-पराध पीठ में मारा है। भाई कहते है कि तुम्हारी स्त्री के अत्या-चार और झझक से नाकों दम आगया और तुम ऐसे बेवकूफ़ हो कि न उसे कुछ पढ़ाओ, और न लिखाओ, नहीं तो, काठ के उल्लू को भी तो मनुष्य अपने चाल पर गढ़ लेता है। कहिये तो भला हम उसे कब लिखा पढ़ा सकते हैं, जब कि हम उस का मूँ देखना भी नहीं चाहते! भला पीतल को किसने स्वर्ण किया, काँच को किस ने जवाहिर बनाया, बनमानुष को किसने मनुष्य और राक्षसी को किसने कुलाङ्गना बनाया था। परिवार के लोग इस का क्यों ख़याल करें और कैसे क़ायल हों जब सब

खेल उन्हीं लोगों का बिगाड़ हुआ था।

"जहाँ तक मैंने सोचा, हमसे अभागों की अब केवल चार अवस्था हो सकती है यानी या तो फिर भी अपने भाग्य की परीक्षा लें, यानी दूसरा विवाह करें। वा परकीयाओं के सौन्दर्य्य सुमन के चञ्चल चञ्चरीक हो, वा वारवनिताओं के स्वर्णपात की ताक में अपने को दीन वा बेदीन बनायें। वा इस संसार के यावत् झंझट हैं, उन सबसे मूँ मोड़ परमात्मा की शरण लें, सो इस विषय में मेरे लिये जो उचित हो कृपा कर लिखिये कि वैसा करूँ। दूसरे विवाह का तो मूँ पर नाम भी न लाना चाहिये, और परमेश्वर करे कि ऐसी सलाह देने वालों के जिह्वा पर फफोले पड़ें। चाहे प्रचण्डातिप्रचण्ड तुफ़ान में किसी एक वृक्ष के नीचे दबक रहे, चाहे भयावनी मेघमाला की मूशलाधार वृष्टि में भी किसी टूटे फूटे मकान के कोने में पड़ रहे अथवा एशिया के भयङ्कर प्राणहारी शीत का सहन करले वा क्रुद्ध समुद्र के टूटे जहाज के किसी पटरी को पकड़ कर, अपने प्राण की रक्षा कर ले, परन्तु दूसरा विवाह तो कभी न करे और यदि इसके सत्य होने में आपको कुछ शक हो तो दशरथ, फ़िलिप और बहुत से महानुभावों की कथाओं को देखिये, जिनसे निश्चय हो जायगा कि दूसरा विवाह करके आज तक कोई भी सुख की नींद नहीं सोया और न चैन से अपने जीवन के दिन काट सका, किन्तु सदा ऐसे दुःख सागर में डूबता रहा, जिससे निकलने का कोई उपाय उसे नहीं लखपड़ा"।

"मेरी समझ में परकीयाओं के चन्द्रमुख के चञ्चल चकोर की भी वही गति है, जो विना पाल वा पतवारवाली नौका की अगाध समुद्र में, वा उस मनुष्य की सी जो विना किसी

सहृदय सुहृद् के इस घने संसार में रहता है, वा उस यात्री की सी जो किसी भयङ्कर बन में अकेले अनजाने घूमता भटकता फिरे, जहाँ व्याघ्र गरजते, चीते चटकते और भालू चीतकार करते हों। फिर ऐसे मनुष्य के चित्त की कौन अवस्था होगी। आप स्वयम् अनुमान कर सकते हैं"।

"इसी प्रकार वार बनिता वीथी बन में जाकर भी यह चित्त चञ्चल चञ्चरीक कभी घर लौटते नहीं देखा गया, बल्कि उन्हीं गलियों में उनके रूपका भिखारी बना रह जाता है। घर से यावत् वास्ता है सब टूट जाता है, संसार उन्हें नीच, बावला कह कर पुकारता है, दरिद्रता की बाढ़ उसके जीवन स्थल पर बड़े वेग से दौड़ती है, सूरत पर हवाई उड़ती और मलीनता बरसती है। योंही थोड़े दिनों में सारे संसार के रोग उन्हें अपना क्रीड़ा स्थल बना लेते और वह यातना सहते हैं कि जो केवल नरक के कुत्सित कारागार ही में सम्भव है। दुष्ट भार्य्या पाने से जो एक बारगी संसार से विरक्त हो गया और यही सारांश समझ लिया कि अब इस जगत में केवल भगवत् भजन ही सार है, उनकी क्या बात है, परन्तु यदि पूरे दिल से लग जाय। मेरा चित्त तो अब इसी अन्तिम अवस्था का अवलम्बन करने को उत्कण्ठित है, यद्यपि अभी अवस्था कच्ची और सद्गुरु की प्राप्ति नहीं हुई है"।

निदान इस पत्र को पा, मैं घबड़ा कर फिर वहाँ पहुँचा तो देखा कि उसकी दशा बहुत ही खिन्न है। वह एकान्त में उदासीन बैठा, वेदान्त के ग्रन्थों का मनन करता है। मैंने बहुत कुछ उसे समझाया, परन्तु कुछ फल नहीं हुआ। उसके घर के लोग भी अति व्याकुल हैं, यदि उन्हें चार आने इसकी विरक्तता पर खेद, तो सोलह आने नई बहू की प्रचण्डता और

दुष्टता पर। निदान निरुपाय रोग जानकर मैं फिर घर लौटा और अन्य कोई कर्तव्य न देख इस पत्र द्वारा आप सब की सेवा में इसकी विज्ञप्ति दे देना उचित समझा, कि जिस में लोग आगे से इस विषय में चैतन्य रहें।

हा! जैसा आगे से सुनते चले आये थे कि माया देवी ने संसार की स्त्रियों को दो भगों में बाँटा है, अर्थात् लक्ष्मी और दरिद्रा, सो इस साक्षात् दरिद्रा की दशा देख मैं भी अति त्रस्त हो गया। और साथ ही ऐसी परिपाटी पर बहुत ही विषाद युक्त हुआ, कि ऐसी ऐसी विपत्ति घर के गुरुजनों की बेपरवाही से तो बुलाई जाती और भुगतनी पड़ती एक निरप-राध अज्ञान बालक को। निदान ऐसा सम्बन्ध कर देना तो मानो आजन्म भर के लिए तमिरतिरोहितमार्गवाले जङ्गल में फेंक देना है। अथवा स्वछन्द मातङ्ग के पैरों में बेड़ी डाल देना है वा तुफ़ान से हिलोड़ते समुद्र में ऊँची पालवाली नौका को छोड़ पहाड़ों से टकरा कर तुड़वा डालना है और अवश्य ऐसा ही है।

यद्यपि स्त्री के बिना पुरुष का कार्य्य चलना तो सर्वथा असम्भव है, तौभी ऐसे विवाह कर देने से लड़कों को बिना ब्याहे कुंआर ही रख छोड़ना कहीं उत्तम है। क्योंकि वह सर्वथा स्वाधीन तो रहता और निज माता पिता द्वारा ऐसी आजन्म ग्राही विपत्ति में तो नहीं फँसाया जाता कि जिससे छुटकारा सर्वथा असम्भव होता और उसका जीवन ही नष्ट प्राय हो जाता है। रहा यह कि विवाह का सम्बन्ध किस भाँति से उत्तम हो सकता है, सो पुराने समय की चाल, यानी स्वयम्बर की प्रथा जो निश्चय सर्वोत्तम थी छेड़ना हम व्यर्थ समझते हैं, क्योंकि जो चीज़ अब कभी नहीं हो सकती, उसके लिये

लिखना या बकना उलटी धारा का बहाना वा वायु में अश्रा-ब्रात सा करना समझ पड़ता है, नहीं तो उसमें सब सम्बन्ध योग्य वर एकत्रित हो दुलहिन को पसन्द करके स्वीकार करते थे। यह भी हम नहीं कहते कि गुरुजन सर्वथा अपने से, इसका बोझा फेंक दें परन्तु वे कदापि कुछ भी असावधानी न करें। क्योंकि प्रचलित प्रणाली में यदि संयोगात् कहीं विधि मिल गई अथवा अन्धे के हाथ बटेर लग गई तब तो कुछ पुछनाहो नहीं है नित्य ही घर में नया उत्सव है, नित्य ही एक नये प्रणय का उल्लास देखने में आता और नित्य नये आनन्द हाथ लगते हैं। नित्य ही दम्पति सारे संसार के दुखड़ों पर फिटकार देते हैं। वर कहता कि प्यारी! भगवान तुम्हें जिलाये रक्खे और हमारी प्रीति तुम पर योंही दृढ़ रहे तो हम संसार की क्षुद्र चिन्ताओं पर लात मारते हैं। जिन बचनों को सुन वह हँस पड़ती और वे कृतकृत्य हो जाते। और जब यों प्रीति का फल प्रगट हो जाता, तब उनके प्रेम कुछ अद्भुत हो जाते हैं, और वे संसार के सारे झमेलों को सहने के लिये सन्नद्ध रहते और दोनों चैन से अपनी ज़िन्दगी के छोर पर चले जाते हैं। किन्तु यदि कुण्डली ही मिली हो और रूप गुण शील के बिरोध में दिल न मिला तो कौन कौन और कैसी कैसी आपत्ति आ पड़ती हैं, यह कदाचित् अब आप सब के समक्ष है। सचमुच वह एक कर्तव्य शून्य मनुष्य हो जाता है, क्योंकि यावत् कृत्य मनुष्य इस संसार में करता है वह सब इन्हीं सुन्दरियों ही के हेतु करता है और जब इन्हीं से कोई दृढ़ वास्ता न रहा तो फिर वस्त्र कैसा, अलङ्कार कैसा, मकान कैसा, और संसार की कोई फिक्र कैसी, क्योंकि उन्हें कोई कहने वाला नहीं कि आप क्यों व्यर्थ बैठे हैं, कुछ

करते क्यों नहीं, आप के लड़के क्या खांयगे, और आप का कौनसा सुख समझेंगे। सो निश्चय यह सिद्ध होता है कि यदि किसी की गृहिणी दुष्टा हुई, तो न केवल उसके एक बड़े भारी आनन्द का मूलोच्छेद करने वाली, न केवल उस का घर अरण्य तुल्य करने वाली, और न केवल अपने वाक-कलह से सारे कुटुम्ब को बैरी बना देने वाली, वरञ्च उस के इस अमूल्य जीवन को योंही निष्फल कर देने वाली होती है।

इससे गुरुजन ! विवाह आप सब को न केवल अपने आनन्द मात्र के लिये करना चाहिये, वरञ्च यह समझ कर कि आप एक मनुष्य का सारे जीवन के लिये किसी से ऐसा सम्बन्ध कर रहे हैं जिससे वह या तो सदा के लिये सुखी हो जायगा, वा ऐसी विपत्ति में पड़ेगा कि जिससे फिर न उत्तीर्ण हो सकेगा, वरञ्च उसी में डूबता उतराता रहेगा। सुतराम् यद्यपि आप सब इसे समझ सकते हैं कि इसे कैसे विचार के साथ करना चाहिये तथापि उस की कुछ रीति यहां पर मैं भी लिख देता हूँ;—

१—यावत्सम्भव दुलहिन को स्वयम् देखले, नहीं तो परिवार ही के किसी चतुर मनुष्य द्वारा दिखला लेना चाहिये।

२—दूसरे को दुलहिन के देखने के लिये भेजे तो या तो वह सम्बन्धी हो वा मित्र, वा पल्ले दर्जे का विश्वास पात्र, अथवा ऐसी चतुर स्त्री हो जो आपके घर की कुल रीति को सदा से देखती आई हो और विश्वस्त हो। नहीं तो कई मनुष्यों को भेजना चाहिये क्योंकि सब झूठ नहीं बोल सकते।

३—लड़की यदि छोटी हो तो उसे घर बुलाकर पढ़ाना चाहिये और दुलहे की प्रकृति के साथ उस का मेल कराना चाहिये।

४—लड़की की प्रकृति को उस के बाप भाई, बहिन से देखना चाहिये। इस के देखने के लिये कोई घर का विद्वान और आला दर्जे का बुद्धिमान तथा मनुष्य की प्रकृति का कुछ जानने वाला भी होना चाहिये।

५—लड़के का विवाह लड़कपन में नहीं करना चाहिये, क्योंकि वह ऐसे आनन्द को खो देता है, जो फिर वह अपनी ज़िन्दगी भर में नहीं पा सकता है।

———:※:———

आषाढ़ का आरम्भ
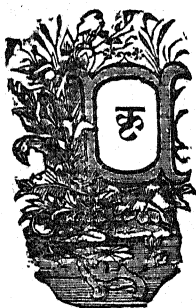
कृषि के एकमेव आधार और कृषकों के अभि-
वाञ्छित फलों के दाता, उन के नेत्रों को
अकथनीय आनन्द देनेवाले, प्रेमाग्नि से
सन्तप्त और चिर वियोग से व्यथित प्रेमियों
कीसी उदास सूरत बनाये हुए, पर्व्वतों के
अन्तर्दाह को शमन करने वाले, रूठी बसुन्धरा
कोफिर भी मना कर, मरकतमणि के रंग की
सारी, जिस पर बीर बहूटी के बूटे कढ़े हैं,
पिन्हा, पावस भूपति से मिलानेवाले, शृङ्गार हीन प्रोषित
पतिकाओं सी दुर्बलकाय नदियों को फिर भी वारि धारा
प्रवाह पूर्वक उन की उदासीनता को निवारण करने वाले,
वैषयिकों को सुखमई निशा के आनन्द दाता, अभिसारी
काओं के मार्ग को विशेष दुर्गम और दुःसाध्य बनाने वाले, तथा
बासकसज्जाओं की सेज फिर से सजाने वाले, मयूर पपीहा
के रूद्ध कण्ठ को पुनरपि खोलने वाले, मेघ, जब आकाश मण्डल
में, झंझावात के साथ प्रथम चढ़ते हैं तो उन्हें देख बर्डसवर्थ
सा उछल के कूद पड़ना कोई आश्चर्य्य नहीं है, क्योंकि उस
समय संसार की शोभा कुछ अलौकिक और अकथनीय हो
जाती है, फिर हमारे समान लोग यदि कह दें, कि स्वर्ग का

दृश्य भी कदाचित इतना ही प्यारा और भला होगा तो क्या आश्चर्य्य है।

सुनो! यह तोयराशि का सा गम्भीर घोष, पश्चिम से आते हुये तूफ़ान की सूचना दे रहा है। अब देखिये आकाश धूलि धूसरित होने से ऐसा जान पड़ता है कि मानो भगवान मातरिश्वा ने पृथ्वी और आकाश से संयोग करा दिया है; अथवा सहस्रों क्रोधान्ध राक्षस बचे बचाये इस अत्यन्त जीर्ण, वृद्धावस्था को प्राप्त हिन्दू धर्म्म के ऊपर चढ़े आ रहे हैं; वा खरदूषण का वंश पुनरपि उत्पन्न हो पृथ्वी को कम्पायमान करता मूँ बाये चला आ रहा है; वा विरक्त मना देवी वसुन्धरा अपने कुन्तलों को धूलि धूसरित कर, वृक्षों के मिष लहरा रही हैं; वा ऐसा कहें कि वायु रूपी चीता धूल उड़ाता वृक्षों का आखेट करता, या उन के प्राचीन पत्रों को उड़ाता मानो अङ्ग भङ्ग करता चला आ रहा है।

आकाश में चिड़ियाँ कैसी लम्बी लम्बी चुभ्भी मार मार कर नीचे आने का प्रयत्न कर रही हैं। गौ आदि पशु जँगलों से भागते शोरमचाते, इस भयङ्कर तूफान की सूचना देते, घरों की ओर भागे चले जा रहे हैं। भेड़ बकरी आदिक जो प्रकृत्या मन्दगामिनी होतीं, वे भी इस समय ऐसे वेग से अपने अपने चरवाहे और कुत्तों के साथ साथ भागी चली जा रही हैं, मानो वायु ने उन के शरीर में बिजली भर दी है। योंही समस्त जीव जन्तु अपने अपने घर, मांद और घोंसलों की ओर चले जा रहे हैं, केवल अग्रशोचिता शून्य बानर-वृन्दु अतरिक्त जिन्होंने आपत्काल व्यतीत करने को कोई घर नहीं बना रक्खा, इस समय बन्दीसे बैठे, टुकुर टुकुर ताकते वायु के तीक्ष्ण थपेड़े को मूँ लटकाये सह रहे हैं।

अब वायु का वेग किञ्चित मन्द पड़ चला तो, इन लम्बे लम्बे शाल वृक्षों के ऊपर मेघमाला की काली रेखा जो प्रतिक्षण ऊँची हो रही है, ऐसी जान पड़ती है मानो प्रकृति छाया चित्रकारिणी ने इन ऊंचे प्रशस्त शाल वृक्षों की तस्वीर लेने के लिये काला पर्दा (Black Screen) लटका रक्खा है, अथवा शाल वृक्ष रूपी रंगभूमि पर सौदामिनी नटी निराधार नर्तन करती, अपने विविध कलाकौशल को दिखला रही है, वा यों कहिये कि इस ऊंचे शालवृक्ष-पंक्तिरूपी-राज मार्ग में मदमाती कामिनी सी दामिनी, मानो अपने किसी यार के तार में इधर उधर चक्कर लगा रही है।

बादलों ने ऐसा गर्जन आरम्भ किया मानो महेन्द्र अपनी सकल स्वर्गीय सेना के साथ गगन कानन में परिभ्रमण करते, सहस्त्रों मेघ मातङ्गों पर अकस्मात् विद्युत बाण का दारुण प्रयोग करते और वे बेचारे विह्वल हो आर्तनाद कर रहे हैं। वा सम्राट् सुरेन्द्र के आगमन में कर्ण को बधिर करने वाली शतघ्नियों की बाढ़ें छूट रही हैं। अथवा किसी गन्धर्व के विवाह के अवसर पर बादल हाथियों की कतारद्वार पूजा के लिये भागती चली जा रही हैं, और बिजली पञ्चशाखा प्रदीप लिये आगे दौड़ दौड़ कर मार्ग दिखला रही है वा बलाहक शार्दूल को वायु सर्कसवाले ने गगनपिंजरे से बाहर निकाला, और विरुद्धाचरण पर विद्युत दण्डाघात करता है और वह क्रुद्ध हो घुर घुरा रहा है। अथवा वर्षा, बिजली की बतीसी दिखाती गर्जन के मिष अट्टहास कर रही है। अब तो देखते देखते सारा गगन मण्डल काले बादलों से आच्छादित हो गया, और बड़ी बूँदें भी गिरने लगीं, मानो देवगण जिन के पुण्य क्षीण हो गये हैं, अब स्वर्ग से मृत्युलोक में च्युत हो रहे

हैं। इनके प्रिय शब्द को मनुष्य, पशु पक्षी अपने अपने घर, माँद वा घोंसलों में से बड़े चाव और श्रद्धा पूर्वक सुनने लगे, जैसे कि अहंकारियों के तीक्ष्ण और कटु शब्द को भी उन से उपकृत लोग सादर सुनते हैं। कभी वह शब्द ऐसा प्रतीत होता मानो प्रकृतिराज इस पृथ्वी के भग्न और जीर्ण भागों की मरम्मत करने के निमित्त थापी चला रहा है, अथवा वरुण देव आधुनिक जनों की भाँति डिण्डिम बजा अपने प्रमोद की सूचना देते हैं।

अब पूर्वानिल सन सनाता जूहियों का चुम्बन करता, मालती को अंक भर भेंटता, मानो निज प्रियतमाओं से उन की रहस्य कथा पूछता, कठोर आम्र वृक्षों से फल दान लेता, सांकरी कुञ्जों की वीथिकाओं में मुक्त कण्ठ हो कर गाता, पथिकों को लौटने का मंत्र देता, कलहान्तरिताओं के परिताप को बढ़ाता, संयोगिनियों की सुरतग्लानि के स्वेद को सुखाता, योगियों के प्राणायामादिक क्रिया से सन्तप्त मस्तिष्क को शीतल करता, साम्प्रतिक दाम्भिक योगियों से गुफाओं में बन्द, शेष वंशावतंसों को बाहर बिचरने की आज्ञा देता हुआ, फिर बड़े वेग से वह चला।

भारतवर्ष दूसरे समय ऐसा भला और प्यारा कब लख पड़ता है, जैसा कि जब वह काले काले बादलों से घिर जाता है, और रीवाँझिल्ली आदि जीव रसाल की अमराइयों में झनकार मचाते, और कोइल पपीहे इत्यादि इस ऋतु के अद्भुत और अलौकिक होने का व्याख्यान अपने विविध गीतों में गाते हैं। मेढक, बैन्ड मास्टर सा, संगीत पाटव के गर्व्व से गर्दन फुलाये अपने सहकारियों के साथ अंगरेजी गाना प्रारम्भ करता है। इस ऋतु के अत्यन्त सुहावने और सुखकर

होने के कारण, मोहित हो प्रेमघन जी ने इस को ऋतु राज की पदवी दी और अपनी विविध मनोरञ्जक युक्तियों से बसन्त को इस का मंत्री बनाया है।

वास्तव में इस अनुपम और अलौकिक ऋतु में सबी ऋतु का उपभोग हो जाता है क्योंकि ग्रीषम, वर्षा और शीत ये सब ऋतु इस पावस में लखाई पड़ जाते हैं और इस में कुछ भी सन्देह नहीं कि यदि भोग सामग्रियों की गिनती गिनाई जाय तो पावस ही सर्व श्रेष्ठ ऋतुओं में प्रतीत होगा, यदि आप केवल रसाल की मञ्जरी और सहस्त्रों रंगवाले बसन्त के सुमनोंहीं के उपासक न हों। पावस इस देश की दशा और दृश्य को बात की बात में कैसा कुछ परिवर्तन कर देता है जो देखने हारों को चकपका सा देता है। जैसे कोई इन्द्रजालिक अपनी जादू की छड़ी से पल भर में कुछ का कुछ कर दिखाता, वैसे ही जो आकाश नीला से धौले धूमले और काले रंग का हुआ तो मेदिनी भी हरित तृण से आच्छादित हो श्यामता को प्राप्त हुई। अब जिस ओर देखिये उसी ओर यही जान पड़ता कि मानो ग्रीष्म दानव से डरवाई गई पृथ्वी देवी, प्रावृट् भूपाल द्वारा उद्धार को प्राप्त हो प्रमुदित हो रही है, और सारा लोक इस बिजय की बधाई दे रहा है।

चिड़ियों ने जो ग्रीष्म के दिनों में मानो चण्डांशु के प्रचंड कर निकर रूपी कर-संचय-कारियों के अत्याचार से दुखित प्रजा को देख रुष्ट हो, कवियों के समान भगवान् सूर्य्य की कीर्ति के कलगान को बन्द कर दिया था, अथवा दिननाथ ग्रीष्म में स्वभावतः रुक्ष, भंयकर आत्मपरायण तथा कर संचय कार्य्य में कुछ ऐसे प्रलीन थे कि सिवाय सोते जागते समय स्तुति भंगल पाठ के अतिरिक्त संगीत सुनतेही न थे, अतः वे प्रायः

मौन थीं, परन्तु अब समस्त कृत्यों की परिणामरम्यता पर प्रसन्न मन संगीत सुनने का उन्हें अवकाश जान, पक्षीगणों ने पुनः कल-गान आरम्भ किया।

वणिक सम वित्तशाठ्य-निपुण श्री सूर्य्य देव को समस्त ऊष्णाकाल में वाष्प राशि को बटोर बटोर कर अब प्रावृट् महोत्सव में अपनी असीम उदारता का परिचय देते देख, वनवृक्षावलियों ने भगवान् सूर्य्य को वस्त्र की प्रदर्शिनी दिख-लाना आरम्भ किया। यदि किसी ने हरे साटन के थान खोले, तो दूसरे ने अनेक रंग वाले धूप छाँह की छठा दिखाई, यदि एक ने जमुर्दी मखमल, तो दूसरे ने अनेक रंग के ग्वार्नेट की तह खोली। योंही अनेक लताओं ने भी अपने अपने नवीन पल्लव परिच्छदों को धारण कर उस सर्वसाक्षी सूर्य्य नारायण के मन का मोहन आरम्भ किया।

जो भगवान् सूर्य्य ठीक समय पर लखाई पड़ते थे, विहङ्गमों के संगीत सुनने में ऐसे निमग्न हो गये कि चित्र विचित्र बादलों के आवरण में अपने आनन को आवेष्ठित किए घंटों पड़े रहते हैं, जैसे कि योगी जन रात्रि भर अखण्ड समाधि लगा कर, प्रातःकाल काषाय वस्त्र से स्वरूप को छिपा कर कुछ काल के लिये अपने शरीर को सीधा करते किम्बा जैसे विषयी जन रात्रि भर नाच रंग में काट सबेरे पहरों दिन चढ़ जाने तक सोते रहते हैं, यद्यपि सहस्त्रों रंग के वस्त्र से आवेष्ठित बादल पारिषद प्रातःकालीन अभिवादन के अर्थ प्रस्तुत हैं। पृथ्वी भी अब उस उजाड़ और शृङ्गार शून्य प्रोषितपतिका के समान मलिन वेष को छोड़ धानी रंग की साड़ी पहिन, सुम्बुल से कलित कुन्तलों को संवार, कमल नेत्रों पर अलिकुलकज्जल दे, कदम्ब पुष्पों के कर्ण कुण्डल धारण कर, झिल्लियों के नूपर

झनकार युक्त प्रावृट् प्रियतम से मिलने को सजतीं, जिसे देख चातक पिक स्यामा सहेलरियां उनके सलोने रूप को सराहने लगीं।

बादशाह अकबर के प्रश्न पर बीरवर का यह उत्तर कि यदि बारह में से चार निकल जायँ तो क्या खाक बचे अर्थात् वर्ष के चार महीने वर्षा के निकल जाने से कुछ अवशिष्ठ नहीं रह जायगा, बहुत ठीक है। परन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि आषाढ़ की प्रथम तीन रात जो पहिले पानी बरसने के पश्चात् आतीं हैं, वैसी साल भर में फिर नहीं देखने में आतीं। क्योंकि उस समय सारे जीव जन्तु कुछ ऐसा आनन्द मनाते हैं कि जिसमें यदि मिरजापूर की कजली के रतजगे की समता दी जाय तो भी कुछ अनुचित न होगा। सारी रात झिल्ली और रीवा बेग-पाइपरों (Bag-piper) की तरह अपनी अपनी गीत गाते रहते और चुहिचुहिया ताल देतो, तथा कोइल, पपीहे रात भर अपनी साल भर की कहानी उस अन्नदाता परोपकारी पावस के समक्ष सुनाते, योंही सारे मेंढ़क मिशनरियों की भाँति उच्च स्वर से कोरस में गा चलते। सुगन्धि से सनी पुरवाई, रात भर ऐसी तीक्ष्णता से सनसनाती और कुछ ऐसा शोर मचाती है, मानो प्रकृति ने सहस्रों रेलगाड़ियाँ छोड़ रक्खी है। अन्धकार की भी ऐसो वृद्धि होती आती, जैसे भारत को आजकल अविद्या घेरती चली आती है, कहीं भी सिवाय अन्धेरे के और कुछ नहीं लखाई पड़ता। हम तो कई बार इन तीनों रात्रियों के सुख को अनुभव करने के लिये प्रायः बहुत देर तक जागते और इन सब अपूर्व कोलाहलों को सुनते मनीमन में यह कहते थे कि यदि वर्डसवर्थ (Wordsworth) से हम होते तो निश्चय सारी रात जागते रह जाते और इन

सब के आनन्द में सहभागी होते।

ऋतुओं के यथार्थ उपभोग और परिवर्तन का सुख केवल ग्रामही में रहने से मिल सकता है। विशेषतः अषाढ़ की धूम-धाम की चढ़ाई का पूर्ण आनन्द तो केवल पहाड़ वा जङ्गल के रहने वालों ही को पूरा अनुभव हो सकता है। मैं जब कभी नगर में रहता और पानी बरसता है तो मुझे बड़ी घबराहट के संग पछतावा होता कि आज प्रकृति के अनेक आनन्दों के देखने से वंचित हूँ। और जब दैव संयोग से पहाड़ पर रहता और यदि कहीं भाग्यतः पानी बरस जाता तो मैं झरनाओं के कलित संगीत सुनने के लिये एक से दूसरे के पास और दूसरे से तीसरे के पास दौड़ता फिरता हूँ और ध्यान देकर सुनता क्योंकि वे सब कुछ न कुछ नई कथा वा नवीन बात अवश्य सिखाते। कोई अपने गम्भीर घोष से कहते, कि जागो जागो और इस गफलत की नींद को छोड़ो, क्योंकि तुम सब की जीवनी भी ऐसी ही नश्वर है, जैसे कि हम सब आते और चले जाते। कोई कहता है कि उस करुणा निधान परमात्मा की पावनी कथा और कीर्ति को गाते चलो, कभी न कभी उससे निश्चय मिल जाओगे, दूसरा बोलता कि हमारे समान सदा लोक के उपकार में प्रवृत्त रहना चाहिए जो इस जीवन का सारांश है, कोई हर हर शब्द के मिष कहते कि हमेशा यदि उस नाम की रट लगाओगे तो निश्चय नदी गुरु को पाकर तुमारा भी उस अचल प्रतिष्ठावान समुद्र से संगम हो जायगा।

इसमें सन्देह नहीं है कि जैसी अवस्था और चित्त वृत्ति होती वैसी ही भावनायें ऋतु उपजाती हैं। विशेष कर वर्षा तो यदि शोक है तो उसकी वृद्धि करैगी, यदि आनन्द है तो उसको सैागुना बनाएगी। शबरोसी नीलो मेघमाला जो चपला के

मिष कटाक्ष कर रही है, विविध मनुष्यों के हृदय में विविध भावनाएँ उपजाने में समर्थ है। जिन किसानों ने अद्यावधि अपनी झोपड़ी वा छप्पर नहीं छा लिया है, त्रस्त हो बावले से इधर उधर अपनी अनेक वस्तुओं के संभालने में दत्तचित्त हैं और जिन्होंने अपने घर को छा लिया है वे प्रसन्न हो कहते कि हे पावस ! तुम सदा बने रहो और योंही बादलों की चढ़ाइयाँ कर पृथ्वी को प्रमुदित करते रहो। धनी रसिक प्रोत्तुङ्ग अट्टालिकाओं पर बैठे दामिनी सरीखी कामिनियों के साथ पावस के स्वागत समारम्भ में सरस सुरा के चटुल चषक भर कर पीते पिलाते हैं। यह जो संयोगियों के सुख और सम्पत्ति का मूल, तो वियोगियों के हृदय बिदारण करने में सूल और यदि आगत पतिकाओं की आशा बल्ली को हरी करने वाला तो प्रोषित पतिकाओं के नेत्रों को झरनों सा बहाने वाला है। यदि अभिसारिकाओं को सुख देने वाला है, तो बिप्रलब्धाओं के अन्तरदाह को उपजाने वाला है।

बरसात के दिनों में किसी एक बड़े रसिक महोदय के यहाँ मैं कार्य्य वशात् गया पर पूछने से ज्ञात हुआ कि अषाढ़ के प्रथम दिवस से और आश्विन की पूर्णिमा पर्य्यन्त आप को किसी से मिलने का अवकाश नहीं रहता। इससे मुझे वहाँ से वैरंग लौटना पड़ा। मैं अपने मन में हँसता और यह कहता चला कि ये सचमुच ऋतु के यथार्थ उपभोग को जानते हैं और परमात्मा ने इन्हें ऐसी सामग्री भी दे दी है कि जिससे वे यथेष्ठ रीति से इसका उपभोग कर सकते हैं। मुझे भी कोई दिन ऐसा भला और सोहावना नहीं मालूम पड़ता जिसको कि मैं साल भर चाव से प्रतीक्षा करूँ और जब कि अषाढ़ अपनी समस्त सेना सहित क्रूर राक्षस ग्रीष्म के ऊपर चढ़ाई

करता है, तो सत्यतः उसकी प्यारी शोभा को अपनी आँखों से मैं घण्टों टक टकी लगाये देखता रह जाता हूँ। यद्यपि लड़कपन में जब आँधी के साथ बादल चढ़ते थे तो न जाने क्यों हम मारे आनन्द के बहुत अधिक शोर मचाते और यद्यपि वह आनन्द अब कहाँ क्योंकि वैसा कुतूहल अब नहीं तौभी ऐसी प्रसन्नता होती है कि जो लड़कपन के आनन्द से बदली नहीं जा सकती।

अतः हे चञ्चला मिष वारवनिताओं का सा नाच दिखाने वाले और बादलों के मिष बन्दर भालू की खेल कूद का कौतुक दिखाने वाले! हरित मेढकराजों को पृथ्वी का उदर चीड़ कर बाहर निकालने वाले! अनेक उष्माओं को उत्पन्न कर सब को एकाहारी वा जापानी बनाने वाले! अथवा सौर मत की हठात् शिक्षा देने वाले! झरने को दरी, और दरी को नदी नदी को नद, तथा नद को महानद बनाने वाले मेघ! तुम्हें अनेकानेक स्वागत के सहित धन्यवाद है।
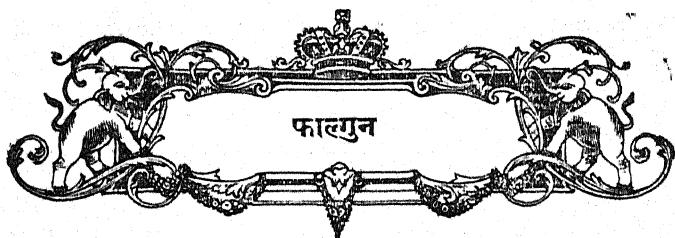
न्य है वह, गोपिका-हृदय-कानन में विहार करने वाला भ्रमर, रसीले रूप का अद्वितीय निष्कलङ्क मयङ्क, कवियों की कविता का एकाधार और प्यारी नागरी का सर्वस्व, सरस सूर का चक्षु, योगियों के हृदय में आनन्द ऊर्मियों को उत्तुङ्ग कर, उस निराकार निर्विकार, आदि-कर्तार ईश पुरुष ब्रह्मयोनि के शुभ्र निर्मल धाम को पहुँचाने वाला, योगेश्वर आनन्दकन्द नन्दनन्दन रसिकराज श्री कृष्ण, जिसने इस सरस फाल्गुण मास की ललित लीलायें रची।

यद्यपि होली जिसे ब्रज में रची थी और जिसे देख चन्द्रमा और सूर्य्य भी नियत कार्य्य को त्याग एक टक लगाये, आकाश मण्डल में चित्र लिखत से हो गये और जिस महोत्सव के अवलोकनार्थ देवगण स्वर्ग त्याग व्योम में नक्षत्र से आस्थित थे, रसिक सुरेन्द्र ने अपने सारे शरीर को चक्षुमय कर दिया था, इस अभागे कलि में तो देखना सर्वथा असम्भव है। पर तौभी यदि आप प्रकृति की ओर दीठ दीजिये तो अब भी वह पूर्ववत् होली खेलती लख पड़ेगी, क्योंकि यदि पलास और

कुसुम महाराज ऋतुराज को गुलाल की भेंट देते, तो मधूकवन प्रसन्न हो सहस्त्रों कुमकुमें छोड़ता दिखलाई पड़ेगा।

वसन्त ऋतु को कविजन, प्रेमियों से समता देते हैं। इसी से उसके राज्य में उसी का अधिक अधिकार लखाता। यदि आप विहङ्ग कुल को देखें तो वे सुबह से शाम तक अपनी प्यारी को अनेक संगीत सुना कर उसे प्रसन्न करने में लगे हैं। कामकला-कुशल शुकी, परिडतवर शुक महाशय की बेसुरी तान में अपनी प्रशंसा सुन, प्रसन्न होने के स्थान पर मानकर अलग जा बैठी है। जिसे देख सखी सामा अपने सुरीले अलाप से उसे प्रसन्न करने की चेष्टा करती, मानो यह कहती, कि यद्यपि हमारे सखा शुक को विधाता ने मधुर कण्ठ नहीं दिया जिससे वे तुम्हारे अरुण गुलाब सदृश आनन की प्रशंसा कर सकें पर तौभी आप उनके पाण्डित्य, बिचक्षणता, सुविज्ञता, तथा सदाचरण में शंका नहीं कर सकतीं। नरकुमरी को देखिये तो वह डालों पर बैठ बैठ अपनी प्यारी की अलौकिक रूप राशि की प्रशंसा ओरलान्डो (Orlando) सा करता घूमता और उसकी दुलारी नारी कुमरी यूरोपियन विधवाओं सी पात पात में छिपती घूमती। लाल साहिब जब अपने मधुर संगीत से मुनिया बाई के स्वरूप की प्रशंसा करने लग पड़े तो ईर्षामल से रहित महर्षि पवन इस नश्वर रूप की ऐसी प्रशंसा सुन हाहाकार कर हँसने लगे। मनसिज मन्त्र का पाठ जो कोईलें करने लगीं तो सारी अमराई प्रेम प्रमत्त हो बौरों के मिस बौरा गई। इसे देख सहवासी मित्र कचनार हँसते हँसते लाल हो गया, और लताओं ने अपनी तन्तु रूपी बाहुलता प्रसार कर, दृढ़ रूप से स्वयम्बर-वृक्षपतियों को आलिङ्गन करना आरम्भ कर दिया।

स्वभावतः कामानल को भड़काता, निद्रित पुष्पों को जगाता, वृद्ध, जीर्ण तपस्वियों के समान सर्पों को सूचना देता कि उनके तप का समय पूरा हो चुका और अब वे शीतल सुगन्धित समीर से सुवासित मलयागिरि पर निवास ले सकते हैं; मानिनी भामिनियों के मान को क्षण के क्षण में कर्पूर सा उड़ाता, कहीं तो जङ्गलों में जा परमहंसों के सदृश जप करता, और कहीं कर्कशा नारियों सा झगड़ता; कहीं बालकों के समान शस्य पूर्ण क्षेत्रों को झनझनाने के मिष सहस्रों घुनघुने बजाता, कहीं यदुवंशियों सा वंश कुल में तलवार चलाता, और कृष्ण सा कलहाग्नि उत्पन्न कर, धूम्र के मिष भगवान भूतनाथ सा प्रलय में नृत्य सा करता, वाटिकाओं में जामुन को गिरा बन्दर सा प्रसन्न हो अट्टहास करने वाला, कहीं लड़कों सा बवण्डर की घूम घूमैया खेलता, पत्तियों की पतङ्ग उड़ाने वाला, कहीं कीचक वंश रन्ध्रों में बैठ बाँसुरी बजाता, कहीं ताड़ के वृहत पत्तों को झड़झड़ा, गिरहबाज़ कबूतरों की सी गिरह लगाने वाला, कहीं कांस श्वास पीड़ित मनुष्यों सा झाऊ और सरों के वृक्षों में सायँ २ बोलता; धुआंकश सा स्वान्तःकरण से भाफ निकालता, पथिक बालकों को डराता, कहीं होली की सी धूल उड़ाता, नदियों में स्नान करता हुआ देवालयों में पहुँच घण्टा को बजा २ कर भगवान भूतनाथ की अर्चना करता, यों अपनी मनमानी दौड़ लगाता जो किसी पहाड़ की कन्दरा में जा किञ्चित काल के लिये विश्राम करता, तो फिर उठ चलता और कामिनियों के कपोलों पर बिखरे कुन्तलों को उड़ाता, धृष्ट नायक सा हठात् उनके परिच्छद हटा हटा उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग को देख मोहित हो, उन्हें भुज भर आलिङ्गन करता हुआ, वसन्त का पवन सञ्चलन करने लगा।

जङ्गलों में मधूक वृक्ष पर्ण विहीन ऐसे लख पड़ते, मानो कोई दानशील नृपति अपने सारे धन और वस्त्राभरण को वितरण कर, आप नग्न खड़ा है और पुनरपि लोक को अन्य कामनाओं से संतुष्ट करने के लिये तप सा कर रहा है वा योगियों-सा सकल कामना-पर्णों को त्याग, भगवान् मातरिश्वा के हर हर जपने पर प्रत्यक्ष आनन्दाश्रु रूपी पुष्पनिपात कर रहा है, वा यह समझ पड़ेगा कि इसने अपने पत्रों को होलिका के लिये गिरा दिया और नवीन वर्षारम्भ के हर्ष में अरण्यनिवासियों को किशमिश बाँट रहा है। श्वेत पुष्पों से लदी शाल वृक्षों की चोटियां ऐसी जान पड़तीं मानो किसी स्वर्गीय मालिन की दुकान है। वा यह कहें कि किसी धनाढ्य खुशबूसाज़ का कारखाना है जिसमें तिल्ली सुवासित करने के लिये पुष्प पुञ्ज बिछा रक्खा है या यह कहें कि देवी वसुन्धरा ने शीत के वसन को त्याग कर अब श्वेत परिच्छद को पहना है। अथवा जटिल वृद्ध तपस्वियों का संघट्ट है जो किसी महर्षि से ज्ञान लाभ करने को आया है, वा कौन जाने वसुमती ऋतु राज को असंख्य चमर दे ऋतु राज के नाम को चरितार्थ किया है। अरण्य के कंदरों की सरस सुगन्धि और उसकी हरियाली निरख, उद्यानों में निवारी पुष्पों के व्याज लाजभर से नम्र हो गई, पलाश फूल कर अरुण शिखा की चोटी को लज्जित करने लगा। अथवा यह कहें कि भगवती बसुमती ने ऋतुराज के स्वागत के अर्थ तप्त स्वर्ण की वेणी सँवार अनेक रंग के पुष्पों के मिष इन्द्र धनुष को भी लजाने वाली, सहस्रों रंग की साड़ी पहन गुलेलाला का प्याला प्रेममद से भर, गुलेनार के मिष मुसकुराती ऋतुपति को सादर समर्पण करती है। इस अलौकिक संगम को, देख सखी डियान्थस ने अपने सकल

रत्नों को ऋतुपति की भेंट के अर्थ ले बाहर निकल खड़ी हुई, तो माली लार्कस्पर ने गुलदस्तों की भेंट दी। मालिन निवारी ने पुष्पों की सेज़ बिछा, बुलबुलों के चहकने के मिस भेंट माँगने लगी, और कलित कोइलें स्वागत स्वागत उच्चार चलीं तो रोवां झिल्ली इत्यादि मंगल की गीत गाने लगीं। बेलरियाँ इस अनुपम उत्साहमय उत्सव को देख आनन्द प्रफुल्ल हो नर्तन करने लगीं और मधुकरनिकरने अपने मधुर स्वर से सारे आकाश मण्डल को भर दिया।

कविजन कहते हैं कि होली के दिन अर्थात् बारहवाँ महीना महाराज ययाति का स्मरण चिन्ह है, कोई कहते कि इस मास का प्रबन्धाध्यक्ष कुसुमायुध है और ब्रह्मा को इस मास में "फ़रलो लीव" दी जाती है। कोई बतलाते कि यह बारहवां महीना प्रजापति है, जिससे कि यह सारी सृष्टि चलती है। बहुतेरे प्रामाणिक कहते कि बारहवाँ महीना अन्धेर मचाने का है क्योंकि ज्योतिष शास्त्रवित्त कहते हैं, कि फाल्गुण मास की उत्पत्ति अदृष्ट व्यापक छाग नक्षत्र में हुई है।

पढ़ने और देखने में आता है कि बड़े बड़े महर्षि, राजर्षि तथा ब्रह्मचारी इन्हीं दिनों में कुसुमायुध के वृहत् पाश में उलझाये जाते हैं, पोपले श्रीफल सदृश मुखवाले, अपनी अवस्था के दुःख को विस्मृत कर नवयुवकों के सदृश उछलने और कूदने लगते, छोटे बड़े सब सम धरातल पर मिलते, मान मर्य्यादा किसी महारण्य में फेंक, हलके हो वसन्त के सुख को अनुभव करते हैं। जिनके देखने के लिये आँखे साल भर तरसती थीं, उन्हें यथेष्ट गाली देते और यदि उचित अवसर मिला तो गालों में गुलाल भी लगा देते और किसी की कुछ बस नहीं चलती।

जिधर कान दीजिये यही अनुमान होता है, कि विश्व ने अपना सारा मन वसन्तोत्सव के उत्सव में समर्पण कर दिया और, झाँझ मजीरा, डफ और करताल इत्यादि वाद्यों की ध्वनि से आकाश को पूर्ण कर, सुरगणों में भी ईर्ष्या अग्नि जगा दिया है। ज़हाँ जाइये वहीं आनन्द की सामग्री निरख पड़ती, मानो दयालु विधि ने इस मास में चिन्ताकर को माफ़ कर, इस लोक को सुरपुर सा सुखमय कर दिया है। जब कि प्रेम के अतिरिक्त मन व्यापारी इतर व्यापार नहीं करता; जब परस्पर गाली प्रदान केवल प्रेम से होता न कि कलह से; जब कि निरन्तर कुसुमायुध के बाण चलते, न कि लोहे के; जब कि अश्रुपात विरह से, न कि दुःख से; ज़ब कलह प्रेम से होता. न कि द्वेष से; वज्रपात बनिता अपाङ्ग दृष्टि से होता, न कि वज्रपाणि वा मेघ से, जब नेत्र खञ्जरीट केवल कुन्तल पाश में फँसाये जाते, ज़ब काम के अतिरिक्त अन्य उपास्य देव रहते ही नहीं; जब पयोधर ही पर शिवार्चन होता, अमृत प्रियतमाओं के ओष्ठ ही में आवसता, विद्या उनकी क्षुद्र घंटिका में और ज्ञान विविध कटाक्षों में, सोमलोक उनके मुस्कुराते मुख और सूर्य्य लोक उनके भाल की बेंदी में, और परम सुख और उत्तम सराहना बुरी से बुरी बातों में मानी जाती है। जब कि युवतिओं को देखते ही लोग दौड़ दौड़ कर उन्हें कबीर सुनाते, जिसे सुन गम्भीरता को भी इस अवसर पर नाचने और गाने का उत्साह होता, जब कि अँगरेज़ी मिज़ाज के अनमेल मनुष्य चमगीदड़ों के सदृश अबीर और गुलाल से मूँ छिपाये घरों में दबके रहते हैं।

पूर्वकाल में जब कि बसुमती सकल शृङ्गार कर, होली सी खेलने लगती तो भगवान नारद भी इस असीम प्रेम और

उन्मत्तता को देख वीणा बजाते इसी लोक में घूमते रह जाते और गोपियों के कितने हूँ कोसने पर भी व्रज वीथिकाओं को छोड़ अन्यत्र न जाते। भगवान कृष्ण मुस्कुराते हुये कहते कि भला बारहवें महीने में तो इस लोक के मनुष्य इन्द्र के समान उन्मत्त एवं आनन्दित और यक्ष के सदृश अपनी प्रियतमा के रूप वर्णन की कथा को मेघ सी जड़ वस्तु को भी सुनाकर दूत बनाने में प्रवृत होते हैं।

यद्यपि यह पश्चिमीय विद्या न केवल धर्म्म को कर्पूर सा उड़ाती जाती, वरञ्च भारत के सब त्यौहार और मंगल दिवसों को भी श्वेत राक्षसी सी नित्य निगलती चली जाती है जिसका मुख्य कारण केवल हम लोगों में संस्कृत विद्या की अनभिज्ञता ही मानेंगे। वही मनुष्य वा देश दूसरे देशों की बुद्धि, विद्या, चाल और रहन-सहन का अनुकरण करेगा जो स्वयं इनमें दरिद्र होगा। परन्तु यदि विचारिये तो यह भारत सब देशों का पितामह, गुरू, विद्या और बुद्धि का दाता प्रमाणित होगा, तब सचमुच शोचनीय विषय है कि ऐसे उत्कृष्ट देश के सदाचार को छोड़, विना चिरकाल चिन्तन किए, लोग उनकी चाल का अनुकरण करते, ज़िनको अभी सैकड़ों वर्ष चाहिये कि वे हम सब के से सभ्य हों। परन्तु ये अँगरेज़ी नीमटर लोग, जैसा कि अद्वितीय वाग्मी बर्क कहता है, कि "बाप दादों की चाल छोड़ देना परम कर्तव्य समझ कर फ्रान्सीसियों ने सब उलट पुलट दिया"। योंही ये सब प्राचीन वस्तुओं का त्याग, स्वधर्म्म का तिरस्कार, संस्कृत शब्दों से अपरिचित रहना ही उचित मानते और यूरोपियन सा इस भाषा से अनभिज्ञ रहना पश्चिमीय विद्या का परम फल समझते हैं।

इससे यदि कोई होली में इन पर रंग की पिचकारी चला दे वा गालों पर गुलाल मलदे, तो ये बड़े ही रूष्ट होकर बिल-बिलाते वरञ्च यदि उन्हें मारखाने का डर न हो तो चाहे दीवार क्यों न उनकी खिल्ली उड़ाये पर वे वहीं एक बहुत बड़ा लेकचर इस होली की असभ्यता पर दे डालेगें।

मैंने कई फागुन का व्याह बरातों में भी देखा तो न वहाँ किसी के सिर पर केसरिया पाग देख पड़ी, न चित्रविचित्र वेष, जो बसन्त ऋतु की सूचना दें, न कुमकुमों की अद्भुत वर्षा, न ललनाओं के कपोल सदृश कोई भाग आकाश का अबीर से लाल देख पड़ा, न पिचकारियों की मार से बरातियों के अध्व-जनित परिश्रम की हीं शान्ति होतीं लख पड़ी और न कोई गाली वा फाल्गुन की दिल्लगी ही करता दिखलाई पड़ा, जिससे यह तो पता चलता कि यह होलो की बारात है। वरञ्च देखा कि कई लोग काली भूतवाली पैाशाक पहन पहन कर महफ़िल में आ रौनक़ अफ़रोज़ हुए। यद्यपि वे पश्चिमीय विद्या की वर्णमाला से भी परिचित नहीं, परन्तु कदाचित् यह देख कर कि उनसे अधिक विद्वान् और धनी ऐसाही वेष समाज में धारण करते हैं, विना पूर्वापर विचार किए हुए, वे भी अनुकरण करते। सोचिये कि एक महफ़िल में जब अनेक रङ्ग बिरङ्ग के कपड़े पहने लोग बैठें हों और दूसरी सभा में कोयले से भी काले चमकते परिच्छद वाले लोग बैठे हों, तो सच कहिये कि क्या आप न कहेंगे कि यह भूत का समाज है और वह देव-ताओं का।

हम आर्य्य जन तो कुछ ऐसे प्रकृति के उपासक हैं, कि यदि वसुमती पक्के शस्य मिस पीत वस्त्र धारण करती, तो हम सब भी बसन्ती वेष धारण करते, जब यह पृथ्वी तृण परिच्छद

को उतार नितान्त धवलित श्वेत पुष्पों की साड़ी पहिनती, तो हम सब भी चांदनी सा श्वेत वस्त्र धारण करते हैं, योंहीं जब वर्षा में सारा जगत हरितमय हो जाता तो धानी, जमुर्रदी, कपासी और गन्धकी रंग हमारे घरों में लखाई पड़ता। शरद वा हेमन्त में जब हमारी पृथ्वी कहीं पीली, कहीं सुफ़ैद और कहीं सुर्ख हो जाती तो हम सब भी अनेक रंग के बेल बूटेवाली छीटैं पहिनते, इसी तरह जब पश्चिमानिल हाहाकार कर बहने लगता, और धूल उड़ाता अपने सहवासी आकाश से होली खेलने लगता, और लाल लाल सूखे पत्तों को उड़ाता कुमकुमा सा मारने लगता, ताड़ और कदली के पत्रों के मिस डफ़ बजाता तो हम भी उसकी चाल का अनुकरण कर, प्रकृति सिद्ध होली खेलते हैं।

सन्तोष

"The portion of life" Said Caliph Ali "is seeking after thee, therefore be at rest from seeking after it.

सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः।

वह कौनसी महौषधि है जिसके सेवन से मनुष्य तृष्णाज्वर, आनन्द नाशक ईर्ष्या और नरक पहुँचानेवाले लोभ से बचता है? वह कौनसा चश्मा है जिसके लगाने से सारे विश्व की वस्तु निज रूप में देख पड़ती हैं? वह कौनसा राज्य है जिसे पाकर फिर और कुछ पाने की आकांक्षा नहीं रहती है? वह कौनसी सम्पत्ति है जिसके पाने से और सब सम्पत्तियाँ तुच्छ और व्यर्थ समझ पड़ती हैं? वह कौनसा ज्ञान है जो सारे विश्व को अपना मित्र बनाता है जिसके धारण से जगत के सब आभूषण फीके पड़ जाते हैं? ऐसी धनसम्पति, औषधि और ज्ञान का प्रथम चरण सन्तोष है। इसके विना राज्य सुख अथवा जगत के सारे सुखों का भाजन होता हुआ भी मनुष्य तृष्णा रूपी ज्वर से सदा जलता रहता है। इतिहास कहता है कि जब जगत विजयी सिकन्दर को यह मालूम हुआ कि उसे अब कोई देश पराजय करने को नहीं बचा, तो वह रोकर कहने लगा कि एक पृथ्वी

और न हुई कि वह उसे भी विध्वस्त करता। यों ही धीर सीज़र ने सारे यूरप के विजय से सन्तुष्ट न हो, राजकीय स्वर्ण मुकुट प्राप्त करने के प्रयत्न में अपने मित्रों को भी शत्रु बना, अपने शरीर को उन सब के कुटिल कृपाणों का निशाना बनाया। वीरभद्र नेपोलियन सारे यूरप के बादशाहों का पराजय कर भी सन्तोष न पा, प्रमादवश रशिया के पराजय करने के प्रयास में अपनी समस्त विजयी और सुशिक्षित सेना को रशिया-रक्षक-राक्षस दारुण शीत के कराल गाल में सौंप, अन्त को तुच्छ मनुष्यों से पराजित हुआ। योंही प्रतापी रावण ने लंका की सहस्रों सुन्दरी ललनाओं से सन्तुष्ट न हो, अग्नि सरीखी जनक नन्दिनी को स्ववश करने के यत्न में अपना तथा अपने कुल का नाश देखा। तथा दुर्मति दुर्य्योधन ने पाँच ग्राम पाण्डवों को न देकर अपने शत भाईयों तथा प्रिय भारत के सारे धनुर्धरों का सत्यानाश किया। लोक प्रिया लक्ष्मी के उपार्जन में भी तुष्टि नहीं मिलती, ज्यों ज्यों इसे संचय करते जाइये इसकी हाय हाय नित्यप्रति बढ़ती जाती है, करोड़ों रुपया पास में रख लोभवश अभागा क्रेसस (Crœsus) संतुष्ट न हो, पार्थिया पर चढ़ धाया, जिसका परिणाम यह हुआ कि वहां के राजा ने उसे तप्त गलित स्वर्ण पिला कर, यह समझा दिया कि स्वर्ण से उसकी तुष्टि इसी तौर पर हो सकती है।

स्पर्शज सुख की दशा भी ऐसी ही है। देखिये, कामी ययाति ने अपने पुत्रों से यौवन उधार ले, भोग कर देखा कि मन की तुष्टि विषय भोग से नहीं हुई, वरन् तृष्णा ह्रसित और क्षीण होने के बदले द्विगुणित हो गई। निदान विषयों के उपभोग से कदापि तुष्टि नहीं आती, नहीं तो ऐसे ऐसे बड़े महोदय गण जो एक समय सारे संसार को अपने वश में कर

लिये थे, सुख पूर्वक, शान्त मन क्यों न बैठ सके ? सिकन्दर को विलाप करने की आवश्यकता क्या थी? सीज़र को स्वर्ण मुकुट से क्या काम था ? एवम् नेपोलियन को रशिया पराजय करने के हेतु शिर उठाने का क्या प्रयोजन था ? रावण को भगवती सीता की सौन्दर्य्याग्नि पर पतङ्ग हो पड़ने की, क्या पड़ी थी ? निश्चय इन महोदयों को यह ज्ञान था, कि सन्तोष राज्य, विषय उपार्जन में नहीं मिल सकता, यह अलौकिक राज्य तो केवल ज्ञान और भक्ति के द्वारा उपार्जित हो सकता है, यह जानते तो ये लोग पृथ्वी और पाषाण से ठोकर लगाकर स्वयम् मस्तक भञ्जन न करते, वरन् अपने इस अमूल्य समय को इस संतोष रूपी राज्य के प्राप्त करने के प्रयत्न में लगाते।

लोगों ने सच कहा है कि संतोषी जन के हृदय देश पर वसन्त ऋतु सदा भोग करती है। वह हिमालय के एक प्रदेश सा है, जहां तृष्णा लोभ और ईर्ष्या की चर्मविदाही लू नहीं बहती। उसे भगवान जगदीश्वर ने सारे सुख से सज्जित किया है, इससे चाह चाण्डालिका कभी भूल से भी वहां नहीं दीख पड़ती। और उसे संतोष के छन्ने से ऐसा ढक दिया है कि सुख तो जाता है और दुःख रूपी मल बाहर ही रह जाता है। इसी से उसके हृदय देश पर आनन्द की ऊंची लहरें, ज्ञान रूपी पूर्ण चन्द्र को देख सदा उठा करती हैं जिससे वह अपने जीवन को सफल मानता है। दार्शनिकों को भी अन्त को यही निर्धारण करना पड़ा कि संतोष से श्रेष्ठ सुख इस लोक में जगदीश्वर ने कोई भी नहीं बनाया। भगवान मनु भी कहते हैं—

संतोषंपरमास्थाय सुखार्थं संयतो भवेत्।
सन्तोषमूलंहि सुखं, दुःखमूलं विपर्य्ययः॥

अर्थात् सुख के चाहनेवालों को चाहिये कि परम संतोष को धारण करें और अपने चित्त को स्ववश रखें क्योंकि संतोष ही सुख का मूल है और असंतोष ही दुःख की जड़ है।

मैंने जिस दिन से यह निश्चय कर लिया कि संतोष से परे कोई सुख नहीं है, सच मानिये कि तब से नक्षत्रों से देदीप्यमान बादशाह और शाहनशाह तथा क्षुद्र जुगनुओं से चमकते बड़े आदमी लोग, लोभ और तृष्णा की अग्नि ज्वाला में संतप्त दीख पड़ते हैं और हम सुखी तथाच शान्त हो, इस अन्तर का अनुभव करते हैं और कभी कभी मस्ती में आ यह भी कह बैठते हैं, कि यह सब तो हम से बहुत ही पीछे हैं, यद्यपि नाम में बड़े हैं। क्योंकि संतोष वा सुख, जो ये सब वृहत राज्य उपार्जन करके भी नहीं प्राप्त कर सके, वह अमूल्य सन्तोष हम सब गुरुजनों की कृपा से ज्ञानद्वारा प्राप्त कर सुखी बैठे हैं, और जब विषयों के उपभोग की लालसाही नहीं रही तो हम इन महोदयों से अपने को श्रेष्ठ कैसे न मानें?

जब जगत विख्यात सिकन्दर ने विश्व के सारे सौख्यों पर उपहास करने वाले महात्मा डाइगोनीज़ के यहाँ जाकर पूछा कि वह उनसे क्या चाहते हैं तो उसने हँस कर कहा—कृपा कर आप हट जाइये ताकि मुझे निर्विघ्न धूप लगे, इसके सिवा आप से क्या प्रार्थना करें? यदि डाइगोनीज़ सिकन्दर को अपने से श्रेष्ठ, सम्पत्तिवान या महिमावान मानता तो निश्चय उससे कुछ निवेदन करता, पर वह अपने को किञ्चित भी न्यून नहीं समझता था, इससे यही प्रार्थना की कि वह हट जाय, जिससे व्यक्त और अव्यक्त उभय सूर्य्यों की किरणें उसे स्पर्श करें।

यह सच है कि संतोष की प्राप्ति से इस संसार का और

ही रूप हो जाता है, जो दुःखमय बोध होता था, वही अब सुखमय प्रतीत होता है। जिन मनुष्यों की सम्पति और सुख को देख दुःखी होते थे, अब उसे देख सुखी होते हैं। वही खाना जो सूखा रूखा प्रतीत होता था अब स्वादिष्ट जान पड़ता है। सन्तोष कैसा कुछ वस्तुओं के रूपों को बदलने में समर्थ है, इस कथानक से स्पष्ट होता है। एक रात्रि को दस बजे तक मैं दो महात्माओं के यहाँ—जो शान्तता के स्वरूप थे और आत्मानन्द महोदधि में अहर्निश स्नान करने वाले थे—बैठा रह गया। कुछ काल पीछे एक साहब ने कहा, आज सारा दिन पूजा और ज्ञान ही में व्यतीत हुआ आओ अब इस समय तो कुछ भोजन पान करलें। कहने की देर थी कि दूसरे साहब ने एक प्याला उतारा जिसमें बहुतेरे बनस्पतियों से संयुक्त दाल, आठ दस उबाले आलू और एक मोटी रोटी रखी थी। रोटी छूरी से ऐसी काटी गई कि रेखा गणित के आकार शेष न बचे और जब उन्हें सेक कर बिस्कुट सा वे लोग खाने लगे, तो मैं अपने जी में समझने लगा कि यह लोग ऐसे निस्वाद वासी भोजन को ऐसे स्वाद से कैसे खा रहे हैं। वे सब हम पर बड़ी कृपा करते थे इससे साहस कर पूछा कि स्वामी जी! यह सामग्री तो केवल भूख राक्षसी के शमनार्थ ही हो सकती है इसमें स्वाद भला क्या होगा? वे हँस कर कहने लगे कि आपको यह मालूम नहीं कि इन रोटियों के साथ सन्तोष की चटनी भी है, जो इसमें कुछ ऐसा स्वाद बना देती है कि यही भोजन स्वर्गीय मालूम होता है और कदाचित् यह स्वाद आप सबों को अप्राप्य भी हो।

जब मनुष्य अपनी दशा में सन्तुष्ट रहता है और किसी वस्तु के अभाव से दुःखी नहीं होता, तो वह लोक के सुख से

सुखी रहता, धनिकों के मकान, धन, सजे धजे, उद्यान, विशाल चिड़ियाखाना कुक्कुटों और कबूतरों के लिये महल, कुत्तों के लिये अस्पताल, इसी प्रकार मनुष्य जाति को यावत् सम्पत्तियों को देख वह प्राकृत जनों की भाँति आह नहीं भरता, कि हमें भगवान ने ताजमहल सदृश मकान में रहने का सौभाग्य नहीं दिया, चौकड़ी पर नहीं चढ़ाया, भालपट्ट पर दिगन्तव्यापी राज्य का नक़शा नहीं लिखा, इससे जहाँ जाता उसे कुछ न कुछ दुःख का सामान अवश्य देख पड़ता है। मैंने बहुत से बड़े आदमियों को देखा है कि वे मारे ईर्षा और द्वेष के दूसरे की विभूति और ऐश्वर्य्य को सहर्ष नहीं देख सकते, दूसरे की कीर्ति सुनते ही वे मृतक से निर्जीव हो जाते हैं। यदि सुनते कि किसी को विधिवशात् चिर प्राथित सन्तान उत्पन्न हुई तो वे ऐसे दुखी होते मानो उनके घर का कोई चल बसा। यह सब मायामय दुःख इन सबों के सुख की सामग्री का कारण होता, यदि ये संतोष धन से सन्तुष्ट होते।

यह परम लोक चातुरी, विचक्षणता और बुद्धिमानी है, कि विधि ने हमें जैसी कुछ विद्या, भूमि, धन और मित्रमण्डली से परिवेष्टित किया है, उसी में सन्तुष्ट रहें, और इन्हीं वस्तुओं से अपने कार्य्यों का निर्वाह करते हुये, जगदीश्वर को धन्यवाद देते रहें। इससे आप यह मत समझिये कि हम आपको सन्तोष रस पिला मीरफ़र्श अडोल और बेकाम बनाने की इच्छा करते हैं। नहीं, वरञ्च सन्तोष इस अर्थ में ग्रहण कीजिये कि यदि विधिवश हम किसी आपत्ति की अवस्था में फेंक दिये गये हों, तो सन्तोष रूपी नौका पर चढ़ सानन्द दुःखार्णव को पार कर सकें। यदि कोई भारी काम इस लोक में उठा, उसमें कृतकार्य्य न हुये तो ग्लेडस्टन सा होमरूल बिल न पास होने पर,

निश्चिन्त स्वस्थ पूर्वक सो सकें।

सन्तोष वह कवच है कि जिसके धारण करने से मनुष्य के शरीर को विधि के कुटिल, दुखदाई और पैने शर वेध नहीं सकते। वैसे ही जब मनुष्य मान कीर्ति और यश के ऊँचे कङ्गूरे पर चढ़ा दिया जाता और दैववश यदि उसका पतन होता तो वह संतोष रूपी औषध से अपने भग्न अङ्गों को आराम कर सकता है। देखिये "ऐज़ यू लाइक इट" नाटक में जब दुष्ट फ्रेडरिक ने अपने सज्जन सुशील और सात्विक ज्येष्ठ भाई का राज्य, कपट से अपहरण कर, बनबास दिया तो ऐसी विपत्ति की अवस्था को भी, संतोष ने कैसा कुछ प्यारा कर दिया था यह उनकी इन उक्तियों के पढ़ने से यथार्थ अनुभव होगा :—

"ऐ मेरे आपत्ति काल के मित्रो! क्या यह हम सबों की बनौकसी वृत्तियाँ, चिर अभ्यास से, सब राजसी आडम्बरों से अधिक प्यारी नहीं हैं? क्या यह बन, राज्य के झंझटों और झमेलों से विशेष सुरक्षित नहीं है? यद्यपि हम सब आज यहाँ वही दुःख झेल रहे हैं, जो बाबा आदम को आदि में झेलना पड़ा था। यह शीत कौलेयक, हिम पूरित झंझापवन मिस हाहा कर हमारी अशिष्ट निन्दा करता हुआ वेग से भूंकने लगता है और हमारे शरीर को अपने तुषार तीव्र दंष्ट्रों से काटता है, यहाँ तक कि हम थर थर काँपने लगते हैं और कहते हैं कि यह शुश्रूषा नहीं है। परन्तु ये हमारे सच्चे हितैषी हैं जो हमारी निज दशा को जताते हैं। यद्यपि विपत्ति का समय मेढक सा विकृतानन और विषधर है, पर जैसे वह एक अमूल्य रत्न अपने मस्तक पर रखता है, वैसे ही विपत्ति में भी अनेक लाभ हैं। और हम सबों की यह जीवनी जो लोक के दुराक्रमण से बची है, वृक्षों

में भाषा, झरनों के कल्लोल में शास्त्र, पाषाण में धर्म्म व्याख्यान और इसी भाँति सवी वस्तुओं में कुछ न कुछ उपयोगिता ही देखती है, इसीसे हम इस अवस्था का परिवर्तन न करेंगे"। धन्य ये महाराज हैं जो ऐसी दारुण विपत्ति का ऐसी शान्त भाषा में अनुवाद करते हैं, भगवान भी गीता में कहते हैं कि असन्तुष्ट जन दुःख और सन्तुष्ट जन सुख के भागी होते हैं।

यदि असन्तोषी दरिद्र, तो संतोषो धनी, यदि प्रथम अग्नि तो द्वितीय शीतल जल, यदि एक नारकी तो दूसरा स्वर्गीय, एक आत्म-परायण और कृपण तो दूसरा उदार और लोक उपकार कर्त्ता, योंही एक ग्रीष्म सा अशान्त तो दूसरा शरद सा शान्ति का स्वरूप है। इसी से लोगों ने असंतोषी जन की उपमा उन नौकरों से दी है जो अपने कर्म्मों पर तो कुछ नहीं ध्यान देते पर अपनी वेतनवृद्धि के लिये सदा मूँ बाये रहते और अपनी व्यर्थ प्रार्थनाओं से उद्वेजित किया करते हैं। जब हम सब ऐसे भृत्यों से असन्तुष्ट रहते हैं तो अवश्यही परमात्मा भी ऐसे मनुष्यों से असन्तुष्ट रहता होगा। यदि विचार कर देखें तो इसमें परमात्मा वा विधि का कोई दोष नहीं है, क्योंकि जो कुछ भला वा बुरा इस लोक में मनुष्य भोग करता है वह उसी के कर्म्मों का फल स्वरूप है, इसी से अपनी भाल पट्टिका का लेखक वह अपने सिवा दूसरे को कैसे कह सकता है ? सुतराम् केवल संतोष ही एक अमृतोपम महौषध रह जाता जिसे पान करने से हम सब सुखी हो सकते हैं, नहीं तो दिन रात भूँखी डाइनों सा हाय धन, हाय पेट किया करेंगे और कौन जाने इस असन्तुष्टता को देख, वह सरकार ऐसा रूठ जाय कि जो कुछ दिये है उसे भी मिट्टी में मिला दे। नहीं तो वही संतोषी जन की त्रुटियों और अधूड़ी कार्रवाइयों को पूरा करने वाला परमात्मा

जगदीश्वर है।

विपत्ति काल में भी धीर और अपने आपे में रहना, प्रायः संतोषी मनुष्यों को परम सुलभ है, क्योंकि वे सब ही हानि को भूल जाने का प्रयत्न करेंगे, न कि समझ समझ कर हाय हाय करेंगे। और अपने मन को यह समझा कर, कि यदि वस्तु मेरे भाग्य की होती तो निश्चय प्राप्त होती, वा पास से न खो जाती संतोषी जन फिर भी चाक चौबन्द हो स्वस्थ मन बैठ सकते हैं। एक मल्लाह जहाज के ऊँचे मस्तूल पर से गिरा तो बिचारे की टाँग टूट गई परन्तु वह हँसते हुए उठा और जब पार्श्व-वर्तियों ने इसका कारण पूछा तो उसने आर्त हो यह कहा कि, धन्य ईश्वर की विचित्र लीला कि हमारी गर्दन बच गई। हमारा कौल तो यह है कि जो कुछ बने सो हमारा किया हुआ है और जो बिगड़े उसका विधि दोष भागी है। यानी भाग्य के ऊपर इस तरह बोझा फेकने से मनुष्य हलका और स्वस्थ हो जाता है और किसी अवस्था में भी संतुष्ट मन हो सुखी बैठ सकता है।

गोल्डस्मिथ कहता है "संतोष के प्राप्त करने का यह एक अच्छा उपाय है कि अपने से छोटों के भाग्य की तुलना किया करे"। यदि धन से दरिद्र है तो अपने से जो अधिक दरिद्र हैं उन्हें देखे, यदि अविद्या से दुखी है तो अपने से जो अधिक मूर्ख हैं उनकी दशा देखे। एक बार मैं एक छोटी टट्टू पर चला जा रहा था इतने में पीछे से एक साहिब नौजवान चञ्चल तुरंग पर चढ़े, चींटों सी धूल उड़ाते चले आ रहे थे। देखते ही ईर्षा की मक्षिका, डंक मार कहने लगी कि तू कैसा अभागा है कि तुझे एक जीर्ण लिबदी चढ़ने को मिली है। सच मानिये कि ये भावनायें तब तक दूर नहीं हुईं जब तक कि वह

मेरे चक्षुओं की पहुँच से हट नहीं गया। पर जब मैंने एक वृद्ध को ऐसे धूप में सिर पर गठरी लिए हुए, हांपते अपने भाग्य को कोसते चले आते देखा, तो मैंने अपने जी में कहा कि हम इससे तो निश्चय अधिक सुखी हैं, क्योंकि हम तो भला दूसरे की पीठ पर सवार हैं इसे तो पैदल ही चलना पड़ रहा है, और ऊपर से बोझा भी लदा है। मैंने परमेश्वर को धन्यवाद दिया कि उसकी असीम कृपा से बोझा ढोने के अतरिक्त दूसरे के ऊपर तो सवार हूँ।

यह एक बड़े आश्चर्य्य की बात है कि जहां मनुष्य समझता है कि यहां संतोष अवश्य होगा वहाँ यह कभी नहीं पाया जाता। जब हम ऊँची सजी धजी आकाशवेधी अट्टालिकायें देखते हैं, अनेक देश के घोड़ों से अश्वशाला को कसी पाते हैं, रुपये से कोषों को भरा पुरा देखते अथवा जब सब सम्पत्तियों का एक ठौर निवास देख कौतुक वश उनके भोक्ता के दिल रूपी घण्टी को बजाते हैं तो वहां से असंतोष ही का शब्द सुन पड़ता है कि "यह हो जाता, वह मरजाता, वह राज्य मिल जाता, यह राज विद्रोह की अग्नि से प्रज्वलित ज्वाला शान्त हो जाती" ऐसा ही रव सुन पड़ता, जिससे आप को यह निश्चय हो जायगा कि इनकी त्रुटियां कभी पूरी ही न होंगी। और यह उससे भी अद्भुत है कि जहाँ केवल एक छोटी सी झोपड़ी है जिसमें दो एक मृत्तिका के भाण्ड रक्खे हैं, वहां एकाएक यही प्रतीत होता है कि इसके वासी तो अपनी इस दरिद्र अवस्था में अवश्यही असंतुष्ट होंगे, पर यदि उसके स्वामी के पास जा बैठिये तो थोड़े ही काल में आप को यह ज्ञान होगा कि इन्हें इस लोक में अब किसी वस्तु की चाह बाकी नहीं रह गई क्योंकि यहाँ तो संतोष की खेती होती है जिसमें ईति और

दुष्काल की सम्भावना नहीं है। यदि कहीं आप उनसे पूछिये कि वह अपनी इस दशा में संतुष्ट हैं कि नहीं, तो वह यही कहेंगे कि जो राजाओं को अलभ्य है, जो सम्राटों को स्वप्न में भी अप्राप्य है और जिस उत्तम दशा का बृहस्पति वरुण और इन्द्र तथा समग्र देववृन्द अनुभव करते हैं, वह हम सब को इस संतोष धन द्वारा सहज सुलभ हैं। इसी से लोगों ने सच कहा कि झोपड़ियों में कोइल और पपीहा बोला करते हैं और बड़े बड़े प्रासादों में प्रायः भयङ्कर युद्ध के गोलों के शब्द सुन पड़ा करते हैं और तृष्णा, लोभ, मोह तथा काम के अनेक गृध्रों के अधीर स्वर विह्वल किया करते हैं। यहाँ तो—

गर यार की मरज़ी हुई सर जोड़ के बैठे।
घर बार छोड़ाया, तो वहीं छोड़ के बैठे॥
गुदड़ी जो सिलाई तो वहीं ओढ़ के बैठे।
शिकवाँ न ज़वाँ पर, न कभी चश्म हुए नम।
ग़म में भी वही ऐश, अलम में भी वही दम॥
ग़र उसने दिया ग़म, तो ग़म में रहे खुश।
जिस तौर कहा उसने उस आलम में रहे खुश॥
खाने को मिला कम, तो उसी कम में रहे खुश॥
जिस तईं रखा उसने उसी दम में रहे खुश॥
दुख दर्द में आफ़त में, जञाल में खुश हैं।
पूरे हैं वही मर्द, जो हर हाल में खुश हैं॥

नज़ीर॥

जन्म-भूमि

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"

अपनी मातृभूमि की चाह किसे नहीं है? चाहे स्वर्ग से गिरते समय देवताओं की आँखों से आँसू न निकले हों परन्तु मनुष्य तो जब कभी राजाज्ञा अथवा लोभवश अपने देश को छोड़ता है, तो उस समय, चाहे वह कैसा हू धीर और वीर क्यों न हो धैर्य्यविहीन हो, कातर स्वर से रोने और विलाप करने लगता है। ऐसे मनुष्य बहुत कम हैं जो स्वदेश का नाम सुन, चाहे वे स्वर्ग ही में जा क्यों न बस गए हों, अश्रुपात न करने लगें, और गहरी साँस भर भर कर, यह न कहने लगें कि, हा वह दिन अब कब लौटेगा कि हम पुनरपि उस प्यारी चिर परिचित भूमि का दर्शन करेंगे, और बालक सा फिर उसकी गोद में खेलेंगे तथा पुराने सहबासियों के साथ गत और वर्तमान विषयों पर स्वच्छन्दता से बातें करेंगे। मैं जब अपने घर से कभी किसी कारण वश विदेश चला गया था, तो घर और उसके प्राणी मात्र कैसे कुछ अधिक प्यारे हो जाते हैं, इसका अनुभव सम्यक प्रकार से हुआ था। घर की सुध

आते ही चक्षु से अश्रुधारा, बर्षा के झरनों की भाँति लज्जा छोड़, अन्तःकरण रूपी पर्वत से भर भरा कर निकल पड़ती थी, गृहस्थित एक एक वृक्ष और लताओं की सुध आती थी, वहाँ के सबी मनुष्य स्वर्गीय समझ पड़ते थे, कुल चालें उनकी स्वर्गीय समझ पड़ती थीं, जिनसे कभी प्रणामाशिष तक भी नहीं था, वे दूर होने के कारण आत्मीय से जान पड़ते थे। कभी कभी आह भर मनीमन में यह कहता कि देखो इस अनजान देश में हमारे नाम तक को भी कोई प्रेम से लेने वाला नहीं। स्वागत देने वाले, अनेक गूढ़ रहस्यों की कथा, कटाक्षों में कहने वाले नेत्रों के तो कभी दर्शन भी नहीं होते। कोई प्यार से यह भी पूछने वाला नहीं देख पड़ता कि हम सुखी हैं वा दुखी, खाना खाया है वा योंही दिन भर पहाड़ों के श्रृङ्ग गिनते फिरते हैं। कहां कहां की सैर की है और किन किन दृश्यों को देख, परमात्मा की असीम कृपा और औदार्य्य को गदगद हो सराहा है। किन किन झरनों से मिले हैं, उनसे क्या क्या संलाप हुआ है, कौन कौन सी नदियां पार की हैं, दोपहरी की धूप से किस ठौर बचे हैं, और किस श्रृङ्ग पर चढ़ इस प्यारी वसुमती की शोभा नेत्र भर देखा है? यद्यपि मनुष्यों से वह भी स्थली पूर्ण थी पर हम से उनसे प्रयोजन ही क्या था? उनका देखना चित्रों का दर्शन करना था? कारण, न चित्रही संलाप सुख दे सकता है और न वे अज्ञात लोग ही कुछ कह सुन सकते थे। इसी से कवियों ने यह ठीक ही कहा है—जन सन्दोह भी परम एकान्त है।

जन्मभूमि कुछ ऐसी प्यारी वस्तु है कि जब शकुन्तला अपने पिता कण्व के घर से विदा होने लगी, तो वह अपनी पोसी हुई, एक एक लता और वृक्षों से मिलती है, अपनी प्रिय सखी

प्रियम्बदा को उनके यथार्थ पोषण और पालन को सहेजती, मृगशावकों को चूमती, उनके अञ्चल के न छोड़ने पर रोकर कहती कि अब वे उसे पति के घर जाने की आज्ञा दें। कवि कहता है शकुन्तला के जाते समय सब पत्तियोँ ने गाने के मिस आशीर्वाद दिया और उदार बनदेवियोँ ने अपने सुवर्ण के सब आभूषण उसे भेंट में दिये। कादम्बरी में जब शुक अपने शाल्म-मली वृक्ष का वर्णन करने लगता है, जहां कि उसकी शिशुता व्यतीत हुई थी तो वह तृप्त नहीँ होता। इसमें सन्देह नहीँ कि जैसे नृप अपने सहस्रों ध्वजाओं से अलंकृत प्रासाद को प्यार करता है, जैसे बड़े बड़े आदमी अपने सजे धजे महलों का विदेश में स्वप्न देखते हैं, वैसे ही ग़रीब भी उन सबों से कहीँ अधिक, अपनी हरी भरी बेलों से ढकी, पर्णकुटी को चाहता है। यह अनुराग वास्तव में अनुचित नहीं, क्योंकि इन झोप-ड़ियों में उन अट्टालिकाओं से कहीं विशेष सुख, शान्ति और सन्तोष निवास करते हैं। इसी से कविजन सदा वृक्षों और लताओं से आवेष्टित झोपड़ियों का वर्णन विशेष प्यार से किया करते हैं।

मनुष्य की क्या कथा, पशु पक्षी भी अपनी जन्मभूमि का, जहां उनकी शिशुता के स्वर्गीय दिन बीते हैं, यावत् जीवन स्मरण रखते हैं। बहुत सी चिड़ियायें तो ऐसी हैं कि पृथ्वी के दूर दूर भाग को भी जा, सहस्रों कोस का समुद्र लांघ फिर भी बसन्त में उसी ठौर आ पहुँचती हैं जहां उन सबों ने इस प्रिय लोक का प्रथम दर्शन किया था। हमारे आहाते में, यहीँ का वासी एक भुजंगी का जोड़ा, चाहे वह वर्ष भर कहीं रहा हो, वसन्त में अवश्य आजाता है, और एक आम के वृक्ष पर जो हमारे तड़ाग का मौलि मुकुट है, बच्चा देता और ज्येष्ठ से

अषाढ़ पर्य्यन्त जब तक कि उसके बच्चे उड़ने योग्य नहीं हो जाते, वहीं रहता है, इसके पश्चात् वह फिर किसी दूसरे देश को चला जाता है। योंही वह हर वसन्त में आया करता है और रसाल के शिखर पर बैठ ठाकुर जी ! ठाकुर जी ! का पाठ किया करता है। इसके सिवा एक वनकुक्कुट भी अषाढ़ के प्रारम्भ ही से, अपनी सहचारिणी के साथ मेरे तड़ाग में आ बसता है और अपने अनोखे कलरव से सारे स्थान को अंगरेजी बैण्डरव सरीखा पूर्ण किये रहताहै। किन्तु जो लोग प्रकृति के पूर्ण उपासक नहीं हैं, उन्हें तो उनकी बोल कभी कभी दुःसह हो जाया करती है। इन कुक्कुटों की जोड़ी प्यारी वर्षा पर्य्यन्त हमारे तड़ाग ही में निवास करती और अपने छोटे बच्चों को लिये सदैव चराती घूमती है। जैसे ही वे पुष्ट हो उड़ने योग्य हो जाते और उधर शरद की तीव्र किरणें वसुन्धरा की स्निग्धता को आचूषण करना आरम्भ करतीं वैसे ही वह दम्पति भी विदा हो जाते, परन्तु वर्षा आने पर निश्चय पुनः दर्शन दिया करते हैं।

एक वृद्धवशिष्ट, हम लोगों से लड़कपन में जन्म भूमि के विषय में एक कहानी कहा करते थे। किसी एक राजा ने एक परम अद्भुत और अलौकिक शुक पाल रक्खा था, जिसे वह जी से भी अधिक प्यार करता था। वह विचक्षण शुक मनुष्य सा बात चीत कर सकता था। उसे अनेक पुराणों के बहुत से श्लोक भी कण्ठ थे, इसी से राजा उसे स्वर्ण के पिंजरे में बड़े आदर से रखे थे और जहां जहां जाते उसे सदैव अपने साथ ही ले जाते थे। एक दिन प्रातःकाल इसे ताज़ा ताज़ा फल खिला रहे थे, प्यार पूर्वक उससे पूछ बैठे कि बेटा हीरामणि अपने जंगल की बादशाहत से हठात् निकाले जाने के

पूर्व तूने कभी, ऐसा अपूर्व महल, ऐसी सजी धजी वाटिका और उद्यान तथा ऐसा वृहत् सरोवर, जिस में कमलनी अप्सराओं सी सजी, सदा जल आरसी में अपने अनुपम आनन को रूप गर्विता सी निरखती रहती है, देखा था? वह बिला समझे बोल उठा "हुज़ूर वतन प्यारा, वतन प्यारा। जहां मेरा जन्म हुआ, वैसी प्यारी स्थली तो सारे जगत में न देखने में आएगी, तब आप के उद्यान और महल की क्या कथा? यदि आप उसे देखें तो शायद आप भी ऐसा ही कहें" इसे सुन नृप कुछ ऐसा उत्तेजित हुआ कि दूसरे ही दिन जब कि भगवान भास्कर के विजय के तूर्य्यनाद की घोषणा भी कुक्कुटों ने नहीं की थी, और विजय के आह्लाद में सूर्य्य देव ने अपनी प्यारी प्राची के गुलाब सरीखे कपोलों को अपने अंशु ओष्ठों से रंजित नहीं किया था, तथा कमलनियों को अपने प्रदीप्त करों से उन्निद्रत कर उलहना नहीं पाया था, राजा उस तोते के पिंजरे के समीप आ उपस्थित हुआ और कहने लगा, कि हम तुम्हारी जन्म भूमि को देखने के अर्थ चला चाहते हैं। ऐसा कह अपने अश्व पर चढ़ा और शुक महाशय आकाश मार्ग से उड़ते हुए, इन्हें उत्तर की ओर ले चले। कई दिवस पश्चात् एक महारण्य में दोनों ने प्रवेश किया, जो ऐसा सघन था कि राजा को उसमें अश्व ले जाना अत्यन्त असंभव प्रतीत होने लगा। राजा घबरा कर कह उठा कि हम तुम्हारी जन्म भूमि देखने से बाज़ आए, हम एक पग भी अब आगे नहीं बढ़ सकते। इसमें न तो अश्व ही जा सकता है और न हमीं में अब पराक्रम शेष है। यह सुन वह आकाश से कहने लगा, कि घबराइये मत, अब बहुत ही सन्निकट है। थोड़ा और चल कर दोनों एक नदी के किनारे जा पहुँचे जिसका कूल सघन जमु-

आरी में घिरा था, इन्ही में से एक जमुये की शाखा प्रलम्ब हो नदी के मध्य तक चली गई थी, मानो घर से भागी जाती नदी अप्सरा को अपने विस्तृत शाखा कर से अवरोध सा किया चाहती है, जिसे वह अपने कर उर्मियों से बरज सी रही थी। अथवा ऐसा जान पड़ता था कि वह सारे बन की ओर से प्रतिनिधि स्वरूप, महोदधि महाशय के अर्थ दूती नदी से झुक कर संदेश सा कह रही थी ; वा अतिथि जल से कह रही थी, कि तुम वारण करने से भी यदि नहीं मानते, चलेहो जाते हो तो देखना हम लोगों की सुध रखना, भूलना मत। इसी डाल के एक परम रम्य कोटर में सूआ जा बैठा और कहने लगा कि यही मेरी प्यारी जन्मभूमि है, यहीं मेरी शिशुता के स्वर्गीय दिन कटे थे, माता पिता की गोद में बैठे, यहीं से प्रकृति सुन्दरी के अनुपम सौन्दर्य्य को हम निरखते थे। इसी के देखने के अर्थ आप को इतना कष्ट दिया है। अब कृपा कर अश्व को बाँध, हाथ मूँ धो, इसी पर चढ़ आइये और यहीं से क्षणैक नदी की विस्तृत शोभा को अवलोकन कीजिये। राजा ने कहा, कि मैं भूखों मर रहा हूँ, तुम्हें प्रकृति की शोभा देखने की सूझी है। वाह ! घर में भी भोजन की कमी, यह कह सूआ अरण्य में गया और वहाँ से दो मीठे मीठे फल ले आया। राजा फल खा कर जब सन्तुष्ट हुआ तो उसकी आँखों में भी हरियाली देख पड़ने लगी। फिर तो उस सुन्दरी नदी के अनेक भाव, उनके भी दिल में जँचने लगे। देखते देखते राजा बोल उठा "मित्र बताओ रात्रि को अब कहां सोएगें और क्या खाएंगे, क्योंकि हम पक्षी तो हई नहीं कि चार फल से हमारी तृप्ति हो जाय। शुक ने उत्तर दिया, आप का सत्कार सारे कानन के पक्षी करेंगे—भांति भांति के सुस्वाद फलों को आप

की भेंट करेंगे, आप के चरणों पर गिर आपकी सेवा करेंगे। इससे अब आप शान्त मन हो इस रम्य संस्थली की शोभा देखिये। कहानी कहती है कि पण्डित शुक अपने महाराज को एक महात्मा की कुटी पर ले गया। वहाँ उन्होंने वह भोजन और सत्कार पाया जैसा नृपति ने आजन्म कभी पाया ही न था। प्रातःकाल उदार नृपति ने शुक से कहा, अब हम तुम्हें अपनी सेवा से मुक्त करते हैं। तुम्हें ऐसी पवित्र संस्थली से लौटाना पाप समझते हैं; अब तुम इसी प्यारे बन में अपने शेष दिवस को व्यतीत करो। सूआ ने राजा के पैरों पर गिर अनेक धन्यवाद दे, राजधानी तक पहुँचाने की आज्ञा माँगी। घर पर पहुँच कर राजा ने उसे बड़े आदर से बिदा किया।

स्वदेश अनुरागी स्काटलेण्ड का वृद्ध ऐन्द्रजालिक स्काट कहता है—"क्या इस घने बसे विश्व में, कोई ऐसी भी नितान्त क्लीव आत्मा है, जो अपने देश का नाम सुनते ही न उछल पड़े और एकाएक यह न कहने लगे कि यही मेरी जन्मभूमि है, यही मातृभूमि है, यही हमारे पूर्वजों की जन्म स्थली है! वह कौन ऐसा आत्म-परायण है, जो विदेश भ्रमण कर थकित गात हो, जब अपनी प्रिय जन्मभूमि की ओर पद रक्खे, तो स्वदेश स्नेह और अनुराग से न उछलने लगे? यदि ऐसा कोई है, तो उसे आँख खोल देख लो, क्योंकि ऐसे नीच के विषय में कवि की लेखनी कभी उच्छ्वास नहीं लेती, चाहे वह कैसा ही लक्ष्मीवान्, कीर्तिमान् वा उपाधियों से भूषित क्यों न हो? क्योंकि यह सब शक्तियाँ अर्थात् उपाधि, धन और कीर्ति, उसने एकमेव स्वार्थ साधन ही में लगाया है; इससे जीते जी वह अपनी अमल कीर्ति को लोप होते देखेगा; और इस प्रकार दोहरे मृत्यु के कराल गाल में पड़ेगा। ऐसे मनुष्य के स्मारक स्तम्भ

पर कभी कवि की अमरकारी टांकी का शब्द न सुन पड़ेगा, और न उसकी समाधि किसी के प्रेमाश्रु से सींची जायगी"। इसमें सन्देह नहीं कि जैसा स्नेह, प्यार तथा आदर मनुष्य अपने देश का करता है, वैसा कदाचित् वह दूसरे देश का नहीं कर सकता। इस विषय में उसकी बुद्धि कुछ ऐसी पक्षपातिनी हो जाती है कि वह चाहे कैसा ही शोभा सम्पन्न स्थान क्यों न देखे, अथवा परमोत्कृष्ट नगरों में नित्य क्यों न भ्रमण करे, पर इन सबों में अपने देश और नगर के समक्ष उसे कुछ न कुछ न्यूनता ही देख पड़ेगी। गोल्डस्मिथ जब देशाटन करने को निकला था, तब वह निश्चय करना चाहता था कि कौनसा ऐसा देश है जो सर्वोत्कृष्ट और सर्वोत्तम सम्पतियों से सम्पन्न तथा सुखी है। परन्तु उसे यही कहना पड़ा कि जिस देश में जो रहता है उसकी आँखों में उससे बढ़कर उत्तम सुखी बुद्धिमान, दयावान और प्रकृति की उदारता से सम्पन्न, दूसरा देश नहीं देख पड़ता। क्योंकि उत्तर ध्रुव का निवासी यद्यपि शीत से थर थर काँपता है परन्तु प्रचण्ड वात से उद्वेजित अपने समुद्र को सम्पत्तियों का भण्डार समझता तथा अपनी लम्बी रात्रि के अनेक लाभों की प्रशंसा दिल खोल कर करता और कहता है, कि सब से सुखी उसीका देश है। वैसे ही भगवान भास्कर की प्रखर किरिणों से सन्तप्त, हाफ़ता हुआ हबशी, अपने देदीप्यमान सिकतामयप्रदेश तथा नारियल की शराब के अर्थ, किञ्चित् ऊष्णतोय-राशि की ऊर्मियों में क्रीड़ा करता हुआ, जगदीश्वर को बड़ी प्रसन्नता पूर्वक अनन्त धन्यवाद देता है। कवि कहता है कि जहाँ जहाँ वह गया उसने सब देशों को अपनी मुख्य सम्पत्ति और विविध विद्याओं से सन्तुष्ट पाया और सबी को यह कहते हुए सुना कि उनका सा सुखी देश

दूसरा कोई नहीं हैं। जैसे कुत्ते और शिकारियों से पीछा किया गया दीन शशक सब ओर घूम कर उसी ठौर फिर भी हांफता हुआ आ खड़ा होता है, जहाँ से वह पहिले भगा था, ऐसे ही सब मनुष्य चाहते हैं कि सारी ज़िन्दगी चाहे जहाँ कटे, पर अन्त समय अपने स्वजनों ही में संयम से बैठ, परस्पर मैत्री और सन्लाप में व्यतीत करें। बङ्गाल के एक यवन नब्बाव ने हाफ़िज़ को जब शीराज़ से बड़े आदर पूर्वक आह्वान किया, तो लालच उसे केवल कुछ ही मील समुद्र में घसीट ला सकी क्योंकि समुद्र के उपद्रवों ने उसे शीघ्र ही यह निश्चय करा दिया, कि जहाँ परमात्मा ने उसे फेंक दिया है, उसके लिये उससे उत्तम और आनन्ददायक स्थान कोई दूसरा नहीं हो सकता अतः वह सीधा घर लौटा। मनुष्य अपनी जन्मभूमि को वैसा ही प्यार करता, वैसी ही उसकी प्रशंसा करता, उसके अनेक गुणों का वैसा ही फ़ायल है, जैसे अपने रूप, विद्या, बुद्धि और दाक्षिण्य का। मनुष्य जैसे अपने गुण और रूप से सन्तुष्ट है, वैसे ही अपनी प्यारी जन्मभूमि की सबी बातों से तृप्त है, इसीसे कितना हूँ कष्ट और आपत्ति उसे वहाँ क्यों न पड़े, उसे छोड़ वह कहीं नहीं जाता, और यदि जाता भी है तो जैसे मा अपने बच्चे को सदा निगाह पर रखती, चाहे वह कार्य्यवश कितना ही दूर क्यों न चली जाय, वेसे ही वह भी उसे कभी कहीं जाकर नहीं भूलता। सब से बढ़कर यह दृश्य नदी के माझाओं और ज्वालामुखी पर्वत के छोरों के समीप देख पड़ता है, कि नदी बाढ़ पर है, कनार धमाधम गिर रहें हैं, पर्वत से धुआँ कुछ अधिक निकलने लगा, दम दम पर पृथ्वी हिल रही है, कुरूप मृत्यु सांमने मुख बाए खड़ी है, खेती बारी सब जल और लावा (Lava) में निमग्न हो रही है, पर तौभी हिलने का नाम

नहीं। संसार चाहे उन्हें नासमझ समझे, पर नहीं, वह तो उनकी परम् प्यारी जन्मभूमि है। किसी पारसी कवि ने बहुत ही ठीक कहा है कि—

> हुब्बुल वतन अज़ मुल्के सुलैमां ख़ुश्तर।
> ख़ारे वतन अज़सुम्बुलो रैहाँ खुश्तर॥
> यूसुफ़ कि व मिस्त्र पादशाही मीकर्द।
> मीगुफ्त गदा बुदने कनाआँ खुश्तर॥

अर्थात् अपनी जन्म-भूमि की प्रीति संसार के राज्य से उत्तम है। जन्म-भूमि के काँटे हँसराज और नाज़बू (सुगन्धा तुलसी) से अच्छे हैं। यूसुफ़ मिस्त्र में साम्राज्य सुख भोगा करता, कहता था कि कनाआं (उसकी जन्म-भूमि) का भिखारी होना उसके लिये इससे अच्छा था।

क्षमा

नरस्याभरणं रूपं रूपस्याभरणं गुणा।
गुणस्याभरणं ज्ञानं ज्ञानस्याभरणं क्षमा ॥

यह लोक ऐसा प्यारा, दर्शनीय, सुखी और सब सम्पत्तियों से युक्त होकर भी स्वच्छन्द न होता, यदि उस करुणानिधान सर्वशक्तिमान जगदीश्वर में निःसीम क्षमा न होती। क्योंकि हम देखते हैं, जब हम बड़े बड़े दुख में पड़ते हैं और आर्त हो कर चिल्लाना शुरू करते हैं, कि हे जगदीश्वर! मेरे कर्म्मों पर तू ध्यान न दे। मैं तो पतितों में पतित, दुष्टों में दुष्ट और नीचों में परम नीच हूँ। तू अपनी साहबी और बड़ाई की ओर देख इस दीन पर कृपा कर। तो सर्वथा यही देखते हैं कि ऐसी आर्त पुकार कभी अन्यथा और व्यर्थ नहीं जाती, वरञ्च तत्क्षण दुःख से विराम मिल जाता है। इस का विशेष प्रमाण आजकल की वर्षा में भी देखने में आता है। हर साल जब वर्षा बहुत पिछड़ जाती तो यह समझ पड़ता और कदाचित् यही ठीक भी है, कि मनुष्यों के दुष्ट कर्म्मों ही का यह फल है; जिससे कदाचित् वरुण और इन्द्र कुपित हो मेघों को यह आज्ञा देते कि वे समुद्र ही में सोते रहें, वा एक ही आध इञ्च पानी बरस जायँ, कि जिससे पृथ्वी का अन्तर्दाह भी न मिटे। परन्तु जब सारा लोक हाथ जोड़ कर, चिल्लाने लगता है, कि हे परमात्मा मेघों को भेज और वर्षा कर, नहीं तो हम सब मर जायंगे, तो देखा जाता है, कि लोक के कर्म्मों पर न दीठ दे यही आज्ञा होती है कि—इतना पानी तो निश्चय बरसाया जाय कि जिसमें ये सब भूखों न मरें। हम इस लोक में बहुत से

आदमी देखते हैं जो कि वस्तुतः ऐसे खल नीच, और दुरात्मा हैं कि वे भोजन और आच्छादन पाने के योग्य नहीं हैं, पर तब भी जब वे आर्त हो कर चिल्लाते और ईश्वर का अनन्यशरण लेते हैं, तो वह उन सब के दुष्ट कर्म्मों पर ध्यान न दे, क्षमा कर, उन्हें सुखी कर देता है। इसी से शास्त्रकारों ने सत्यतः परमात्मा को दयासागर, करुणावरुणालय कृपानिधान, विश्वम्भर कहा है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि क्षमा का अंश उस परमात्मा में अपरिमित न होता तो काशी, लखनऊ, कलकत्ता, बम्बई, लन्डन, न्यूयार्क और पेरिस इत्यादि कैसे बसे रह जाते।

यद्यपि लोग कहते हैं कि सब लोक उसी के हैं और सब का पालन करना उसे निश्चय है, जैसे हम अपने नालायक लड़के को भी भोजन देते हैं। परन्तु क्षमा तो उसी पर की जाती है जो आर्त हो उसके अनन्य शरण जाता और अपने कुटिल कर्म्मों पर क्षमा मांगता है। प्रकृति ने इसका कुछ ऐसा ही प्रबन्ध भी किया है कि वे ही लोग क्षमा प्रार्थी होते, जो उसकी आंखों में क्षमा के योग्य होते हैं। नहीं तो मेकवथ के मूँ से ऐसा शेक्सपियर न कहलाता, जैसा कि प्रायः देखने में भी आता है। यथा—मैं पाप में इतना बढ़ गया हूँ, कि पिछड़ना उतना ही मुशकिल है जितना कि आगे बढ़ना। इससे ऐसा मनुष्य जो पाप करते करते अपनी आत्मा को इतना मलिन कर देता है कि वह समझता है कि अब मेरी जिह्वा उसका स्मरण करने वा मन उसकी किसी मूर्ति का ध्यान धरने, वा शरीर किसी तप-करने के योग्य नहीं रहा और यह समझ वह दूने वेग से दुष्ट कर्म्मों में रत होता है।

भगवान् की अनिर्वचनीय क्षमा को देखिये कि जब क्रोधी भृगु ने उनके वक्षस्थल में पादाघात किया, तो उन्होंने पूछा कि

"आपके चरण में निश्चय चोट लगी होगी, क्योंकि कहां मेरा बज्र सा वक्षस्थल और कहां ब्राह्मण का मृदुल चरण"। देखिये महात्मा ईसा क्षमा के स्वरूप हुए इसी से आज दिन सारा यूरप उनके चरण पर गिरता और कहता है कि वे ईश्वर के एक ही पुत्र थे।

कहते हैं कि क्षमा का उदाहरण पृथ्वी से लेना चाहिये जिसके अन्तःकरण को हम नित्य ही विदीर्ण करते रहते और वह हम सब को इसके बदले में अन्न, फल, फूल इत्यादि देती है। योंही आम और फलवाले वृक्षों के विषय में भी कहा गया है, कि उन्हें यद्यपि हम ढेलों से मारते हैं तब भी वे हमें मीठा फल देते और सिखाते हैं कि जब हम सा तुम भी आचरण करोगे तो यद्यपि यह लोक कुछ काल के लिये कदाचित् तुम्हें सताले, पर वह फिर तुम्हें हमी सा स्नेह सलिल से सींचेगा और तुम्हारी सन्तानों को हमारी ही सन्तानों के सदृश प्यार करेगा।

जब वसिष्ट के कई लड़कों को विश्वामित्र ने हनन कर डाला और उनके अंतिम लड़के को मारने के लिये स्वयं घात लगाये खड़े थे, उस समय दैवात् अरुन्धती ने विश्वामित्र से पूछा, कि इस समय किस का तप इस उज्ज्वल पूर्ण चन्द्रमा के सरीखा है। तो वशिष्ट ने उत्तर दिया कि ऐसा तो विश्वामित्र ही का तप है, जिस निष्पक्ष वचन को सुन विश्वामित्र वसिष्ट के चरणों पर जा गिरे और अपने अपराध की क्षमा मांगी। योंही एक पुरुष ने किसी का बड़ा उपकार किया, किन्तु उसने उसका कुछ भी उत्तर न दिया। दैववशात् एकदिन उस अपकारी का लड़का उस क्षमा शील पुरुष के यहां अकेला भटकता भटकता पहुँचा, तो उन्हों ने उसका खूब आतिथ्य

सत्कार किया और अपने आदमियों के साथ उसके पुत्र को भेजा क्योंकि मार्ग अति दुर्गम और भयङ्कर था। कहते हैं कि जब बाप ने लड़के को पाया तो मारे आनन्द के वाष्प विमोचन करने लगा और जब स्वस्थ होने पर यह भी सुना कि उनके वैरी के सब अनुयायी उसके लड़के को घर लाये हैं, तो कहने लगा कि वह हमारे लड़के के साथ यदि अपकार ही करता तो अच्छा होता, क्योंकि अब तो हम अपने अनेक अपकारों की यदि उससे क्षमा मांगें तभी हमारा कल्याण होगा।

अपने यहां वा और कहीं कैसी ही कलहाग्नि क्यों न उठी हो, परन्तु वारिद तुल्य क्षमाशील पुरुषों के देख पड़ते ही वह शान्त हो जाती है, वा ऐसा कहें, कि क्षमाशील पुरुष जल है जिसमें क्रोध रूपी अग्नि का देख पड़ना प्रायः दुर्लभ होता है। क्षमाशील पुरुष क्षमा को ऐसे सिद्धि करता है जैसे लोग आगे सुलेमानी मन्त्र को सिद्ध किया करते थे, जिससे राक्षस भाग जाते थे। सारांश यदि क्षमा अभ्यास किया जाय तो क्रोध वैर वा कलह आदि राक्षस उत्पन्न होते ही नाश हो जायँ। क्षमा शील पुरुष सदैव पुष्ट और सुखी रहता है। उसी तरह यह भी देखा गया है कि ऐसे पुरुषों का सम्मान प्रेम और आदर इस लोक में ऐसा होता है जैसा औरों को दुर्लभ है। जिस ओर वे निकलते हैं उनका सन्मान स्वागत होता, उनसे कुशल प्रश्न पूंछा जाता है। लड़कों तक से भी वे पूजे जाते हैं और सबी चाहता है कि उनसे कुछ वास्ता रक्खें, उनका कुछ भला कर उनकी आंखों में अच्छे देख पड़ें। यहां तक कि दुष्ट लोग भी उनसे दुर्जनता छोड़ कर सुजनता का आचरण करते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि क्षमा बहुत से समय में हानिकारक भी होती है, जैसे लड़के के बदमाशी करने पर, न दण्ड देना वा

क़िसी के अवगुण को जिसके कारण उसका नाश होने वाला हो, छिपाना वा उसे देख कर क्षमा कर जाना और दोषी को उसका दण्ड न दिलवाना। यह सब जानता और समझता है कि कौन से समय और स्थान पर क्षमा बुरी है, अतः उन स्थानों पर हम तो यही कहेंगे कि अपराधी वा अपकारी को दण्ड देना वा उचित विधान उसके लिये कर देना ही उचित है।

क्षमा शील पुरुष इस लोक में निर्भय विचरते हैं। अखण्डित निद्रा के महासुख के भागी होते हैं, उसी तरह क्रोधी और विरोधी पुरुष सदा सशंकित और दुश्मनो से अपने को घिरा देखते हैं। एक क्षमा शून्य बड़े आदमी क्रोध स्वरूप और "शक्तिःपरेषां परिपीड़नाय" के नित्य पाठी थे। इससे उनकी आत्मा की अति हीन और दीन अवस्था हो गई थी। वह जहाँ जाते उन्हें यही प्रतीत होता कि उनके बैरी गोली भरे सब तरफ़ उद्यत खड़े हैं। किम्बदन्ती यह भी कहती थी कि जब वे कभी मारे शोक के बाहर शौच को जाते तो आदमियों के घेरे में बैठते थे। ऐसे आदमी यदि पहरों से सुरक्षित भी रहें तौभी उन्हें अरक्षित ही सा बोध होता है। सोते हैं पर यही जान पड़ता है कि उनका शत्रु उनके छाती पर कटार लिए बदले का प्यासा उपस्थित है। इससे वे रात्रि भर अक्सर मनीमन झीखते जागते रह जाते। इससे यह निश्चय हुआ कि यदि हम किसी पर क्षमा करते हैं और अपकार के लिए कटिबद्ध नहीं होते और न उसके पीछे मर मिटने को तैयार होते तो कुछ अपना भला ही करते हैं। बल्कि ऐसा कहें कि क्षमा करना मानों झगड़ा तूफ़ान, कलहाग्नि और दुर्जनों की जिह्वा से निकले हुए अनेक आशीविष को अन्तःकरण विदारण करने हारी ज़हरीली बातों को किसी ऐसे देश में फ़ेंकता है, जहाँ वह सदा

के लिए नष्ट हो जाँय और पुनरपि हम लोगों को डराने या दुःखी करने के लिए न सुन पड़े और न उनका कोई बीज ही बच जाय।

इसीसे बहुतों ने क़िस्से और कहानियों में लिखकर दिखलाया है कि क्षमा शील पुरुष चोर डाकू और गरकटों को भी अच्छे पथ पर आरूढ़ करा देते हैं। एक पादरी साहेब ने किसी डाकू को खाना पीना दिया और रात को अपने घर में सुलाया, पर प्रातःकाल वह नृशंस उनकी यावत् सोने की तश्तरियाँ थी सब लेकर रफूचक्कर हुआ। चोर के पकड़े जाने पर जब पुलिस ने चोर के समक्ष पादरी साहब से पूछा, कि ये तश्तरियाँ आप की हैं? तो उन्होंने कहा कि "थीं तो ये मेरी पर अब ये इन्हीं की हैं, क्यों कि मैंने इनको यह सब दे दीं थी और यदि आप सब इनको इसी अपराध के लिये बाँध रक्खे हैं तो छोड़ दीजिये।" डाकू को छोड़ा कर, बंगले पर ले आए और खाना खिला उसे बिदा किया। कहानी कहती है कि पादरी साहब का व्यवहार वैसा ही रहा, तो वह उनके चरणों पर गिरा और अपने अपराधों की क्षमा मागीं और पूछा कि अब हमें कोई ऐसी राह बतलाइये जिसमें हमारा भला हो। पादरी साहब ने उसे अपने भाई के यहाँ नौकर रखा दिया और कुछ काल पीछे वह एक बड़े भारी पद पर पहुँचा। इसके कारण कई हैं प्रथम तो यह कि क्षमा शील पुरुष अपने दिवस को निर्विघ्न काटता है और निर्दय निरन्तर दुखी और दरिद्र बना रहता है। इससे यदि उसमें कोई अच्छा बीज हुआ तो सतसंगति से निश्चय प्ररोह हो जाता है।

क्षमा सम्पत्ति के न रहने पर देखा गया है कि बड़े से बड़े विद्वान और समझदार भी तुच्छ से तुच्छ मनुष्यों के चिढ़ाने

और गाली प्रदान से उद्विग्न हो अपने शरीर को त्याग करना और आत्म हत्या का सा महा अपराध करना भी समीचीन समझ लेते हैं। यह महा दुःख उन्हें न होता यदि वे समझते कि क्षमा करना समाधि लगाने, भूमि वा अन्नदान देने से, शिवालय तड़ाग बनवाने से, यदि अधिक नहीं है तो कुछ कम भी नहीं है। क्योंकि जब क्रोध रूपी विद्रोही राक्षस अपने द्विगुणित वेग से चढ़ता है तो उसे क्षमा के तीक्ष्ण तीर से छिन्न भिन्न करना कुछ साधारण पराक्रम का काम नहीं है। योंही धैर्य्य और निग्रह आदि में तो बड़े पराक्रम की आवश्यकता है। हम तो ईश्वर से यही प्रार्थना करते हैं कि वह क्षमा के आवेष्ठन से मेरे शरीर को सदैव आवेष्ठित रक्खे, जिसमें क्रोध रूपी ज्येष्ठ की लू मेरे शरीर को छू न सके, वा बदला लेने की कामना रूपी ठगिन मेरे घट में घुस न सके, जिसमें जो कुछ समय इस लोक में बीते भलि भाँति बीते। भगवान् कृष्ण कहते हैं कि क्रोध, लोभ, मोह, तीनों नरक के द्वार हैं इससे यह सिद्ध होता है कि यदि क्रोध नरक का द्वार है, तो क्षमा निश्चय स्वर्ग की खिड़की होगी।

उस विश्वम्भर परमकरुणानिधान भगवान् को भी लोग बहुत सी अनकहनी कहा करते हैं, पर उसकी ख़बर तक भी वहाँ नहीं ली जाती। बहुत पण्डितों ने अपनी विपत्ति की अवस्था में परमेश्वर को लाखों गालियां दीं और कहा कि तू निठुर, निर्दयी, नीःशील है, किन्तु इसके उत्तर में उनके दुःखों का अक्सर नाश होते देखा गया है। सारांश क्षमा तपस्वियों का रूप है, बादशाह और महाराजाओं का आभूषण है, मध्य दर्जे के पुरुषों की पाण्डित्य और विचक्षणता है और ग़रीबों में तो जब यह होती है तो वह परमात्मा के परम प्यारे पुत्रों में समझे जाते हैं।

श्री शीतलगञ्ज की जन्माष्टमी

अतसी कुसमोपमेय कान्तिर्यमुनाकूल कदम्बमूलवर्ती ।
नवगोप वधूविलासशाली वनमाली वितनोतु मङ्गलंवः ॥

पिका हृदय मानसरोवर के एक ही राज-हंस वा उनके हृदय-कमल-कलिका के प्रकाशक एक ही दिवाकर, अथवा उनकी प्रवल भक्ति के प्रत्यक्ष महाफल स्वरूप; गिरि-गोवर्धन को अपने नख पर धारण कर ब्रज को बचा, सहस्राक्ष के सकल परिश्रम को व्यर्थ करने वाले ; भक्ति योग के महारण्य में सुलभ सुपथ को विज्ञ वनचर सा दिखलाने वाले; अपूता पूतना को वक्षस्थल में लगा, उसके प्राण को खींच सुरलोक को भेजने वाले; कुवलया-पीड के प्रवल दाँतों को उखाड़, भीमसेन के प्रकाण्ड शरीर और भीषण मल्ल पराक्रम पर हँसने वाले; गीता वंसी की टेर से सकल शास्त्र तन्त्रियों को लज्जित करने वाले, हमारे मृत्युलोक के वृहस्पति; गोपिका कमल आनन के एक ही प्रशंसक मधुकर, उनके रूप लावण्य की अनेक कथाओं को, सतत वंसी टेर कर, उनके कानों में कहने वाले ; रूप में मन्मथ को लजाने वाले, पराक्रम में कार्तिकेय का छक्का छुड़ाने वाले ; रसासव के नि-रन्तर पान का महोत्सव रच, आनन्दी नारद की मस्ती को भी

भुलाने वाले ; रसिक राज होते हुए भी योगिराज ; रात्रि को सब गोपिकाओं की सेज पर सोते हुए भी घर के बाहर पाँव न निकालने वाले ; संसार की चिन्ताग्रस्त वीथियों में विचरते हुए भी निश्चिन्त, रूप अग्नि में रहते हुए भी जिसके पाँव नहीं जले ; गोपाल होते हुए भी लोकपाल ; आभीर होते हुए भी पण्डित, मधुरिपु होते हुए भी मधुप्रिय; वंसीवाले होते हुए भी वंसी के लगाने वाले नहीं, त्रिभुवन विजयी पर नृपति नहीं; गोपिका रास मण्डल में विचरने वाले, पर नक्षत्र नहीं कृष्ण होते हुए भी कृष्ण चरित्र नहीं, सारथी होते हुए भी सार्थी नहीं, कुब्जा को अकुब्जा करने वाले ; हंसिनी प्यारी राधा के साथ साथ करील के सघन कुञ्जों वा कालिन्दी के कलित कूलों पर कलहंस से विचरने वाले; कालीदह में कूद प्रसुप्त भयावह नाग को जगा, उसे नाथ कर उसके प्रकाण्ड फण पर नाचते, व्रज वीथियों में घूमने वाले, द्रौपदी के चीर को बढ़ा अविनीत दुष्ट दुःशासन के मुख में कालिख लगाने वाले ; श्रीमती यशोदा से तिरस्कृत होकर भी गोपिकाओं के मान को रखने वाले ; यदुवंशियों में विद्रोह अग्नि फैला और कंस को निकंस कर, पृथ्वी देवी के भार को हलका करने वाले ; सुरलोक की अप्सराओं को अपने रूप से लजाने वाली, दामिनी सी दमकती, बरसाने वाली भगवती राधा के साथ सेवा कुञ्ज में विहार करने वाले ; पहिये के चक्र को चक्र सा फेंक, भगवान सहस्त्ररश्मि को छिपा, नीच शिखण्डी का हनन करा, अर्जुन के प्राण और प्रतिज्ञा को रखने वाले, श्रीमती द्रौपदी महाराणी कुन्ती तथा सहृदय पाण्डवों के साथ बनों में विचरने वाले; जरासन्ध का भीमसेन से मल्लयुद्ध करा और उसके जंघों को चिड़वा बलदेवजी से अनेक उलहना पानेवाले, संसार में सहस्त्रों लीलाएँ करते हुए

भी अपने स्वरूप को परोक्ष रखने वाले, दुर्योधन के घर अनेक प्रकार के व्यञ्जनों को त्याग कर भक्त विदुर के घर शाक से सन्तुष्ट होने वाले ; अविद्या जिसके नाम में, वक्रता भाव में, चौर्य्य दधि में, भूल कुब्जा के सम्बन्ध में, क्रौर्य्य और अनीत महाभारत के युद्ध में, सौहार्द और प्रेम रुक्मिणी के विवाह में, धृष्टता गोपिकाओं की अनेक लीलाओं में, दौर्बल्य संगीत और दया में, हमारे जीवन आधार, हमें तमलोक वा माया-महोदधि वा अविद्या दलदल से निकालने वाले, ; हमारी प्रेमसरिता की चढ़ी हुई बाढ़ को अलौकिक इञ्जिनियर के समान भक्ति और विवेक रूपी बाँध को बाँध कल्याण सागर में गिराने वाले ; सर्वलोक प्रिय, साधुओं के परित्राता, दीनों के धन, धर्म्म के रक्षक, गोपाल नन्दन भगवान श्रीकृष्ण हमारे घर सात दिन के लिये विशेष रूप से पधारते हैं। भक्ति भावनाओं से हम यही समझते हैं कि सरकार हमारी सब उपासना और परिचर्य्या तथा अनेक उत्सवों के साक्षी हैं और यदि यह कह दें कि वही सब कार्य्यों का निर्विघ्न निर्वाह करते हैं तो मिथ्या न होगा। कभी कभी हम यह भी समझते कि जब वही मस्नदनशीन है तो जितना उत्सव और हर्ष कीजिये कोई चिन्ता नहीं, क्योंकि प्रेम और उत्सव के ईर्ष्यी विधि भी ऐसे उत्सव में ईर्षा नहीं कर सकते और यदि अहंकारवश ईर्षा भी करते हैं तो सुनते हैं कि उस चक्रधर के समक्ष उनकी चलती भी नहीं।

अस्तु हम लोग जन्माष्टमी की रात्रि को सत्य ही अति अनोखी मानते हैं, क्योंकि आज ही की रात तो वह व्रजचन्द्र, द्वितीया के चन्द्रमा सा उदय हो गया था जिसे कोई जान भी न सका, पर दिव्य आँख वाले—देवताओं ने पुष्प वर्षा कर दुन्दुभी बजाते हुए दिशाओं को हँसाया था। इसी रात को एक बार

भादों की अँधेरी भी वसुदेव को ऊँजेरी लख पड़ी थी। इसी रात को जड़ लौह और काष्ट के किवाड़े भी ऐसे चैतन्य हो गये थे कि आप से आप खुल पड़े, जिससे कि उद्विग्न और भय से त्रस्त वसुदेव को यह जान पड़ा कि वह किसी चैतन्य राशि को गोद में लिए हैं। इसी रात को पहरूए गाढ़ी निद्रा में मग्न हो निर्जीव से हो गये थे। इसी रात को तो कंस अपनी रानी के साथ सोता हुआ यह स्वप्न देख रहा था कि कोई अग्नि सा देदीप्यमान बालक उसकी छाती की पसलियों को तोड़ रहा है और लाख उपाय करने पर भी नहीं छोड़ता। इसी रात को तो श्रीमती यशोदा के घर सारे लोक का सौन्दर्य्य फट पड़ा था। और इसी रात को सुरगण व्रज के सौभाग्य पर मुसकुराये थे। इसी रात को भाद्र पद की बढ़ी हुई कालिन्दी ने हर्ष से बढ़ और घट कर वसुदेव को पार होने दिया था। इसी रात को तो वसुदेव के आगे आगे लोमड़ी शकुन दिखाती और क्षेमकारी संसार का क्षेम और कल्याण की सूचना सुनाती जाती थी। इसी रात को वृद्धा वसुमती भी मारे प्रसन्नता के जवान हो गई थी। इसी रात को प्रेममत्त हो आकाश से दामिनी उतर कर वसुदेव के आगे आगे मशआलची का काम देती थी। इसी रात को सारे नक्षत्रों ने यह जान कर कि स्त्रियाँ चुप हैं, हर्ष से बधाई गाया था। सहस्रों वर्ष की गाई हुई ऐसी महोत्सव की रात को हम सब निज भव्य भावना-कविता और भक्ति यन्त्र की शक्ति के द्वारा पुनरपि बुला लेते हैं और भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के जन्म के महोत्सव को अपने घर करते हैं। इसके अभिमान में हम सब यह भी कहा करते हैं कि देखो उस समय तो देवताओं ने बहुत कुछ उत्सव मनाया था और यद्यपि अनेक कृतघ्न लोग अब उसे भूल भी गए हैं, परन्तु बहुतेरी भारत

की प्रजा अब भी प्रायः इस महोत्सव को बहुत कुछ मना लेती हैं, फिर यह हमारी धूमधाम क्यों विचित्र होने लगी।

अब हम आप लोगों को कविता देवी की कुटी में सम्प्रति स्थित कर, मुरलीधर की अनेक झाँकियों का दर्शन कराते हैं जिसे देख कौन जाने आप कितने प्रसन्न हों।

पहली झाँकी—कदली वन विहार।

संगमरमर की चिक्कणता, रंग और द्युति को भी फीका करने वाले और अप्सराओं की जघनद्युति की महिमा को भुलाने वाले, कदलियों के खम्भों का रचित तो मनोहर मन्दिर है, जिसकी शोभा देख यही जान पड़ता है कि मानो यह शङ्खमर-कतमणि का महल है वा मन्दिरों में तपस्वी वा वनौकस है। ऐसे हमारे मन्दिर में कृष्णाष्टमी को ठाकुर जी पधारते हैं जिसे हम सब यही समझते हैं कि वे ऐसे वनस्पतियों से रचित कुटी में प्रायः सप्रेम पधारते हैं, बनिस्बत कि उन बड़े बड़े उत्तुङ्ग मन्दिरों में जिनमें कि सेठजी राजा वा महाराजा ने सोना और चाँदी पिला दी है, क्योंकि पुराण और कविताओं ने हम लोगों को कुछ ऐसी ही शिक्षा प्रदान की है।

हम मुस्कुरा कर मनहीमन कहते कि जहाँ सामग्री की कमी है वहाँ भावना दूती सारी न्यूनताओं को स्वयम् प्रस्तुत कर लेती है, इससे ठाकुरजी इस प्राकृतिक कृत्रिम मन्दिर से कुछ ऐसे सन्तुष्ट रहते हैं, कि चाँदी, मरमर, ईंट वा प्रस्तर के मन्दिरों का कभी स्वप्न भी नहीं देखते। कुछ ऐसा बचपन ही से विश्वास है और यदि आप भी देखिये तो कदाचित् यही कहियेगा कि यह मन्दिर प्रकृति देवी की उदार दया से बना है इस से यह ईंट और प्रस्तरों के मन्दिरों से रूप और लावण्य में उतना ही अधिक बढ़ा है जितना कि सुन्दरी शकुन्तला,

दाक्षिण्य में नागरिक स्त्रियों से, वा चैतन्य जड़ से वा सरस नीरस मनुष्यों से।

दूसरी झाँकी—लता-वन-विहार।

दूसरे दिन हमारे ठाकुरजी की झाँकी लता वन वीथियों में होती है जब कि उनकी प्यारी पुनीत रम्य कुटी लता तन्तुओं से आवेष्टित रहती और उनके बीच बीच में पुष्प नक्षत्रों से चमकते रहते हैं। इन्हीं लता कुञ्जों में गोपिकायें भगवान की अनुपम शोभा देखती रहतीं और भगवान वनमाली अनेक पुष्पों से सुसज्जित हिंडोले पर झूलते लख पड़ते हैं।

तीसरी झाँकी—गोपिका-वृन्द-विलास।

तीसरे दिन उसी लता कुञ्ज में पत्र पुत्तलिका गोपिका समूह में प्रसन्न हो वंसीधर वंसी टेरते लखाते हैं। रसिक राज भगवान कृष्ण को इस विचित्र अनुपम शोभा को देख एक वृद्ध भक्त मारे प्रसन्नता और उल्लास के नाचने लगे और कहने लगे धन्य परमात्मन्! धन्य परमेश्वर! जो इस जंगल में भी रास महोत्सव का दृश्य दिखला दिया! यह कह सहस्रों प्रणाम कर, धन्यवाद दे ठाकुरजी पर पुष्प वर्षा करने लगे, उनकी इस अटल भक्ति भावना ने समाज पर कुछ ऐसा प्रभाव डाला कि सब लोग सत्य ही रास लीला के महोत्सव का अनुभव करने लगे।

चौथी झाँकी—बसंत-वन-विहार।

चौथे दिन स्वर्ण से भी पीत कर्णिकार पुष्पों से रचित झाँकी मानो ऐन्द्रजालिक महती शक्ति से, पुनरपि गत बसन्त को ठाकुरजी की परिचर्य्या में आह्वान करती सी लखाती है और देखते हैं कि वह हठात् खींचा हुआ सा चला ही आता है।

कदाचित् रति उसे कहती भी हो कि वह उसके संग को न छोड़े, पर वह एक न सुनता और परदेशी सा अपने अश्रुओं को छिपाता हुआ भागता चला आता है।

पाँचवीं झाँकी—संगीत सौरभ।

पाँचवें दिन कुसुमाकर की इस अटल भक्ति को देख हम लोग कुछ ऐसे प्रसन्न और कृतज्ञ हो जाते कि ठाकुर जी को इसी स्वर्ण कुटी में विराजित रहने देते, क्योंकि आश्चर्य तो यह है कि विगत यौवन बसंत, सरकार के संग अब भी प्यारा लगता है। इसी रात को हम सब विन्ध्यगिरि पर विचरने वाली, उसके अनेक गह्वरों को शब्दायमान करने वाली, विन्ध्य प्रकाण्ड हस्ती के मस्तक को संगीत केशर से रंजित करने वाली, मिरज़ापुर की गलियों में चक्कर लगाने वाली आभीरिनी कजली को बुला कर उनकी प्राचीन केलि कथाओं का स्मरण दिलाते हैं।

छठवीं झाँकी—संयुक्त शृङ्गार।

छठ्ठी के दिन जवहिरी गुलाब नवेली चमेली, अप्सरा जूही, निर्गन्ध रूपगर्विता केना, अविद्या और धन मद से विघूर्णित धनी वा रूप लावण्य पर गर्व करने वाली कश्मीरिन वा ककेशियन सुन्दरी सी श्रावणी इत्यादि पुष्प रत्नों को, क्रूर नृपति सा निःशेष अपहरण कर हम विशेष शृङ्गार करते हैं। इससे इस कुसुम समूह के बीच भगवान कृष्ण ऐसे लखाई पड़ते मानो कुसुमाकर इनके पैरों को चूम रहा है। सरकार छठिआए बालक से प्रसूनों पर लेटे हँसते जिनके साथ बालक बना कुसुमाकर भी पुष्पों के मिस हँसा करता। भक्ति देवी कहती हैं कि भगवान कृष्ण भी कैसे भोले भाले हैं कि सुरलोक के सुरगण को छोड़ आज इसी कृत्रिम कुटी में आ

पधारे हैं। यह ठीक है कि प्राण तेज युक्त है इससे वह क्षणैक के लिये जिसे चाहता है उसे आकर्षण कर सकता है। इसी दिन हमारे यहाँ अनेक लीलायें होती हैं; और इस साल तो एक अभिनय भी भगवान के प्रीत्यर्थ रचा गया था जिसे हमारे नूतन अविदित "अनुराग" कवि ने बनाया था। पहिले जब उन्होंने ठाकुरजी के समक्ष खेलने को कहा तो हमने इसे सर्वथा असम्भव और निष्फल प्रयास समझ यही कहा कि नाटक एक ऐसा क्लिष्ट खेल है जो ऐसी जल्दी नहीं खेला जा सकता, क्योंकि थोड़े ही दिन ठाकुरजी की छठी को रह गये थे। पर ठाकुरजी के आधिपत्य में सभी पात्र कुशलता पूर्वक अपने अपने पार्टों को ठीक कर ले जायँगे, यह कह, वह प्रस्तुत हो गये। और अभिनय भी ऐसा हुआ कि न केवल हमी परन्तु जितने जन एकत्रित हुए थे सबी अनुराग की कविता कुसुम पराग से कुछ ऐसे रञ्जित मन और प्रसन्न हुए कि जब वे अपने अपने घर गए तो स्वप्न में भी सारी रात उस अभिनय को देखते रह गए। हमने भी देखा कि उस समय बुड्ढे और जवान, बालक और अबलाओं की आँखें मारे प्रसन्नता के आद्यन्त खुली ही रहीं।

सातवीं झाँकी—मालती निकुञ्ज।

सातवें दिन हम सब लताओं की रानी, मधुकर को अपने प्रेम से कमलिनी के पराग की अलौकिक शय्या के सुख को भी भुलाने वाली, अपने धवल धवलित पुष्पों से काग़ज़ी कबूतर और वकुल के पत्रपुट की धवलिमा को धूसरित करने वाली, कोमलता में शिरीष सी, सच्चरित्रता में सीता सी, सुगन्धि में कल्पवृक्ष सी, तन्तुओं के विस्तार में द्रौपदी के चीर सी, भ्राद्पद के वक्षस्थल पर क्रीड़ा करने वाली मालती के मुकुल

का शृङ्गार करते हैं, क्योंकि आगामि दिवस विशेषतः दधि-कांदव होता है इससे केवल श्वेत ही शृङ्गार होता है जिसमें ठाकुरजी दधि समुद्र में यथेष्ट क्रीड़ा करें।

इस रात को केवल नक़ल ही होने वाली थी, पर ठाकुरजी के शृङ्गार के पश्चात् अनुराग का अनुराग कुछ ऐसा बढ़ा कि आधे घण्टे में उन्होंने एक नाटक का ख़ाका खींचा, कुशल पात्रों की सहायता और नटवर श्रीकृष्ण की कृपा से, उसे खेल डाला। हमारी छोटी दैवी कोरम इस अभिनय को देख कहने लगी कि यह अभिनय तो गत रात्रि वाले से भी अपूर्व हुआ।

इस प्रकार हम सब अपने उस परमात्मा के जन्मदिवस के महोत्सव को मनाते हैं और प्रार्थना करते हैं कि ऐसा ही हमारे घर के प्राणी मात्र आस्तिक बने रह, भागवत् कर्म्म में उद्यत रहें, जिसमें हर साल हम सब उसके जन्म दिन के महोत्सव में योंहो अनेक लीलायें किया करें तथाच शृङ्गार परिचर्य्या और पूजा से उसकी आँखों में कृतज्ञ प्रजा बने रहें।

——:※:——

हमारी मसहरी
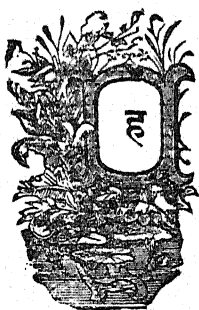
हमारी मसहरी कलियुग को तपोभूमि है, जहाँ मसा और मक्षिका राक्षसियाँ बाहर ही सिर पीटती रह जातीं हैं और हमारी भावनाओं की वृहत् हाट में वा ध्यान के प्रशान्त लोक में कुछ भी बाधा नहीं पहुँचा सकतीं। अथवा यह कृत्रिम हालैण्ड की भूम सी है जिसके बाहर ही मसा-मक्षिका-समूह समुद्र की घनो लहरें इसके आवरण बांध से टकराती हुई विचित्र सुहावने शब्दों को सुनातीं पर मजाल नहीं की उनकी मौजें भीतर प्रवेश पा सकें, वा यह मानव शरीर का द्वितिय पिञ्जर या कवच है वा चञ्चल मन के एकाग्र करने का एक विचित्र योग यत्न है, वा इस अशान्त लोक में एक कृत्रिम शान्त स्थली है, जहाँ भक्त मकरा चारो ओर से जालों को चद्दरें तान, स्वस्थ मन बीच में बैठा मसा मक्षिका-रूपी माया से कहता है कि न तू मेरे जाल में फँस और न मैं तेरे में फँसूँ, वा यह हमारी ज्ञान कोठरी है वा वस्त्र का एक कृत्रिम गृहस्थ योगी का प्रशान्त गह्वर है या किसी राजर्षि के तपोबन की शान्त कुटी है वा किसी प्रतापी क्षिति पाल का राज्य है जहाँ यज्ञों में बाधा नहीं पड़ती या वायु को छान कर पीने का उत्तम विधान है, वा भारत के निकटस्थ नैपाल

का सुरक्षित राज्य है। यह अन्तःकरण में सहस्रों छिद्र रखते हुये भी किसी से द्वेष नहीं रखती, श्वेत होते हुये भी मलिन चरित्र वाली, सहस्रों कर्ण विवर रखते हुये भी बधिर, चैतन्य से योग होते हुये भी जड़ हैं।

इस पवित्र शान्त मसहरी में बैठ कभी तो शौनक के साथ प्रशान्तमन ब्रह्मर्षि अङ्गिरा के पवित्र आश्रम में ब्रह्म विद्या प्राप्त करने को जाते, कभी भरद्वाज गार्ग्य तथा सत्यकामा इत्यादि महर्षियों के परम गूढ़ प्रश्नों के विचित्र और अद्भुत उत्तर भगवान पिप्पलाद से सुन विस्मित होते, कभी केन में उस प्रतापी महा पुरुष की विजय सब देवताओं पर देख. मारे आनन्द और उत्साह के मोछैं ऐंठते और कहते कि उसकी विजय में सब की विजय है क्योंकि इससे यह निश्चय होता है कि जल वायु, अग्नि, मृत्यु, विद्युत तथाच संसार की अनेक शक्तियां उसकी बिना इच्छा के हमारे रोम को भी सञ्चालन नहीं कर सकतीं, कभी ईशावास्यकी गूढ़ श्रुतियों में ऐसे अन्तर्लीन हो जाते कि सारे जगत ही को विस्मृत कर बैठते, कभी तैतरीय के उड़ान में एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में दौड़ते दौड़ते शिथिल पराक्रम हो, अपने को अल्प बुद्धि मान किसी बृहत् श्रुति की छाया में विश्राम लेते, कभी बृहदारण्यक के महारण्य में घूमता भटकता और चिल्लाता कि कोई महर्षि राह बतावे, कभी कौन्तेय के साथ योगिराज कृष्ण से महाभारत के बीच गीता सुनता और अठा- रहों अध्याय समाप्त होने पर उनके चरण कमलों पर गिर सविनय निवेदन करता कि लाखों मन ज्ञान बिना आपकी कृपा कटाक्ष के इस अन्तःकरण रूपी गह्वर का तिमिर नहीं हर सकता, कभी भगवान पतञ्जलि से इस परम चञ्चल स्वच्छन्दचारी मन के निरोध करने का अनेक योग सीखते, और कभी ब्रह्म सूत्र

पढ़ हृदय की अनेक ग्रन्थियों को सुरझाते और कभी प्रबोध चन्द्रोदय में अपने गृह के अनेक बैरियों को पहचानते और भगवान प्रबोध के दर्बार में प्रार्थना करते कि काम क्रोध, लोभ इत्यादि प्रबल डाकुओं पर संयम नियम इत्यादि विवेकी पुलिस कर्म्मचारियों को इन्हें बाँधने के लिये नियुक्त करें, क्योंकि इन दुराचारियों के रहते ज्ञान की हाट कदाचित् नहीं लग सकती, कभी भगवान कपिल के आश्रम में पहुँच प्रकृति और पुरुष के सूक्ष्म भेद को विचारते, कभी यूरप के दुराचार पर दुखी और दीन हो, उदास मन पैगम्बर ईसा से यूरप निवासियों के क्रूर कर्म्म और दुराचारों की कथा सुनते जिसमें वह कहते कि हम क्या चाहते थे और ये सब क्या हो गये ? कभी ग्रीस का एक ही ज्ञानी छोटा क़द और चौड़ी नाक वाला सुकरातस मिलता और कहता कि सारे संसार भर की विद्या और ज्ञान, अपने स्वरूप के सम्यक ज्ञान विना सर्वथा व्यर्थ है, कभी अफ़लातून से उक्त महात्मा की अनेक प्रशंसा सुनते और उनके गूढ़ाशयों की वृहत् झील में डुब्बी लगाते, कभी पाताल लोक (अमेरिका) के ज्ञानी इमर्सन से साक्षात्कार होता तो कहता कि अविद्या अन्धकार से निरे अन्धे यूरप में तो आप ही एक आँख वाले मिले, जिसे सुन वे बद्धाञ्जलि हो कहते कि यह सब आप ही के शास्त्रों का प्रभाव है। यह सुन मैं गद्गद् हो उन्हें गले से लगा लेता और कहता कि तभी तो आप यूरप में ऐसे अविदित हैं। कभी सुरत योग के तीव्र अश्व पर आरूढ़ हो भक्ति का चाबुक लगाते, चन्द्रमा और सूर्य्य को पीछे छोड़ते, उस निर्मल शुभ्र चैतन्य धाम को पहुँचते जो सब की उत्पत्ति भूमि है, कभी घबड़ाते-मन रूपी-अश्व को ज्ञान रश्मि लगा संयम का कावा देता और कहता कि भला तेरी भी चञ्चलता किसी प्रकार दूर

होगी ? काम क्रोध लोभ इत्यादि नरक ले जाने वाले चाण्डालों से तेरी प्रीति कैसे छूटेगी ? इस निर्मल आनन्द स्वरूप आत्मा के दिव्य गृह को छोड़ तू कैसे अन्यत्र रम सकता है ? इस क्षणिक भ्रान्तिमय सांसारिक सुख का उपभोग कर तूने कितनी वराटिका उपलब्ध की, यदि उसके पीछे अनेक दुर्गति नहीं भोगी है ? क्या तू नहीं समझता कि अहर्निश श्वानवत हर विषय गृह में भरमने से सिवा लात खाने के और क्या परिणाम सम्भव है ? देवगणों को छोड़ तू राक्षसों के साथ सहवास कर भला कैसे सुखी और शान्त हो सकता है ? इसपर वह लज्जित हो कहता, कि स्वभाव का परिवर्तन धीरे धीरे सम्भव है, क्योंकि जो स्वच्छन्द वृषभ सा अहर्निश विषय-क्षेत्र में चरता था वह ज्ञान के दुर्बल कच्चे सूत से एकाएक कैसे बाँधा जा सकता है ; कभी ज्ञानी कागभशुण्ड को बुलाते कि वे सप्रेम भगवान् रामचन्द्रजी की कथा सुनावे, जिसमें कि वह मोह जिसने कि नारद का स्वरूप मरकट कर दिया, और मयङ्क को सदा के लिये लाञ्छित बना, नित्य घटने बढ़ने के महादुःख का भागी किया और भगवान् इन्द्र के कमल से शरीर को अनेक योनि चिह्नों से ऐसा कुरूप और कुत्सित कर डाला कि जिसे देख सब देवताओं ने खिल्लियाँ उड़ाईं, जिसने गरुड़ को प्राकृतिक पक्षी बना, काक से नीच के समक्ष भी विनीत भाव से ज्ञान भिक्षा का प्रार्थी बनाया, मेरे हृदय से सदा के लिये दूर हो जाय ; कभी गीत गोविन्द की अष्टपदी में भगवान कृष्ण की मुरली के सरस तान को अद्यावधि ग्रामोफ़ोन सा यन्त्रीकृत देख श्री जयदेवजी को सहस्रों आशीर्वाद देता, कभी भक्ति सलिल से सम्पन्न हृदय भक्तों के मौलि मुकुट सूर से ज्ञान की प्रिय निन्दा सुनते और मनहीमन हँसते ; और कभी कह बैठते कि ज्ञानी ऊधो का ज्ञान

गोपिकाओं के समक्ष ऐसा हवा न हो जाता यदि वे जानते होते कि भक्ति ज्ञान की उत्कृष्टावस्था है, और कौन जाने कि भगवान कृष्ण ने उन्हें यही सीखने के हेतु वहाँ भेजा हो, कभी लम्बी सफ़ेद दाढ़ी वाला ज्ञानी मग्गह का जुलाहा से, सारे पुराणों की खिल्लियां उड़ाते मिलता, कभी भगवान ॐकार के सहस्रों तीर, भक्ति-धनुष पर रख उपासना-विष में बुझा, माया के सहस्रों पदातिओं पर अनवरत शर वर्षा करते हुए देखते, कि तब भी वे रक्त-बीज राक्षस सा बढ़ते ही चले जाते हैं, कभी असंगशस्त्र से अन्तःकरण-वाटिका से विषय भावनाओं के वृक्षों को समूल उच्छेदन कर, संयम और नियम की वृहत् खाइँखन, विवेक वैराग्य के अमृत फल वाले वृक्ष आरोपण कर, जप जल से सींचते, कभी प्राण दोलना पर इस चञ्चल मन बालक को सुलाते, कभी जब समझता कि इतने दिन टेरते हो गये पर सरकार ने एक दिन भी दर्शन न दिया, तो अन्तःकरण में अग्नि भभक उठती और मैं आकाश को अपनी सीरी उसासों से भर देता ; कभी यह ज्ञान कि वे सब ठौर वर्तमान हैं, सहस्रों मनमानी बातें करते करते अपने को विस्मृत कर जाता, कभी उनको सहस्रों नाम से पुकारता। निदान इसी भाँति इस छोटी सी मसहरी में अनेक भावनाओं की हाट लगती और उजड़ती।

किसी विपिन के मध्य में आखेट में भटकते हुए एक महाराज से किसी महात्मा से सम्मेलन हुआ। इनके आतिथ्य पर प्रसन्न हो राजा ने महात्मा से कहा कि कृपा कर आप मुझसे कुछ मांगिए, हठ करने पर महात्मा ने कहा कि आप कृपा कर इस जङ्गल से मसा और मक्षिकाओं को सदा के लिये बाहर निकाल दीजिये ; इसपर राजा हँस कर कहने लगा कि यह मेरे सामर्थ्य

के परे है, कोई दूसरी माँग माँगिये जो मैं दे सकूँ। उन्होंने दूसरी माँग यह माँगी कि आप यहाँ से शीघ्र चले जाइये। यदि इस नृपति को मसहरी मंत्र याद होता तो वह ऐसा मुँफट न लौटता। ऐसा ही एक धनी ने किसी डाक्टर से मसा और मक्षिका से पीड़ित हो प्रतीकार पूछा। विचक्षण डाक्टर ने अपनी उच्चातिउच्च फ़ीस को धीरे से वसूल कर अपने पाकेट में रख ली, तब धनी के कानों में मसहरी मंत्र फूँक दिया, जिसे सुन उक्त धनी कुछ काल पर्य्यन्त विमुग्धावस्था को प्राप्त हो गया।

मसहरी सांसारिक जनों को छिद्रमय निज शरीर से यह दृष्टान्त दिखाती है कि यदि वे भी अपने हृदय को चोरघर न बना रक्खेंगे तो उनमें भी मसा मक्षिका सी माया न प्रवेश पा सकेगी, और यद्यपि यह जड़ और अशक्त है पर तब भी निज शक्ति के अनुसार कार्य्य करती हुई लोगों को कर्म का प्राधान्य दिखलाती है।

हमारी दिनचर्य्या

स कल लोक को तुल्य निवास देने वाली, बादशाह वा योगी, धनी वा दरिद्र, दुःखी वा सुखी, स्वच्छन्द वा पराधीन सभी को अपने रूप को विस्मृत कराने वाली, प्रलय के द्वितीय दृश्य सा दिखाने वाली, उस सर्व साक्षी, सर्व चेता, केवल निर्गुण स्वरूप आत्मा के वैभव को प्रगट करनेवाली, चिन्ता पूरित मनुष्य से दूर भागनेवाली, महीपतियों से क्रीड़ा करने वाली, कृषकों तथा मज़दूरों को गले से लिपटा कर सोने वाली, आंख उझलने पर प्रेमियों के पलक रूपी गृह को त्याग अनत बसनेवाली, व्याधि पीड़ित मनुष्यों को दूर ही से खड़ी ललचानेवाली, निद्रा का हम उस समय त्याग करते हैं जिसे ऊषा वा सतयुग का समय वा ब्राह्म मूहूर्त कहते हैं। इसी समय उस परम शुभ्र निर्मल, चैतन्य धाम का कपाट खुला रहता है, और मुसलमान कहते हैं कि इसी वक्त खुदा मियां अमन का सदावर्त बांटने को बैठते हैं। यह सच है कि जैसे प्रथम संस्कार और प्रथम समागम मनुष्य को आजन्म नहीं भूलते, वैसे ही यदि इस काल में ईश्वर का ध्यान कीजिये तो वह सुख, जिसमें कि इतर माया प्रयच्छिन्न सुखों

का तिरस्कार कर मनुष्य अपनी आत्मा में स्वस्थ भाव से बैठता है, दिन भर याद रहेगा।

जब भुजङ्गी ठाकुर जी के नाम को बारबार जपती और अप्सरा प्राची से कहती कि तुम अपने अखिल शृङ्गार से सुसज्जित हो मुस्कुराओ क्योंकि तुम्हारे प्राणप्रिय प्रभाकर पश्चिम समुद्र का वाणिज्य कर, अब कुछ काल के लिये तुम्हारे अंक में विश्राम लेंगे। अथवा जगत जनों से यह कहती कि यदि हमारी तरह तुम भी नामरूपी-अमृत का सतत पान करोगे तो जैसे मैं प्रबल बाज़ और शिकराओं को चोंच से मार अपने सिवाने से बाहर निकाल देती हूँ, वैसे ही तुम भी मृत्युरूपी संशय विकार को अन्तःकरण से बाहर निकाल सकोगे; वा यह कहती कि जप-यज्ञ तो एक प्रकार का कृत्रिम समीर है जो श्रद्धा-अग्नि को जगाता है और नाम ही केवल इस कलियुग में भवसागर का महासेतु है; वा वैषयिकों से कहती कि अब अपनी प्यारी के वक्षस्थल-स्वर्ग को छोड़ घर लौटो नहीं तो लज्जा के घेतलों का स्वाद चखोगे, जिसे सुन कर अभिसारिकाएँ एकाएक विछोहकारी ज्वाला-नल-समुद्र-सा अपर-दिवसका ध्यान आते ही काँपने लगती; स्वकीयाओं से कहती कि वे अब अपने प्राण प्रिय पति की सेज को छोड़ गृह के अनेक कर्म्मों को सम्हाल सुगृहिणी के प्रिय विशेषण की भाजन हों, और व्याधि पीड़ित मनुष्यों को तो विधि के वैद्य सी मानो उपदेश देती।

ऐसे समय मैं प्राची दिशा की अलौकिक शोभा को निरखता प्रायः अपने तख्त पर बैठा सराहा करता हूँ। यह जो अरुण बादलों से घिरी स्वर्ण की नदी सी प्राची में दक्षिण से उत्तर को इस समय प्रवाहित सी हो रही है जान पड़ती है कि ईर्षा

सूर्य्य ने भागीरथी के अद्वितीय अहंकार को नष्ट करने के लिये यह रचना की है। अथवा युधिष्ठिर से भी किसी अधिक धर्म्मात्मा ने अपने तपोवल से किसी काञ्चन नगर को उद्धूय-मान कर स्वर्ग में जा बसाया है वा पूर्व-आकाश-समुद्र के वरुण का यह सत्यतः स्वर्ण का प्रकाण्ड स्टीमर है वा सूर्य्य लोक की आकाश गङ्गा है या भगवान सूर्य्य के भेजे हुए ये विजयी पदाती हैं जो समूह बद्ध हो अन्धकार को धीरे धीरे छिन्न भिन्न करते हुए अरुण शिखाओं की तुरही को सुन, वेग से आगे बढ़ रहे हैं और विचारा अन्धकार चारो ओर छिपता भागता, काकों की कायँ कायँ के मिस प्राण भिक्षा मांग रहा है, जिसे सुन दयालु सूर्य्य, नाश करने के बदले उसे पहाड़ों के गहिरे खोहों और समुद्र के अन्तःकरण में रहने की आज्ञा देते। इस दयामयन्याय को देख सारे पक्षीगण आर्द्र हृदय हो जय जय उचारने लगते जिसको सुन भगवान भास्कर मारे प्रसन्नता के अरुण हो जाते।

ज्योंही वैश्वानर विश्वरूप सहस्र-रश्मिवाले प्रजा के प्रति पालक सूर्य्य भगवान ने अपने अमल शुभ्र-आनन को बाहर निकाला, त्योंही सब महर्षियों, नैष्ठिक ब्रह्मचारियों तथा ब्राह्मणों ने अनेक श्रुतियों को पढ़, जगत् के प्राण सूर्य्य को श्रद्धा पूर्वक अर्घ्य दिया और जब से अंगरेज़ी विद्या का कलुषित अंश हृदय से दूर हो गया है तब से मैं भी नियत काल से प्यारे भगवान सहस्र रश्मि को अर्घ्य देने, उपस्थान और प्रणाम करने लगा हूँ। इस प्रकार जब मुझे अपने दैवी कर्म्मों से छुट्टी मिलती तो कभी तो जंगलों में अलक्ष्य विचरता और वहीं विहंगावालियों की अनेक संगीत सुनता, आत्मा में स्वस्थ आनन्द पूर्वक घण्टों बैठा रह जाता और पत्तों के पतन से मनुष्य के आगमन की शंका

कर, कभी कभी आँखें भी खोल देता क्योंकि ऐसे समय में जी नहीं चाहता कि अपवित्र शंकामय आँखों से देखा जाऊँ। सामा, दहिंगल और दामा के मधुर राग को सुन, देखता कि ईर्षी महोख महाशय भीमसेन सा मारे प्रसन्नता के अपनी लम्बी पूँछ को हिला हिला कर, गाने लगते और सब अच्छे गाने वाले इस दुष्ट विवादी सुर को सुन मौनावलम्बन कर लेते जिस बेलुत्फ़ी को देख विचक्षण शुक हँस कर कहने लगता कि भ्राता महोख ! तुम्हारी संगीत को सुन तो हमें भी गाने की इच्छा होती है और सत्यतः विधि को उलहना देने में अब लज्जा लगती है क्योंकि तुमसे तो उसने हमारा ही स्वर अच्छा बनाया, जिसे सुन कौतुक-प्रिय कोइल कुहू कुहू कर उसे चिढ़ाने लगती। इस दिल्लगी को देख टिटिहरी खिलखिला कर हँस पड़ती और इस प्रकार अपमानित हो महोख मारे लज्जा और व्रीड़ा के कानन के किसी गूढ़ अन्तर में जा छिपता। वहाँ किलँहने उसे आश्वासन देते हुये कहते कि मित्र महोख ! तुम क्यों ऐसे उदास हो गये हो ? चलो, हम अभी एक तान में सब को चुप कर देते हैं और यह कह वे बंगालीभाशाओं से आपस में कायँ कायँ करने लगते और सब चिड़ियायें यह कुचोद्य सुन विविध दिशा में प्राण पूजा के अर्थ प्रस्थान कर जातीं।

कभी उद्यानों में टहलते, जहाँ कि मरकत मणि सम हरित दूर्वा से सम्पन्न सम धरातल भूमि ओस से ऐसी क्लिन्न लख पड़ती मानो अप्सराओं के रात्रि के महफ़िल की चद्दर बिछ रही है जिसे अद्यापि सूर्य्य के किरण-फ़र्राश ने झाड़ू दे नहीं हटाया, वा यह कहें कि इन ऊँचे हिम शृङ्ग सदृश वृक्षों से यह निर्मल गंगा की धवल धारा पृथ्वी तल पर गिरी है।

जब भगवान भास्कर की सहस्रों किरणें इस अपूर्व

विस्तृत जलकण-राशि पर गिरतीं तो ऐसा अनुमान होता कि इन्द्रदेव को विस्मित करने के अर्थ देवी बसुमति ने अपने वक्ष-स्थल पर इन्द्र धनुष धारण किया है या प्रकृति ताजमहल की दीवार दिखा रही है और कहती है कि यद्यपि चोरों ने उसके दीवार के जटितरत्नों को अपहरण कर लिया तोभी आप इस ठौर उसका प्रतिरूप देख सकते हैं यदि आप आँख वाले हैं। इस तौर पर देखते दिखाते गुलाब बाड़ी में जो पहुँचे तो देखते हैं कि सबके सब अपने सौन्दर्य्य रूपी उपाधन के सहित, पुष्प कोष में ओस जलाञ्जी लिये सूर्य्य को देने के अर्थ खड़े हैं, या यह कहें कि सुन्दरियों के रूप की यहाँ प्रशंसनीय प्रदर्शनी है, क्योंकि यदि मर्सालिन भिसों सी मोहती तो पालमिरल प्रशस्त प्रौढ़ पंजाबिन या प्रकाण्ड मोग़लानी वा मोटी गोरीचिट्टी स्थूल काय बड़ी आँखवाली बंगालिन सी, तो बम्बई गुलाब कशमी-रिन सा लख पड़ता और इन सुर्ख़ मख़मली गुलाबों की उत्पति तो ताम्बूल खाये हुई मुस्कुराती सुन्दरियों से जान पड़ता है क्योंकि कवि ज्योतिषी यही बताते हैं।

अङ्गरेज़ी फूलों की पंक्तियाँ तो किसी सम्पन्न नगर के जवहिरियों की वीथी सी है। क्योंकि फ़्लाक्स यदि लाल की ढेर लगाये हैं तो लार्स्कस्पर ने नीलम की खानि ही खोल दी है जिसे देख पनृरहिनम ने जवाहिर की दुकान लगा दी और पेनज़ी तो इन्द्र सा सहस्त्रों चक्षु कर इन सबों की शोभा देख रहा है। इस प्रकार अनेक कबितामयी भावनाओं से सम्पन्न उद्यान के किसी कोने में चुपचाप इनकी शोभा को निरखते बैठे रहते, और देखते हैं कि हमी इन पुष्पों के प्रेमी नहीं, वरञ्च पक्षी गण हम लोगों से भी कहीं बढ़े चढ़े इनके रूप के प्रेमी हैं। क्योंकि देखिये हर एक दस वा पन्द्रह पन्द्रह

मिनट के पश्चात् बुलबुल, दहियर, सामा और पिरोला इत्यादि का झुंड आता जाता देख पड़ता, जो अपने कौतुक भरे नेत्रों से इनके रूप सम्पत्ति को भली भाँति देखते और कुछ न कुछ उनके रूप की प्रशंसा में सुहावने संगीत गाते, जिसे सुन सारा पुष्प समाज अपने इस अत्यन्त अल्प और अचिर जीवन को भी सफल मानता। भ्रमरों को देखिये तो वे पहिले वैषयिकों से प्रसूनों के रूप की प्रशंसा करेंगे और यदि ईर्षी नायक वायू ने उन्हें निवारण किया तो वे हठात् उनके अन्तःकरण में प्रवेश कर, सारे रस को चूस, उसके हृदय को सन्तप्त करने के लिये सौत से दूसरे प्रसून पर जा बैठते हैं। इस व्यभिचारमयी प्रीति को देख, गन्धहीन पुष्प जिनमें भ्रमर अपना नेह नहीं रखता, अपने हिलने मिस कहते कि हम ऐसे प्रेमियों से पत्र-चपेटिका से बातें करते हैं, क्योंकि ऐसे प्रेमियों से तो कुमारी ही रहना भला है। कभी यदि मुझे समय मिलता तो पहाड़ों के शृङ्गों पर प्रिय प्राची के रूप सराहने और उसकी प्रातः कालीन शोभा देखने के अर्थ चले जाते, जहाँ से देखते कि क्षण क्षण में अन्धकार समुद्र से पृथ्वी ऐसी निकली चली आ रही है जैसी आदि में एकाएक सर्व शक्तिमान जगदीश्वर की कृपा से यह रची गई थी, जिस अपूर्व शोभा को देख सुनते हैं कि बहुत से दुष्ट स्वर्गीय निवासी, इसके नाश करने के हेतु, स्वर्ग से अपना पतन समीचीन समझ, इसके निवासियों को निरन्तर दुष्ट मार्ग में प्रवृत करने को घूमा करते हैं। या यह कहें कि सूर्य्य-किरण-रूपी महावराह, डूबी हुई इस पृथ्वी का अन्धकार मय समुद्र से उद्धार कर रहा है, या ऐसा समझें कि वसुमति देवी का आनन जो अन्धकार घूंघट से ढपा था, सूर्य्य दुलहा अपने हाथों से हर क्षण में खोल

रहा है ; वा यह कहें कि राक्षस सा लुटेरू अन्धकार जो हम लोगों की दृष्टि रूपी महा सम्पत्ति को हठात् हर ले गया था, प्राणियों के प्राण महीपति सूर्य्य ने उदय होते ही सब, चोरों से छीन छीन कर जिसका जो था, उसे दे दिया। योंहीं देखते दिखाते किसी प्रपात के निकट एक प्रशस्त शिला पर बैठ अपने भागवत कर्म्म को कर, झरनाओं की सैर करता। कहीं तो झरनें की चिल्लाहट सुन समझता कि यह पागल सा है जिसे सारे तीर्थस्थ वृक्ष प्राणी भागने से अवरोध करते हैं और यह देख वह और भी क्रोधित हो आगे बढ़ने की चेष्टा कर रहा है ; कहीं ऋषि कुमारी सदृश बन बेलरियों के बीच घूम घुमैया खेलता, कहीं जा बाग्मी पादरी सा अपने तटस्थ वृक्ष महाशयों को ऊँचे स्वर से पवित्र भगवान भूतनाथ के प्यारे हर हर शब्द का उत्कृष्ट आदेश करता, कहीं निकटवर्ती फूली लताओं से रसिकों सा आँखें लड़ाता, खड़ा रह जाता ; कहीं झगड़ालू लुगाइओं सा ऐसा झरझर शब्द कर झगड़ा मचाता कि जितने उसके तटस्थ वृक्ष हैं वे अपने हस्त पल्लवों से चुपचाप बुद्धिमान मनुष्य सा मानों कहते कि तू कृपा कर अपनी राह ले ; कहीं चिकने चट्टानों पर घुड़दौड़ की दौड़ लगाता ; कहीं मध्य में जंगली जामुन आदी वृक्षों के उपजने से सहस्रधा हो ऐसा चिल्लाता कि मानों अपना मार्ग भूल गया है, और चौकन्ना हो चारो ओर घूमता और चिल्लाता, मानो तटस्थ वृक्षों से मार्ग पूछ रहा है, कहीं ऐसा घर घर शब्द करता जैसे किसी राक्षस महीपति के गृह विवाह हो और सैकड़ों चुड़इल और डाइनें बेगार में चना, मटर आदी अन्न दल रही हो ; कहीं ऐसा साँय साँय शब्द करता मानों जिन्नातों का मेला है, जहाँ सैकड़ों हलवाई छुन्नछुन पूरियां छान रहे हैं। इस प्रकार देखते दिखाते उस ठौर पर जा पहुँ-

चता जहाँ से वह सदा के लिये अपने पिता पहाड़ को छोड़, मारे शोक के चिल्लाता हुआ, पृथ्वी तल पर बेहोश गिरता है, जैसे कोई महीपति इस लोक में बड़ी ऊँची पदवी और कीर्ति को प्राप्त कर, अत्यन्त लोभ और असंतोष के कारण विधि के विधान से अधः पातित हुआ हो और एकाएक उसकी आँखें विपत्ति विद्या से खोल दी गई हों। क्योंकि अब देखिये, फेन पुञ्ज से धवलित इसका अन्तःकरण कैसा शुद्ध और शान्त हो गया है, या यह कहें कि यह झरना, पहाड़ संसार के झंझटों से वितृष्ण हो अब अलग भागा चला जा रहा है। इस प्रकार कवितामयी भावना-सम्पति से सम्पन्न हो गृह को लौटते और इस वैश्वानर रूपी अग्नि को रूखी सूखी आहुति दे कुछ काल के लिए निद्रा देवी को आह्वान करते हैं।

जब सन्ध्या पक्षी बक़ौल टोमसन के अपनी चोंच को बढ़ाती चली आती और हर एक क्षण में सैकड़ों दृश्य अपने उदर में गटकना आरम्भ करती है और जब सारे दिवस की यात्रा से थकित श्रान्त पूजनीय भगवान सहस्त्ररश्मि शयन के हेतु पश्चिम समुद्र को प्रस्थान करते और मातरिश्वा भृत्य सा धीरे धीरे व्यजन करता और सब पक्षीगण उनके सुलाने के लिये अनेक संगीत गाते हैं, मैं भी ऐसे समय में सन्ध्या की शोभा निरखने के हेतु वर्डसवर्थ सा पश्चिम देवी से आँख लड़ाता, सकल विश्व को विस्मृत करता हुआ, उस दिशा को प्रस्थान करता हूँ। सूर्य्यस्त के पश्चात् पश्चिम दिशा कुछ ऐसी अपूर्व शोभा को धारण करती मानों वह रात्रि देवी की विजय लक्ष्मी है, या भगवान सूर्य्य के भगे हुए किरिण पदातिगण अन्धकार वैरी से वन्दी कृत हैं, जिस दुख को देख पक्षी हाहाकार शब्द मचा रहे हैं, और तपस्वी ब्राह्मण इन तृषित पदातियों को जल से संतुष्ट

कर रहे हैं, वा यह कहें कि भगवान् कुवेर ने पश्चिम आकाश में मानो सोने की खानि खोल दी है और देखो यह अनेक बादल रूपी देवगण अनेक वर्णों के मणियों को अपने शिरों पर, उनके परिपूरित कोष को और भी अपार कर देने को, लादे लिये जा रहे हैं वा यह कहें कि अब इन अवशिष्ट किरणों को जो पश्चिम में देख पड़ रही हैं जान पड़ता है कि विजयी विश्वेश्वर ने विश्व की रक्षा हेतु इन्हीं थोड़े पदातियों को छोड़ दिया है जिसमें ये नक्षत्र बन सारे आकाश में फैल, सावधानी से इसकी रक्षा करें। इन सब पदातियों के सेनापति ने पूर्व दिशा में जो अपने निर्मल प्रफुल्ल आनन को दिखलाया, तो धीरे धीरे सब नक्षत्र-पदाती आकाश मण्डल में फैल चले, और वह ऐरावत सा स्वयम् बादल जंगल को चीड़ता फाड़ता उसमें घुसा चला जा रहा है, वा यों कहें कि आखेट प्रिय कलानिधि बादल मृगों के हनन के हेतु अपने किरण तीरों को सन्धान किये लपका चला जा रहा है, या यह समझें कि श्वेत स्टीमर कलानिधि धीरे धीरे बादल बरफ़ को आकाश समुद्र में काटता छाँटता निकला चला जा रहा है, वा हनुमान सा पहाड़ के एक शृङ्ग से दूसरे शृङ्ग पर कूदता लखाई दे रहा है, या बादल अरण्य में पथिकों सा ऐसा छिप जाता है जैसे हम सब की आत्मा अविद्या तिमिर में छिप जाती है। कभी कामिनियों सा अपने निर्मल आनन को दिखा फिर व्रीड़ा और लज्जा से घूंघट ढँक लेता और पुनः कुछ काल के लिये प्रगट हो मुसलमानी माशूकों सा सब के हृदय को अपहरण कर, आशिकों को विस्मित करने के लिये बादल कपाट को बन्द कर, मुस्कुराता ललचाता भीतर चला जाता है।

यदि यह जगत गन्धर्व लोक है तो चाँदनी रात्रि में ; यदि

देवताओं को भी ईर्षा करने का समय है तो यही है; कुसुमायुध भी यदि इस लोक में कभी भ्रमण करता है तो इसी समय में; यदि लोग दिल आपस में हेर फेर करते हैं तो इसी समय में, यदि ऊषा ने अनिरुद्ध को स्वप्न में देखा होगा तो अवश्य इसी समय में, यदि योगिराग श्रीकृष्ण ने अपना अविचल हृदय भी लक्ष्मी के प्रेम से हटा श्रीमती राधिका देवी को सौंपा होगा तो निश्चय ऐसा ही रात्रि में; सीताजी की अश्रुधारा, भगवान रामचन्द्र के वियोग में ऐसी ही रात्रि के सुख का स्मरण कर सहस्रधारा हो वही होगी; लज्जा को छोड़ तपस्विनी सुकुमारी शकुन्तला ने भी दुष्यन्त को निज प्रेम की कथा पत्र में लिखना ऐसी ही सुखमयी निशा में निश्चय किया होगा; सुरसरिता ने भी ऐसी ही निशा में इस लोक में अवतरण करना स्थिर किया होगा; कौन जाने कि भगवान नारद ने भी ऐसी ही निशा में परिभ्रमण करते हुए सौदामिनी सी दमयन्ती को देख, निज मन को उसके रूप पर निछावर किया होगा; ऐसी ही रात्रि में दमयन्ती नल के वियोग में सारी रात देखती ही रह जाती रही होगी; चकोर की आँखें यदि पलक नहीं मारती तो ऐसी ही रात्रि में; पर मेरी तो ऐसी रात्रि में अनेक अवस्थायें बीती हैं। जब लौकिक प्रेमी थे तो चकोरवत सारी रात्रि कलानिधि को देखते देखते व्यतीत करते थे। किन्तु यह समझ कि सांसारिक प्रियतमाओं के नख़रे हमसे न सहे जायँगे, अब हमने कवियों के मतानुसार प्रकृति ही को अपनी प्रियतमा मान ली है तब से सच मानिये कि वही प्रकृति देवी हज़ार माशूकों की माशूक हो गई हैं। केवल भेद इतना ही है कि यह दैवी तो वह मानुषी, यदि एक से आँख लड़ाने में आँखें तर होतीं तो दूसरे से उलझने में जलतीं, यदि एक सदा सुलभ और सतत ज्ञान की दात्री, तो दूसरी

अलभ्य दुःसाध्य और ज्ञान का नाश क्षण के क्षण में करनेवाली। अस्तु यदि हम यह कह दें कि लखनऊ की वेगमात भी अपने आशिकों से इतना ही नख़रा करतीं होंगी जितना कि यह मुझसे, तो भी कुछ मिथ्या न होगा। क्योंकि यदि आप किसी नदी के सन्निकट जाइये तो यही कलानिधि कहीं अप्सरा सा नख़रा करता हुआ देख पड़ेगा, कहीं किरण रूपी करों का प्रसार कर अपनी प्यारी सखी नदी को आलिङ्गन करता हुआ देख पड़ेगा, कहीं मनस्वी सा सहस्रों जुगुनुओं का रूप धारण कर अनेक क्रीड़ायें करता, कहीं तो दुष्ट पति सा अपने किरिण रूपी दण्ड से नदी को ताड़न सा करता, फिर उसके चरणों पर गिरता और अनेक प्रार्थनायें करता कि वह उसे छोड़ समुद्र से न पाणिग्रहण करे, जिस अत्यचार को देख क्रोधान्ध महोदधि ताड़न के हेतु निष्फल ऊँची ऊर्म्मियों को उठाता है।

पर यदि कहीं रात्रि उजेली न हुई तो घर ही पर रहते हैं। कभी अपनी छोटी पवित्र गोष्टी में ब्रह्मर्षियों की पौराणिक कथायें कहते सुनते, कभी उस परमात्मा का सतत कीर्तन करते करते सब के सब तन मय हो सुखी हो जाते, कभी उस अनन्त कला वाले सद्गुणों के आधार और आकर सच्चिदानन्द की कथा रूपी वृहदारण्य में भ्रमण कर इस जीवन को चरितार्थ समझते, कभी उस षोड़श कलावाले ब्रह्म-कोष को इस गृह देहली में खोजते रह जाते और कभी सुरत वन्दर को आकाश और ज़मीन को एक करते हुए अनुभव करते रह जाते, कभी भावना लोक के द्वितीय ब्रह्मा शेक्सपियर के साथ विश्व के प्राणियों के हृदय रूपी परम अद्भुत और अपूर्व लोक में विचरते, कभी मिलटन की असाधारण मधुरिमा और गम्भीर गिरा को सराहते और कहते कि ऐसे कण्टकमय अरण्य रूपी भाषा में

भी ऐसे ऐसे प्रसून खिल सकते हैं, और ऐसी पथरीली भाषा में भी इनकी कविता की धारा प्रवाह गङ्गा सी पवित्र है, और लखनऊ की वारङ्गनाओं के नाच के तोड़ा सरीखी मनोहर है। क्योंकि ये भी आपके हृदय को पैर के हिलाने के साथ ले चलेंगी और कर्णों को अपने मधुर घूंघरों की झनकार से वश किये रहेंगी जिससे आपका मन सिवाय उनकी ओर के और कहीं भटकता न देख पड़ेगा। कभी बेकन और इमर्सन की गम्भीर गिरा के भाव समझने में मस्तिष्क विघूर्णित करता, कहीं एडीसन के साथ खिल्लियां उड़ाता, तो कभी वर्डसवर्थ के साथ जा देवी प्रकृति को सराहता, कभी बाइरन के दुःख को देख, काऊपर के स्वस्थ अन्तःकरण को सराहता और कभी इन महाशय के साथ चिमनी के सन्निकट बैठ इनके अनेक सहज सुख की कथा सुनता। कभी जयदेव जी के साथ शृङ्गार कुञ्ज में जा भगवान् कृष्ण की सुरीली सरस वंशी से कर्ण और अन्तःकरण को पवित्र करता, तो कभी कालिदास के अद्भुत शृङ्गार रस के अपूर्व वैलक्षण्य को देख शेक्सपियर से भी इनको उत्तम इस रस में समझता, कभी बाल्मीक के साथ भगवान रामचन्द्रजी के दर्शन को जाता और वहाँ अनेक महर्षियों को प्रणाम करता। इस भाँति इस अमूल्य जीवनी की दिनचर्य्या होती और ईश्वर के कृपा से बिना विषय देवी के किंकर हुए ही नित्य नये उत्सव देखता हूँ।

आनन्द

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कदाचन्।

तने प्राणी इस भूलोक में हैं प्रायः सवी आनन्द के भूखे और प्यासे पाये जाते हैं। मनुष्य तो कहता है कि आनन्द वा मंगल की घड़ी कृपण विधि बड़े भाग्य से देता है, यद्यपि यह मन पपीहा सा स्वाती के बूंद समान पूर्ण आनन्द की प्रार्थना वा याचना घनश्याम से अहर्निश किया करता है, और यथाशक्य प्रयत्न करता है कि वह, आनन्द और उल्लास के ऊँचे आसन पर सुमनस्क स्थित हो जाय और उससे च्युत होने की विपत्ति को न देखे, अथवा सदा आनन्द नदी के पुनीत कूलों ही पर विचरा करे। दिवाने दिल परमात्मा से प्रार्थना किया करते हैं कि आँखें जब देखें आनन्द ही को देखें, जब विचरें तो सदा रूप ही के अपूर्व सुहावने कानन में, शब्द भी सुने तो सदा मंगल और आनन्द ही के। हम सब कुछ ऐसे ही आनन्द के भिखारी हैं। बादशाह शहनशाह राजा बाबू छोटे बड़े सवी इस दर्बार के आश्रित हैं। उस परात्पर परमेश्वर की कीर्ति संगीत को गाने वाली भगवती उपनिषद् देवी कहती हैं कि यह मनुष्य यदि पत्नी का पाणिग्रहण करता है तो अपने अनेक

सुखों के अर्थ न कि उस स्त्री के सुख के लिये, यदि पुत्र की कामना करता तो वह अपने अनेक कामनाओं की पूर्ति के लिए, न कि पुत्र के लिए, योंही यावत् कुछ वह संग्रह करना चाहता वा व्यापार करता है वह उस वस्तु के अर्थ नहीं किन्तु अपने सुख और स्वार्थ के हेतु। निःसन्देह यह आत्मा ऐसा ही अपने सुख और आनन्द का स्वार्थी है।

यावत् मनुष्य हैं उन सब के आनन्द और सुख के देश प्रायः निराले हुआ करते हैं, यानी विद्वानों के आनन्द और रमने का देश दूसरा है और मूर्खों का दूसरा, यती और ज्ञानी के ठौर दूसरे हैं और विषयी वा सांसारिक मनुष्यों के दूसरे, प्रेमियों के आनन्द का देश दूसरा और श्वेत कुन्तल वाले बूढ़े वेदान्तियों का दूसरा। जहाँ विद्वान् ज्ञानी और भक्त रमते हैं वहाँ से विषयी दुखी और त्रस्त हो गीदड़ सा भागते हैं, और जहाँ विषयी और सांसारिक जन रमते और अपने को कृतकृत्य मानते हैं उस स्थान की वायु भी ज्ञानीजन सहन नहीं कर सकते। यदि उदार अपने उपकार और सद्व्यय से अपने को कृतकृत्य मान सन्तुष्ट और सुखी होता तो कृपण जन धन को व्यय से बचा अपनी बुद्धि और दाक्षिण्य पर अत्यन्त मग्न होता। सारांश यह कि जैसा जिसका संस्कार और बुद्धि होती है उसी के अनुरूप ही उसके आनन्द का विषय भी हुआ करता है।

भगवान श्रीकृष्ण ने आनन्द को तीन भागों में विभक्त किया है, अर्थात् सात्विक राजसी और तामसी। तामसी आनन्द के उपभोक्ता और प्रमाणों में शहाबुद्दीन, तैमूरलंग, नादिर, औरंगज़ेब, मैकबेथ, रिचर्ड थर्ड, जान, आदिक हुए हैं जिनके क्रौर्य्य की कहानी को अब भी रोता हुआ उदास मन बूढ़ा इतिहास सुनाता है। देखिये पुरातन ग्रीस का वह

कैसा निर्दय नृपति था, जो नगर को फूंक कर हँसता, हथेली बजाता और दूसरे का सर्व्वनाश कर देने पर, अपने घर उत्सव मनाता था, जिसका नाम इसलिए कि कविता देवी की जिह्वा पर फफोले न पड़ जायँ, न लेंगे। ऐसे ही बहुत से लोग इस दुष्ट तामसी आनन्द के उपभोक्ता हुए हैं। यह खेद का विषय है कि ऐसे पुरुष इस लोक के बड़े महोदयगण ही हुए हैं, क्योंकि ग़रीब बेचारों को इस निकृष्ट आनन्द के देखने और भोग करने का दुष्ट अवसर विधि नहीं देता। इस आनन्द के उपभोक्ता लोग प्रायः स्वयम् रोते और दूसरों को रुलाते हैं, और प्राणियों के अन्तःकरण को तपा कर स्वयम् तपते हैं। यद्यपि इस आनन्द के आदि में दुःख और अन्त में भी दुःख है, किन्तु बहुतेरों की ऐसी तामसी और विपरीत बुद्धि होती है कि यद्यपि वे नित्य प्रति अनेक दुःख और कष्ट झेलते हैं, पर तो भी विराम न कर, मारे क्रोध के इस आनन्द पाषण से अपना सिर टकराते ही चले जाते हैं, चाहे उनका मस्तक सहस्रधा भग्न क्यों न हो जाय। इस आनन्द के अधिष्ठाता प्रायः क्रोध और क्रौर्य्य ही हुआ करते हैं। विचक्षण विज्ञानी लोग ठीक ही कहते हैं कि तामसी आनन्द के उपभोक्तागण निश्चय उस जन्म में भेड़िये, गीदड़, व्याघ्र वा कोई हिंसक पशु रहे होंगे जिनका हिंसा धर्म्म मनुष्य के पवित्र शरीर पाने पर भी नहीं छूटा। बेसमझों ने यहाँ तक भी कह डाला है कि हम तबी सुखी और स्वस्थ होते हैं जब किसी बिस्मिल काफ़िर का सिर फड़कता हुआ देखते हैं। कोई कहते कि बहुतेरों के आनन पर मुस्कुराहट तबी आती है जब कि भयंकर शब्द उनके कर्णों में सुन पड़ते हैं। कोई ऐसे हैं कि वे उस समय बड़े प्रसन्न होते जब उनसे कोई ऐसी बात कहते बन पड़े कि जिसमें

कोई व्यक्ति नख शिख तक भस्मीभूत हो जाय। कोई ऐसे हैं कि उजरे हरख बिषाद बसेरे। ऐसे जन प्रायः दुखी रहा करते, क्योंकि ईर्षा, द्वेष, क्रोध की हृदय-दाही अग्नि, उनके हृदय को त्रस्त किया करती, इससे उनकी आँखें आग फेकती और देखने से ऐसा मालूम होता कि यदि इनमें जलाने की शक्ति होती तो सहस्रों प्राणियों को वे भस्म कर डालतीं, ऐसे तामसी मनुष्यों के दर्शन या उनके दुष्ट कीर्ति के पढ़ने से आत्मा झुलसती और उनसे दूर भागती है। ऐसे पुरुष किसी के मित्र नहीं होते क्योंकि मैत्री, करुणा, मुदिता का लेश भी उनमें नहीं रहता, इससे वे अपने को जगत में अकेले ही पाते हैं चाहे वे शाहंशाह ही क्यों न हों और इतिहास लेखकों के अतिरिक्त कोई कवि उनके गुणों का गान नहीं करता, क्योंकि वे उसके योग्य ही नहीं हैं।

राजसी सुख का आदि अमृत सा मीठा और परिणाम विष सा कटु होता है, परन्तु वह ऐसा मीठा है कि सारा लोक इसी सुख को परम सुख मानता और इसी की अनेक वीथिओं में बादशाह, शहंशाह, राजा, बाबू वणिक और यावत् संसार के मनुष्य हैं, विचरते रहते हैं। बूढ़ा, ज्ञानी इतिहास कहता है कि राजसी पुरुषों की आँखें तवी खुलती है जब उनका शरीर और धन लुट जाता है। राजसी भोगों के पश्चात् मनुष्य कुछ ऐसा दीन हीन और दरिद्र सा हो जाता है कि उसमें फिर कोई सात्विक वा राजसी भावना उठती ही नहीं, जिसको कवियों ने अनेक उपमा और उत्प्रेक्षाओं से समझाया है। कोई कहते कि राजसी सुख आदि में, सजी धजी राजधानी सा देख पड़ता है कि जिसमें सारे संसार के आनन्द की सामग्री उपस्थित है, जिसकी वीथियाँ मनुष्यों के कलवर से

सजीवित सी हो रही है, और चतुर्दिक उत्साह और मंगल के सामान देख पड़ते हैं परन्तु कलान्तर में नगर के उजाड़ और वीरान हो जाने पर जैसे उसके कोटरों में चमगीदड़ और शृगाल बसते हैं, वैसे ही राजसी सुख के उपभोग के अन्त में इस शरीर रूपी नगर की दशा हो जाती है, क्योंकि जब विषय भोग से जीर्ण हो जाता है तो इसमें केवल तृष्णा शृगाल और हिरस चमगीदड़ रह जाते हैं। या राजसी पुरुष उस नादान मुसाफ़िर सा है जो इस माया की सराय में आ बसा और माया की अनेक प्यारी दूतियों ने उसको ऐसी मोह की मीठी मदिरा पिलाई कि जिसके पीते ही वह मूर्छित हो गया, और बे ख़बरी में उसका सब धन हरण कर, प्रातःकाल वे उससे सराय में बसने का किराया माँगती और न मिलने पर उसकी अनेक दुर्गति करती हैं, अर्थात् शरीर के जीर्ण हो जाने पर वा वित्त के नष्ट हो जाने पर मन की तृष्णा अठगुनी हो जाती, क्योंकि पहिले के भोगों के न प्राप्त होने से चाह वा हिरस रूपी बिच्छू अहर्निश उसके हृदय पर डंक मारा करते हैं।

राजसी सुख की यदि हम एक वेश्या से समता दें तो कोई अनुचित नहीं है क्योंकि जब तक हम सुखी और सम्पन्न रहते वे हम पर कृपा कटाक्ष निक्षेप करतीं और ऐसा जान पड़ता कि हमारे पहलू से यह कहीं अनत न जायँगी, किन्तु दरिद्र होने पर वह लाख बुलाने और प्रार्थना करने पर भी एक बार फिर कर नहीं देखातीं। ज्ञानी निचकेता जी ने ठीक ही कहा है कि भोग से तो इन्द्रियों का सकल तेज़ जर्जर और निस्तेज हो जाता है। यूरुप के दार्शनिकों ने भोगियों की शरीर की समता लद्दू वा भाड़े के एक्के के टट्टुओं से बहुत ही उचित दी है, क्योंकि वे लाख विषय के चाबुक लगाने पर भी आगे

की नहीं बढ़ते। इन सब की इन्द्रियाँ ऐसी कुछ शिथिल हो जाती हैं, कि न वे यथेष्ट भोजन कर सकते, न हँस बोल सकते न तो वायू को सह सकते, न जल की अनेक क्रीड़ाओं को कर सकते और न कभी उन्हें सेज पर गाढ़ निद्रा अंग लिपटा कर सोती है। वे तो विचारे बस मीरफ़रश बन जाते कि जिनका उठना बैठना भी दूसरों के हाथ रहता है। फिर ऐसे भोग में क्या सुख है? भाड़े वाले टट्टू के सदृश इन्द्रियों को रखने में इस जगत का क्या सुख प्राप्त हो सकता है? इसीसे संयमी जन युक्त आहार करते, चाहे लाख नेमतें रखीं हों और चाहे लोभ वा काम के अखिल सामान क्यों न उनके समक्ष प्रस्तुत कर दिये गये हों? भ्रम से बादशाह समझता है कि यदि हम इस सारी वसुधा को अपनी विजय पताका के नीचे ला सकते तो निश्चय यह मन सदा के लिये सुखी हो जाता। सिकन्दर सीज़र नेपोलियन, महमूद, नादिर, दुर्योधन, रावण इत्यादि ने देखा है कि सहस्रों विषय प्राप्त होने और लोक में सब से ऊँचा गिने जाने पर भी यह मन सुखी वा सन्तुष्ट न हो सका। प्रत्युत वह अत्यन्त दुखी और दीन हो गया, क्योंकि उसीके कारण मनुष्य शरीर के पवित्र रुधिर से कई बार वसुधा क्लिन्न हो गई। भला ऐसा मनुष्य शान्त सुमन आनन्द पूर्वक कैसे बैठ सकता है? योंही द्रव्य के संचय करने वाले समझते हैं कि जब हम इतना द्रव्य अपने कोष में संचय कर लेंगे, यह लोभ और तृष्णा की अग्नि जो हृदय में जल रही है निश्चय शान्त हो जायगी। पर देखा गया है कि उससे भी अधिक प्राप्त कर चुकने पर मन दरिद्र का दरिद्र ही रह गया और तृष्णाग्नि और भी तीव्र हो गई है। इसी प्रकार कामी लोग यद्यपि नित्य ही कामिनी संग रूपी संग से सिर टकराते टकराते श्वेत कुन्तल और पोपला

मुख कर लेते तथापि तुष्टि नहीं पाते। जैसे कि ययाति ने समझा था कि इतने भोग के पश्चात् निश्चय मन इससे उपराम ले सुखी होगा पर देखा कि आग से आग नहीं बुझती और मन कभी भी भोग से शान्त नहीं होता है।

सारांश यह है कि जितने प्राणी इस लोक में हैं सबी चाहते हैं कि वे सदा के लिए सुखी हो जायँ, आनन्द और उत्साह का महागज अपने द्वार पर बाँध, मोंछों पर ताव दिया करें या आनन्द के श्रोत का तालाश कर तृप्तात्मा और मालोमाल हो जाँय, पर जैसा कि वेद भगवान कहते हैं कि सत्य का मुख तो हिरण्यमय पात्र से ढँका हुआ है अर्थात् आनन्द का श्रोत अविद्या मेरू पर्वत की ओट में वह रहा है जिसका तात्पर्य्य यह है कि वह पर्वत सुहावने और ललचावने दृश्यों से पूर्ण है कि मनुष्य उसी की शोभा देखता रह जाता और उस पुनीत आनन्द श्रोत के ढूँढने की कभी जिज्ञासा भी नहीं करता। लोलुप मन वा यों कहिये सारा लोक चौबीस घंटे माया की हाट में भटक रहा है कि आनन्द का सौदा करें और सुखी हो जायँ। इस अवस्था को शास्त्रकारों ने कास्तूरी मृग से दृष्टान्त दे भली भाँति समझाया है। वे कहते हैं कि वह उन्मत्त मृग जिसके शरीर ही में कस्तूरी बसती और उसकी सुगन्ध पाकर वह सारे जंगल में खोजता है कि उसे प्राप्त करे। तात्पर्य्य यह है कि जो कुछ आनन्द इस लोक की वस्तुओं से होता है उसका मुख्य कारण यह आत्मा ही है, कि जिसे न जान, मूढ़ मनुष्य मृग सदृश विषय कानन में भटकता घूमता है। योंही दूसरी जगह कहते हैं कि वह सरस सुर जो बंसी से निकल रहा है, उसे यदि कोई प्राप्त करना चाहे तो बंसी को प्राप्त करे अर्थात् यदि हम किसी बंसी के सरस सुर को सुन, जो परोक्ष में बज रही है, उसका

कारण खोजने चलें, तो देखेंगे कि उन सब सरस सुरों का उत्पत्ति क्षेत्र एक छोटी सी बंसी है। उसी प्रकार यावत् सुख इन इन्द्रियों द्वारा होते हैं यदि आप विज्ञानी हैं तो अन्वेषण करने पर उक्त आनन्द का मुख्य कारण अपनी आत्मा ही को पायेंगे। परन्तु यह आत्मा बंसी अव्यक्त दुर्विज्ञेय और सूक्ष्म तर है जिस कारण यद्यपि उसकी ध्वनि प्रतिक्षण निकलती रहती है तथापि मूर्खजन नहीं जान सकते और न यह पहचान वा अनुमान कर सकते कि यावत् सुख और आनन्द है उसका मुख्य कारण उसकी आत्मा ही है न कि विषय। बंसी के सरस सुर से वेद भगवान का यह तात्पर्य्य है कि जो विषय से वा किसी कारण से, आनन्द की धारा निरन्तर आत्मा में उठ रही है उसका कारण विषय नहीं है, किन्तु वह आत्मा ही है जो कि आनन्द स्वरूप है, जिसे मूर्ख न जान कर विषय की ग़ुलामी करता और उसके संग्रह में चतुर्दिक् दौड़ा करता है, और दिग्दिगन्तर प्रसृत वंसी के सरससुरों को इकट्ठा करने का परम असम्भव कार्य्य किया चाहता है। क्योंकि सारा आनन्द इस शरीर ही में बसता है और इस आत्मा ही में सब सुख अनन्त-सम्पत्ति के सामान भरे हैं, इसी को विद्वानों ने अनेक युक्ति और तर्क से सिद्ध किया है कि यदि आप सुखी तो जगत् सुखी अर्थात् जब कि हम सुखी हैं तो यह जग भी सुख स्वरूप दिखाई देगा और यदि हम दुखी हैं तो जगत भी दुःख स्वरूप ही दीख पड़ेगा। तात्पर्य्य यह है कि जब हमारी आत्मा सुखी है तभी हम अनेक विषयों द्वारा सुखानुभव कर सकते हैं, क्योंकि चित्त की उद्विग्नावस्था में तो देखा है कि लाख आनन्द के दृश्य वरञ्च अखिल लोक की सामग्री भी फीकी लखाई पड़ती है। विषय में यह शक्ति निश्चय

नहीं है कि अस्वस्थ को स्वस्थ कर सके, वा दुखी को सुखी कर सके। जैसे कि ज्वर से संतप्त वा चिन्ता से उद्विग्न मनुष्य के समक्ष कोई लाख गाना और नाच दिखलाए वा शेक्सपियर वा सादी के ललित वाक्य सुनाये, पर उसको वे सुखी न कर सकेंगे। इससे निश्चय हुआ कि आनन्द और उत्साह की दीवानी मौजें तभी आकाश की छोर तक प्रलम्बायमान हो सकतीं हैं जब कि यह आत्मा सुखी और सन्तुष्ट हो।

अब सुखी कैसे हो यह विचारना चाहिये। इसके उत्तर में बूढ़ा वेदान्त यह कहता है कि जब तक यह मन विषयों की अनेक ललचावनी वीथियों में रमता रहेगा तब तक इसे शाश्वत् शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती है, और जब तक शान्ति न आयेगी तब तक आनन्द कदाचित् सम्भव नहीं है। क्योंकि चञ्चल और उद्विग्न मन कभी शान्ति की सुखमयी शय्या पर नहीं सो सका है।

आनन्द का श्रोत एक ऐसे ऊँचे दुर्गम पर्वत से निकलता है जो साधारण श्रद्धा वा परिश्रम वाले मनुष्यों के मान का नहीं कि वहाँ तक वह पहुँच सकें। बहुतेरे तो उसकी ऊँचाई को देख चढ़ने की हिम्मत ही छोड़ देते और कोई दो चार कदम चले तो कुछ दूर जा, शक्तिहीन हो गिर जाते हैं। इसी से भगवान कृष्ण कहते हैं कि सात्विक सुख पहिले विष सा कटु है। "जानवनियन" भी कहता है कि परमात्मा का धाम जहाँ कि आनन्द और सुख का सदावर्त बँटता है, जहाँ कि अमृत की नदी बहती और सदा बसन्त भोग किया करता है, वह स्थान जंगल पहाड़ मरुस्थल और दलदलों से सुरक्षित है, इसी से उस ज्ञानी पादरी के कथनानुसार केवल आर्त, जिज्ञासु, प्रेमी भक्त और ज्ञानी जन ही उस दुर्गम मार्ग को पार कर वहाँ

तक पहुँच सकते हैं। यह ठीक है कि यदि आर्त वहाँ तीव्र मोटरकार पर जाता है तो ज्ञानी और विरक्त जोड़ी पर और भक्त चौकड़ी पर उस देश को पहुँचता है। योंही इतर जनों की सवारी यदि खच्चर और गदहे की कही जाय तो कुछ अनुचित नहीं अर्थात् जैसी जिसकी श्रद्धा है वैसी उसकी सवारी है।

संसार में भी तीन चार ठौर सात्विक सुख का उदाहरण देखने में आता है। प्रथम तो विद्या है जिसके दो चार घण्टे पढ़ने के पश्चात् जो सात्विक हर्ष का उद्गार हृदय में उठता है, यद्यपि वह क्षणिक है तथापि सात्विक सुख का आदर्श है। दूसरा, जब कि आप किसी को दुःख दारिद्रय वा डूबने से बचाते हैं या विपत्ति के तूफ़ान में पड़े हुए को लक्ष्मी गृह आदि से सहायता दे उसे शरण देते हैं। ऐसी सहायता के देने पर जो आत्मा को सुख वा सन्तोष होता है वह भी परम सात्विक है। योंही पुण्य जप, तप, यज्ञादि दैवी कर्म्मों के पश्चात् जो सात्विक आह्लाद आता है, सात्विक आनन्द का परम उदाहरण है। वैसे ही जब हम किसी महात्मा के आश्रम में प्रवेश करते हैं तो देखते हैं, कि बेप्रयास हमारे कंधों पर से मोह और अहंकार रूपी ज्ञानभक्षी राक्षस क्षणैक के लिये उतर जाते और नास्तिक और ध्वान्त हृदयों के भी हृदय को कुछ काल के लिए सात्विक आनन्द की किरणें उजेली कर देती हैं। वैसे ही आवारिपूर्ण उमड़ी हुई चौड़ी नदियों के देखने, झरने वा दरियों के अनेक सुहावने कलकल शब्द को स्वस्थ मन सुनने, या पर्वतों के अनेक श्यामायमान शृङ्गों की शृङ्खलाओं के देखने या आकाश में अपूर्व इन्द्र धनुष के दर्शन से जो आनन्द आता वह भी सात्विक ही है। योंही दूर से आये मित्रों के सम्मिलन में भी सात्विक आनन्द का

वैभव देखा गया है। देखिये जब परम पराक्रमशाली पवन सुत ने भगवती सीता को अशोक के नीचे उदास मन बैठे पाया और जब उनसे भगवान रामचन्द्र का कुशल संदेश तथा लंका में ससैन्य आकर राक्षस कुल के नाश करने तथाच उनको छुड़ाने की प्रतिज्ञा सुना और जलती हुई कृषि सी जनक नन्दिनी को अपने अमृतमय वाक्यों से सींच कर ऐसे सुखी हुए कि अपने सात्विक उत्साह में आकर सारी लंका को फूंक डाला। यही सात्विक हर्ष में एक तामसी कर्म्म का उदाहरण है।

सात्विक सुख का अन्वेषण करने वाला नित्य उज्वल और पुनीत लोक की ओर आगे बढ़ता है, वही राजसी और तामसी जन नित्य अविद्या तिमिराच्छादित सर्प और बिच्छुओं से आकीर्ण लोक में गिरने को काल के वृहत् पाश में नित्य और भी उलझते जाते हैं। यदि सात्विक सुख के देश में सुरत की झनकार उठ रही है और भक्ति भावना के अनोखे नूपुर मधुर निनाद कर रहे हैं, तो राजसी और तामसी के हृदयों में कामना, क्रोध, अहंकार रूपी भयंकरी का भयावह चीत्कार मच रहा है। यदि एक की इन्द्रियाँ सदा संतुष्ट और सुखी रहती तो दूसरे और तीसरे की इन्द्रियाँ गरुड़ के बच्चों वा राक्षसों की संतानों की भाँति सदा भोजन ही माँगा करतीं, यदि सात्विक के आदर्श स्वरूप श्री महाराज रामचन्द्र, युधिष्ठिर, विक्रमादित्य अकबर इत्यादि हैं कि जिनके चरित्र की कथा मनुष्यों को सदा सच्चरित्र और धार्मिक बनाएँगी, तो सेक्सटस, जान, महमूद, दुर्योधन रावण इत्यादि. तामसी मनुष्यों की कथाएँ सदा लोक को हानिप्रद हुआ करेंगी। यदि एक अपने पीछे इत्र सी सत्कीर्ति रूपी खुशबू छोड़ती तो दूसरी मोटरकार सी ऐसी दुर्गन्धित कर जाती कि जिसका संस्कार

समय नहीं मिटा सकता। यदि एक उस लोक में विचरता कि जिसकी प्रशंसा में श्रुति कहती है कि उस ऊर्ध्वलोक में न कोई देवता, न सर्वत्र गामी पवन ही जा सकता, जहाँ कि सात्विक जन नित्य बसते और नित्य नये उत्सवों के समान देखते हैं। राजसी जब जन्म और कर्म्म के जाल से जकड़ा यद्यपि अकुलाता और फड़फड़ाता पर मोहवश उसे छोड़ नहीं सकता, योंही तामसी तो सदा अधोलोक ही में रहता है। यदि एक स्वर्ग का द्वार इसी लोक में खोलता है तो दूसरा उसे सोने और चाँदी से ढक देता है। यदि एक चिरस्थायी तो दूसरा बिजली सा क्षणीक प्रकाश दिखा पीछे निविड़ अंधकार में छोड़ता है। भगवान् श्रीकृष्ण सात्विक सुख की प्रशंसा में कहते हैं कि इस सुख के प्राप्त करने के पश्चात् मनुष्य को किसी वस्तु के प्राप्त करने की इच्छा नहीं रह जाती पर वह सुख जंगलों में घूमने वा तीर्थों के पर्य्यटन में अपने पैरों के तोड़ने से नहीं प्राप्त हो सकता, वह तो केवल अपने घट ही में खोजने से सुलभ है।

इस सुख के अन्वेषण की इसलिये आवश्यकता पड़ी कि जब पंडित कवि और दार्शनिकों ने देखा कि इस लोक में नित्य क्षणिक सुख की बालू की दीवार उठानी पड़ती कि जो नित्य गिरा करती है, यथा नित्य नई माशूकाएँ ढूँढ़नी और नित्य नये से प्रेम की ग्रन्थि जोड़नी पड़ती है, जिससे नित्य नये झंझट और विघ्नों के तूफ़ान का सामान करना पड़ता क्योंकि वे यदि आज हँस रही हैं, तो कल कोसने लगतीं, यदि आज आप पर जान निछावर करती हैं तो कल सर्व भाव से विरक्त हो बैठती, ऐसी ही प्रकृति की प्रायः सब माशूकाएँ हुआ करती हैं, जिनके भाव कभी स्थिर नहीं रहते। पण्डित ज्ञानी और

विचक्षणजन जब माया की हाट में आनन्द और सुख का सौदा करने चले और इतिहास को अपना नेता बनाया और पुराण को साथ लिया तो देखा कि कोई ऐसा सौदा नहीं है कि जो इस आत्मा को सदा के लिये आनन्द मूर्ति बना दे, क्योंकि ये कहते हैं कि देखो भूमि फ़तह करने वालों ने अन्त को सिर पीटा और कहा कि जो करना चाहता था वह न किया। मूषकों सा द्रव्य संग्रह करने वाला देखता है कि नित्य वह लक्ष्मीवान होने के बदले असंतोष के कारण दरिद्र होता जाता है और भोगी कुछ दिन के पश्चात् जिस भोग के लिये प्राण देता था अब उसे देखना भी नहीं चाहता । योंही यावत् राजसी सुख हैं उनको यदि तत्वतः विचारिये तो यही समझ पड़ता है कि इनकी मैत्री कभी स्थिर नहीं हो सकती, क्योंकि माया चल प्रकृति वाली है, इसी से उससे जनित यावत् सुखादि हैं वे भी चल हैं। राजसी सुख में सब से बड़ा कष्ट तो यह है कि विधि कभी पूर्ण रूप से उसका अनुभव नहीं करने देती, क्योंकि जब मनुष्य समझता है कि अब हमें पूरा आनन्द आ चला या अब हम पूर्ण रूप से आनन्द पूर्वक इस संचित धन वा राज्य का उपभोग करेंगे, तभी प्रायः देखा गया है कि उसी समय अनेक विघ्न स्वरूप तूफ़ानों के आने का अवसर मिलता है। अतः उन महात्माओं ने स्थिर किया कि इस माया की हाट में कोई ऐसा सौदा नहीं है जो स्थायी हो और निरन्तर सुख का देने वाला हो, क्योंकि आनन्द के चाह की आग जो अन्तःकरण में लगी हुई है, वह माया के बाहरी विषयों से कैसे बुझ सकती है। अर्थात् आत्मा को अनात्मीय वस्तुओं से कैसे तुष्टि हो सकती है इसी बेसमझी को ज्ञानियों ने भ्रान्ति कहा है, अर्थात् सुख किस ठौर बसता है और जगत उसे किस ठौर ढूंढता है

इसी से कभी कभी माया के गुलामों को उन्होंने अन्धा और बेसमझ कहा है। यह ठीक है कि माया की हाट में सैकड़ों दल्लाल घूमते रहते हैं जो हाथ पकड़ और घसीट कर ले जाते और सौदा पक्का कराके ही छोड़ते, पर उसी के विरुद्ध सात्विक, की शान्त हाट में केवल आपकी प्रबल श्रद्धा और जिज्ञासा मात्र सहायिका मिलतीं और माया के महा पराक्रमी सैनिक चौबीस घंटे लूटने और सौदा बिगाड़ने के लिये तैयार रहते हैं, सुतराम् यही सब दुःख और कठिनाइयाँ इस हाट में झेलनी पड़ती हैं।

हमने देखा, बड़े से बड़े आनन्द और मंगल के अवसरों में जब कि अपने ही घर में बड़ी सी बड़ी महफ़िलें थीं, और वेश्याओं के रूप लावण्य मिस भगवान् कुसुमाकर मानो बसन्त का प्रत्यक्ष समा ला रहे थे, संगीत सम्मिलित सारंगी के सरस सुर से दीवानख़ाना दीवाना बना वाह वाह कर रहा था, जड़ होता हुआ भी सुरीला हो रहा था, वा सत्संगति क्या २ नहीं कर डालती इसका प्रत्यक्ष उदाहरण बन रहा था, अथवा और २ कई महोत्सवों पर जो इस जीवनी में देखने का अवसर मिला, तब जब जब मैंने विज्ञान शास्त्री से कहा कि वे दिल के घंटे को बजाएँ और पूछें कि अब तो आप संतुष्ट हुए, तो देखा कि मन किसी न किसी कोने से असंतुष्टता या न्यूनता ही का उत्तर देता है।

परन्तु यदि आप सद्गुण निष्ठुर वैद्य की कटु पुड़िया किसी भाँति निगल जाइये, वा इस माया के विकट और अपार जंगल को विद्या भक्ति और तितिक्षादि नेताओं की सहायता से पार कर ले जाइये तो निश्चय चिल्ला कर कहियेगा कि जिसे हम पाना चाहते थे, उसे हम पा चुके। हमें इस लोक में कुछ कमी नहीं रह गई, सन्तोष ने ख़ज़ाना पूरा कर दिया, अब मन

सदा आनन्द के ऊँचे सिंहासन पर स्थित रहता है और आनन्द की ऊँची मौजों को देख देख सदा प्रसन्न होता और बादशाह सा सारे लोक को अपनी प्रजा सरीखा देखता है क्योंकि तपोधनी सचमुच ही धनी हैं और इतरजन उनके समक्ष वस्तुतः रंक और दरिद्र हैं।

सच तो यह है कि जब अन्तर राज्य का राजविद्रोह शमन हो जाय अर्थात् दुष्ट काम क्रोधादिक रजोगुण के महा सैनिक और उनके पदातिगण नष्ट हो जायँ और जागता विवेक मंत्री अपने नियत कर्म्म से स्थित हो जाय, तथा संतोष निग्रह पहरुये पहरा देने लगें तभी तो यह देही अपने स्वरूप में स्थित हो शाश्वत आनन्द का भागी हो सकता है, वा ऐसा कहें कि जैसे तन्त्री से सरस सुर तभी उपज सकते हैं जब कि उसके सब तार परस्पर मिले हों वैसे ही इस शरीर रूपी तन्त्री की भी अवस्था है कि जब सुर में हैं, अर्थात् मन शान्त है, तो अनेक कठिन से कठिन और गूढ़ विषयों का भी विचार कर सकता है, किन्तु जब बेसुरा है अर्थात् काम क्रोध लोभ इत्यादि जब मन को अपने वश कर लेते हैं तो यही बिगड़ी तन्त्री के समान अपने सरस सुर को भूल जाता है। भगवान् कहते हैं कि अशान्त को कहाँ सुख है अर्थात् कहीं नहीं। यह ठीक ही है, क्योंकि जब ईर्षा, द्वेष, लोभ, मोह, मान इत्यादि गरुड़ के बच्चों के सदृश हमारे अन्तःकरण पर चञ्चु का आघात कर रहे हैं, तब कैसे किसी को सुख मिल सकता है। बलिहारी इस बुढ़िया मोहनी माया की जो इस बुढ़ापे में भी हज़ारों माशूकों की माशूका और जिसकी बुढ़ाई जवानी को भी मात किए हुये है, जो ऐसी ललचावनी और सुहावनी है कि प्राणी मात्र जीवन पर्य्यन्त इसी के वश रहते और स्वप्न में भी कभी नहीं समझते और

न उन्हें यह समझने का अवसर ही देती—कि इस अद्भुत सहस्रों तार वाली वीणा का बजाने वाला कौन है ? वा ऐहिक सुख के परे कोई और भी सुख है ? वा इस सारे विश्व का कोई रचयिता भी है ? या इस परम दुर्लभ मानुषी तन को माया की गुलामी के अतिरिक्त और भी कोई काम है ? वा इस अखिल विश्व के रचयिता की भी परिचर्या कर्तव्य है वा नहीं ?

जो ब्रह्म निष्ठ नहीं है, वा आत्मज्ञानी नहीं है, जिसने कि अपने रूप को नहीं पहिचाना और जो मोह निद्रा से निद्रित कहे जाते हैं अर्थात् माया मद से विघूर्णित स्वदेश वा स्वकेन्द्र त्यागी सदा बाहरी विषयों में रमते हुए, अपने घट से बेख़बर रहते, उन्हें माया की इस अविद्या गाढ़ निद्रासे उन्निद्रित करने के लिये, सब देशों के दैवी वाक्यों ने प्रयत्न किया कि वे जगें और इस अविद्या निद्रा दुःख को त्याग विद्या व ज्ञान वा सूर्य्य वाले देश में रमे, पर दैवी माया की दया से ऐसे सुखमय मंगलकारी प्रिय वचनों को वे सुनने के भी रवादार नहीं। कारण यह है कि सात्विक आश्रमों में जाने से माया और उसके अनेक पदाति रोकते हैं कि वह इस ठौर न जायँ और यदि जायँ भी तो कर्ण और चक्षु से शून्य होकर अर्थात् कोई बात न तो याद रक्खे, न समझें वा आचरण करें जो कि वहाँ के आचार्य्य उन्हें उपदेश करते हैं। सारे लोक में कुछ ऐसा हो माया का प्रभाव देखने में आता है।

एक महात्मा कभी कभी अपनी मौज में संसारिक मनुष्यों की माया की गुलामी और मोह की समता लखनऊ के उन धृष्ट नायकों से दिया करते थे जो किसी रूपवती क्रूर स्वभाव वाली यवनी के प्रेम में पूर्ण रूप से ऐसे आशक्त होते कि सैकड़ों बेतलें खाने पर भी अपने चेहरे पर शिकन नहीं लाते, सौ सौ कोड़े

खाने पर उफ़ नहीं करते, लाख झिड़कियाँ सुनने और गर्द-नियाँ देकर निकाले भी जाते तो भी उस प्रिय वीथी की धूलि उड़ाना नहीं छोड़ते। ऐसे विचित्र प्रेमी जगत या पुस्तकों में दो ही चार ढूंढने से मिलेंगे पर हमारे इस बुढ़िया माया के तो सबी ऐसे ही धृष्ट प्रेमी हुआ करते हैं, जो जगत की लाख लाख लातें खाते पर तो भी बेशर्मी से मुँह नहीं मोड़ते। यद्यपि यम-राज दिन रात मृत्यु के गोले बरसा रहा है, सहस्रों नित्य प्रस्थान कर रहे हैं, पर जो बचते अपने को अजर अमर समझते, और कभी नहीं विचारते कि संसार छोड़ उन्हें कहीं और ठौर भी जाना है? उनके अनेक कर्मों का कभी कोई पूछने वाला भी होगा? इस देह के अधिष्ठाता देही प्रभु की परिचर्य्या भी करने के योग्य हैं, वा यह जीवन जानने समझने या पूजने के योग्य हैं? ऐसा कुछ अविद्या मोह का परदा पड़ा है कि जिससे इसके भीतर बैठे हुए अव्यक्त, सर्व प्राणियों के अन्तर्देश में रमने वाले पुरुष का पता भी नहीं चलता, केवल इस शरीर रथ के सारथी मन और इन्द्रिय अश्व आदि का ज्ञान रहता है। कारण यह है कि अनेक जन्मों से इस माया की गुलामी करने से इस मन का ऐसा कुछ भ्रष्ट संस्कार हो गया है कि वह इसी माया की गुलामी में अपने को कृत् कृत्य मानता, कभी नहीं अकुलाता।

किसी कवि ने ठीक कहा है कि ज्यों ज्यों हम ऊपर चढ़े, त्यों त्यों बस्ती नज़र पड़ी अर्थात् ज्यों ज्यों ऊँचे सात्विक ऊर्द्ध लोक को चढ़ते जाते हैं त्यों त्यों इस संसार का सच्चा स्वरूप देखने में आता है। जैसे कि जब हम किसी ऊँचे पर्वत के शृङ्ग पर चढ़ जाते हैं तो नीचे के रहने वाले मनुष्य आदि अति क्षुद्र दिखाई देते हैं। वहाँ बैठे हम अनेक सुहावने दृश्य को देख सराह सकते हैं पर वे बिचारे जो पृथ्वी पर हैं, चार हाथ

भी नहीं देख सकते। पानी बरसने से संसार में कीच पैदा होती है पर हमारे पैरों में छू भी नहीं जाती। शहर की दुर्गन्धि धूम्र तथा धूलि से दूषित पवन के स्थान पर वहाँ सहस्रों वनस्पतियों के परांग से पूरित प्राणप्रद मन्द मन्द वायु हमें पीने को मिलती है। एक्के और गाड़ियों की खड़खड़ाहट के स्थान पर झरने और प्रपातों के मधुर घोष से सदा कर्ण पूरित रहता है। ऐसा भेद जीवन और सुख में हो जाता है जब कि हम स्थूल पर्वत पर चढ़ते हैं, फिर आप समझ सकते हैं कि जब हम उस उच्च सात्विक निर्मल देश की ओर उन्मुख हो कुछ ऊपर जा उस प्रशान्त पर्वत पर चढ़ जायँगे तो देख सकेंगे कि हम कैसे सुखी हैं और ये अधः प्रदेशवासी राजसी और तामसीजन कैसे चिन्ता और दुःख में मग्न हैं। तब भला उन सबों की क्या कथा कि जो अपनी सारी भावनाओं के बाज़ार को ऊर्द्ध लोक में जा बसाते हैं और देखते हैं कि यही पृथ्वी दूसरी की दूसरी हो जाती है। यावत् जगत के कार्य्य हैं सुखमय और यावत् प्राणी हैं सब मित्र हो गये हैं। भक्ति और ज्ञान का अपूर्व समीर उनके हृदय के सारे ताप संस्कार को हर लेता और नित्य संयम और नियम के अपूर्व निर्झरों के जल पान से वे शाश्वत सुख के भागी हो गये हैं।

उक्त उत्प्रेक्षा को दूसरे महात्मा इस प्रकार से कहते थे कि आनन्द और सुख तभी आ सकता है जब हम वपवज़ स्वयम नाचने के, नाच देखने पैठते हैं यानी जब इस सारे संसार को नेपथ्य मान लीजिये, और मनुष्यों को नट समझिये एवम् अपने को उस अभिनय का द्रष्टा बनाइये तभी आप इस विश्व महा नेपथ्य के विविध नाट्य और प्रतिक्षण बदलते हुए प्रकृति के परदे को सम्यक रूप से देख आनन्द का अनुभव कर सकते

हैं। एक दूसरे महात्मा कहते कि जगत बारात है उसमें यदि आप बराती सदृश हूजिये तो महफ़िल और अनेक उत्सवों को देखते हुए भी उससे विरक्त और हानि लाभ से रहित रह, घर लौटने पर सुखी रहेंगे। हमने इस जगत के सुखों को थोड़े या बृहत् रूप में अनुभव किया है, पर अब जो इससे अलग जा, अपने एक छोटे से ग्राम में बैठे, अधिपति वा देही की सुध ली तो देखते हैं कि कैसा यह अन्तःकरण सुखी हो गया है। जो अहर्निश विषय वीथिओं में विचरता और अनेक दुखों का भागी हुआ करता था, अब स्वस्थ है। चैतन्य, निर्म्मल, देदीप्यमान, सारे विश्व को तेज़ देने वाला साहेब संतुष्ट है और मारे आनन्द के उछला करता है। उन्हीं साहेब के दर्शन का सुख सारे विश्व के सुखों को गर्हित ठहराता है। इसी चिरस्थायी, सदा नूतन, अविचल आनन्द को प्राप्त करने के लिये ज्ञानीजन अनेक प्रयत्न करते हैं। क्योंकि इस लोक के क्षणिक आनन्द उन्हें संतुष्ट नहीं कर सकते।

यह सात्विक देश कुछ ऐसा क्लिष्ट, दुर्गम, दुर्विजय है कि उसकी ओर कोई जाना नहीं चाहता। इस निर्मल देश की कथा और आनन्द की बातें यदि कहीं सांसारिक मनुष्य वा विद्वान् पादरी सुनता तो कपट हास्य से कह चलता कि क्या परी सी प्रियतमा पत्नी के पार्श्व शयन से ब्रह्मचर्य्य में अधिक सुख सम्भव है? क्या सुस्वादु भोजन करने से भूखों मरने में अधिक आनन्द है? समाज को छोड़ एकान्त में क्या अधिक मन रम सकता अथवा उन्नति को प्राप्त कर सकता है? क्या मुद्रा गिनने से माला की मनियाँ गिनने में अधिक प्राप्ति है? क्या शस्त्रों से सुसज्जित मनुष्य से दिगम्बर कभी भला लग सकता है? ऐसी ही प्रायः विविध असम्भव और विपरीत

भावनायें सात्विक आनन्द के विषय में हुआ करतीं, और सब के हृदय को ऐसी कँपा देती हैं कि वे इस देश की इच्छा और कामना भूल से भी नहीं करते।

इन सब प्रश्नों को यद्यपि वेदान्त और सांख्य ने भलीभाँति सिद्ध कर दिया है कि यह आत्मा विषयों के संग्रह बिना भी परम सुखी और ऐसा सन्तुष्ट रह सकती है जो विषयों द्वारा कदापि सम्भव नहीं, पर उनकी बातों के सुनने वा समझने को यह मन कभी नहीं चाहता। यद्यपि इन शास्त्रों ने उस सात्विक देश की प्रशंसा कर चाहा कि भूले हुए विषय जंगल में भरमने से ध्वस्त और क्लान्त लोग इस आत्मा रूपी महातरु की छाया का आश्रय ले स्वस्थ हों। अपने भूले हुए घर यानी अपने चैतन्य रूप में स्थित हो शाश्वत सुख के भोक्ता हों। पर इस माया के प्रत्यक्ष लुभावने दृश्य से मोहित सामान्यजन उनसे लाख समझाये और जगाये जाने पर भी कुछ ज्ञान लाभ नहीं कर सके।

भगवान नारद ने जब देखा कि सकल शास्त्रों के अध्ययन कर जाने पर भी इस दरिद्र मन का दारिद्र्य नहीं गया और न अपने स्वरूप को सम्यक् रूप से जान सके तब परम पूज्य भगवान सनक सनन्दन के समीप गए और कहा कि हे भगवन् वह विद्या नहीं जानता जिससे कि मन का सम्पूर्ण दुःख मिट जाय, जिसके उत्तर में उन महात्मा ने उन्हें ब्रह्म विद्या का उपदेश किया। दुःख का मिटना ही आनन्द का उदय होना है दुःख भीतर है न कि बाहर, अर्थात् यावत् दुःख और दारिद्र्य है वह मन ही में निवास करते हैं, जिसको कि ज्ञानियों ने देखा कि ये विषयों की प्राप्ति से नहीं जा सकते हैं। बिना दुःख के नाश हुए सुख कहाँ? इससे ज्ञानियों ने ब्रह्म-विद्या की आवश्यकता देखी, क्योंकि यही एक विद्या है जिसको प्राप्त कर

यह मन सदा के लिए यावत् दुःखों से निर्मुक्त हो शाश्वत आनन्द का भोक्ता हो सकता है।

ज्ञानीजन उस सुख को सुख नहीं कहेंगे कि जिसका परिणाम दुखदाई हो। विषयों के सुख के पश्चात् तथाच अनेक ऐहिक संपत्तियों के संग्रह के अनन्तर मनुष्य, शरीर और मन से दुखी और चिन्तित हो जाता है और कभी कभी तो यह अवस्था अनेक जन्म तक उसका साथ नहीं छोड़ती, अतः ज्ञानीजन कहते हैं कि थोड़ा सुख और बदले में उसके अधिक दुःख का संग्रह करना उचित नहीं है। हम ऐसा सुख नहीं भोगना चाहते जिसके बदले में हमें मानसिक शारीरिक या अनेक जन्म रूपी बन्धन के दुःख भोगने पड़ें।

इसी से ज्ञानीजन जब इस संसार के सुख और उसके परिणाम को विचारते हैं तो उसकी अवस्था उस दार्शनिक सी हो जाती है जिसने जब देखा कि उसके समक्ष भोजन के अखिल सामान चुन दिये गए और सब के मुंह में पानी आने लगा कि कब इस सुस्वादु भोजन को हमारी रसना देवी आस्वादन कर कृतार्थ होंगी, रोने लगा और लोगों से पूछे जाने पर उत्तर दिया कि जब इन अमीरी गरिष्ट विदाही खाद्यों को आप लोग यथेष्ट भोजन कीजियेगा तो आप लोग सुखी होने के बदले दुखी हो जाइयेगा, इन खानों में अनेक रोग छिपे हुए हैं जो आपको दौड़ कर पकड़ लेंगे, क्योंकि यदि एक खाने में गठिया तो दूसरे में वायु शूल उपजाने वाला अंश है, यदि यह विशूचिका उपजाने वाला अंश है, तो दूसरी वस्तु ख़ासी और ज़ुकाम को जारी करने वाली है, अर्थात् अमीरी खाने से रूखा सूखा खाना सदा निरोग और सुखी रखने वाला होता है। वैसे ही स्पर्शज सुख अर्थात् इन्द्रिय जनित सुख परम ललचावने

रूप धारण करते, जिसके पा जाने पर हम सब कदाचित् परम सुखी होने से अनुमित होते, परन्तु विवेक बुद्धि से देखने पर उक्त दार्शनिक की सी अवथा हो जायगी जिसने तत्वतः ज्ञान होने के कारण सब का परित्याग कर दिया। इसी से ज्ञानीजन केवल उन सुखों का अनुभव करते हैं जो शास्त्र विहित दोनों लोक में आनन्ददायक होते हैं, आदि में चाहे वे कुछ कड़ुए और कष्टदायी क्यों न प्रतीत हों।

सारांश यह कि अविद्या और मोह से विक्षिप्त मनुष्य को तृष्णा ईर्षा क्रोधादि की चटुल ज्वाला में जलने से कदापि शाश्वत आनन्द लाभ नहीं सम्भव है। विषय तृष्णा में पड़े पड़े मूढ़ मृग सदृश पिपासाकुलित इतस्ततः भ्रमण से कभी संतोष नहीं आ सकता। क्या विषय माया वा संसार किसी को पूर्ण आनन्द के सिंहासन पर सदा के लिए बैठा सका है? क्या जड़ के संग्रह करने से चेतन को कुछ लाभ हो सकता है? क्या मोह के इस निविड़ अन्धकार में पड़े रहने से सत्य वस्तु का ज्ञान हो सकता है? कभी नहीं। इससे यदि आप सदा के लिये सुखी और आनन्द के प्रसाद पर स्थित हुआ चाहें तो उस परमात्मा जगदाधार ईश्वर के शरण जाइये। तभी आप उनके दर्शन महोत्सव को प्रति दिन अनुभवकर कृत कृत्य हो इस माया के अपार अन्धकार को सहज में पार कर आनन्दमय उज्वल देश में निवास कर सकेंगे अन्यथा कदापि नहीं। भगवद्वाक्य है—

मत्प्रसादात्परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।

श्री शीतलगंज की द्वितीय जन्माष्टमी

सन्तों के परित्राता, दीनों के दाता, अहंकारियों के शास्ता, प्रमादियों को सद्यः महा मायाजल में डूबो प्राण लेने वाले, भक्तों के पास प्रत्यक्ष षोड़षकलावाले ब्रह्म के साकार रूप, कुब्जा से सम्बन्ध कर गोपिका बृन्द के मन में द्वेष दावानल भड़का, बंसी की सुरीली धारा से शान्त कर पुनरपि प्रेम-बीज आरोपण करनेवाले, राधिका चन्दन तरु का प्यारा कृष्ण नाग, उपनिषद् कामधेनुओं का एकमेव दोग्धा और उसके दुग्ध को अपने भक्तवत्सों को पिलानेवाले, प्रेम और भक्ति से अर्पण किये जाने पर पाण्डेय जी के परिपक्व अन्न को स्वयम् साक्षात् रूप से भोजन कर यशोदा जी और पाण्डेय को विस्मित करने वाले, अव्यक्त और अकर्मा होते हुए भी व्यक्त हो अनेक लीलाओं के करने वाले, प्रेमी होते हुये भी बड़े बड़े राजाओं को चराने वाले, बनमाली होते हुये भी बन देवता नहीं, क्रूर अक्रूर के साथ रहते हुये भी अक्रूर, चीर हरण करते हुये भी दुःशासन नहीं, गिरिधर होते हुये भी शेष नहीं, नाग को नचाते हुए भी सँपेर नहीं, बलबीर होते हुए भी प्रमादी नहीं, गोपाल होते हुए भी विश्वपाल, अपूता पूतना के स्तन के दुग्ध को पीते हुये

भी परम पावन, आभीर नन्द नन्दन कहाते हुये भी क्षत्रिय कुमार, तेजस्वी होते हुए भी प्रिय दर्शन, चक्रधर होते हुए भी शिशुपाल हन्ता, घनश्याम होते हुए भी श्यामघन नहीं, कामोद्वेग कराने वाली सरस सुरीली बंसी की तानों को सुना शान्तता के स्वरूप, योगिराज, त्रिपुरारि भगवान शंकर की समाधि को छुड़ाने वाले, भगवान् नारद की मधुर बीणा को मौन करने वाले और सुरलोक के सुरों को अपने महा विरह के सन्ताप में छोड़ गोपिकाओं के हृदय को प्रफुल्ल करनेवाले, प्यारी राधा केतकी का प्यारा सुरीला मधुकर, पराक्रम में शिव से, ज्ञान में सनक-सनन्दन से, धैर्य्य में शेष से, दया में वरुण से, आनन्द जिनकी आत्मा में न कि विषय में, दरिद्रता दरिद्रता ही की, लाञ्छन भृगु लात में न कि चरित्र में, मोह प्रेम से न कि अयुक्त कर्म्म से, भय चित्र में न कि चरित्र में, यदि ब्रज के लिये कलानिधि सा शीतल, तो कंस के अर्थ धूम्र केतु सा कराल, यदि बरसाने का सहृदय दूलहा तो नन्दगांव का नटखट अहीर, यदि यशोदा के अर्थ प्रिय बालक तो राक्षस दल के लिये दावानल उपजाने वाला स्फुलिङ्ग, यदि गोपिका हृदय सरोवर का कलहंस, तो भगवती राधिका के एक ही प्रिय अनुचर, कालीदह में कूदनेवाले, गोपिकाओं से प्रेम रार मचा ब्रज को सनाथ करने वाले, हम सब के जीवन दाता और प्रत्यक्ष प्राण, प्यारे श्रीकृष्ण-चन्द्र ने हम सबों के यहाँ पन्द्रह दिन के लिये अतिथि रूप से आकर इस परिवार और सारे घर को कृत कृत्य और सजीव कर, पुनरपि द्वापरयुग के सुखों का अनुभव कराया।

'अबकी बार यद्यपि घनश्याम आये पर काले घन न आये। यद्यपि मुरलीधर ने बंसी टेरी पर मेघों ने आकाश में स्निग्ध गम्भीर गर्जन के मिस अपने यहाँ मृदङ्ग नहीं बजाया। यद्यपि

दामिनी सी दमकती भगवती राधिका पधारीं परन्तु दुष्टा दामिनी आकाश से उनके पैरों को चूमने न आई। ठाकुर जी से यह उलहना इसलिये दिया गया कि यदि इन सब देवताओं की बेरहमी या प्रजा की नादानी या चाहे जो कुछ हो जिससे कि अवर्षण रहा और नादान मेघ कलियुग के कहने में फँस ठाकुरजी की सेवा में नहीं उपस्थित हुये, इसका उलहना यदि इन से न दिया जाय तो किस से, बड़ों की शिकायत यदि बड़ों से न की जाय तो किस से। पर शास्त्र कहता है कि घर आये अतिथि से यों अनेक उलहने और झगड़े की बातें कहनी आतिथेय के विरुद्ध है। किन्तु अपने अतिथि भी ऐसे हैं कि जिनसे कहना और न कहना दोनों तुल्य है, क्योंकि वे दोनों ही जानते हैं।

आज जन्माष्टमी है। बारह बज गये हैं। लम्बे लम्बे काले बादलों से आकाश आच्छादित है। अंधेरी राक्षसी ने सारे जगत को अपने उदर में रख लिया है और मारे ईर्ष्या के एक पत्ती भी दिखलाना नहीं चाहती। वायु यद्यपि देवता है, पर इस समय वह भीमनादकारी राक्षससा लखाई पड़ता है। ऐसे समय हम भक्ति भावना के तीव्र चञ्चल तुरङ्ग पर आरूढ़ हो कंस के द्वार पर खड़े हैं। ज्योंही देदीप्यमान अद्भुत अपूर्व बालक ने बसुमती के अखिल पुण्य, कंस के दुर्भाग्य और देवताओं के परम सौभाग्य से, इस मर्त्यलोक को स्वर्ग किया, मैंने देखा कि जितने पहरुये थे वे ऐसी गाढ़ निद्रा में निद्रित से हो गये, मानो वे निद्रा का स्वप्न देख रहे हैं। जो जहाँ था जड़ सा खड़ा रह गया, पर काष्ठ और लौह के बृहत् कपाट ऐसे चैतन्य हो गये कि अपने अन्तर कपाट को खोल दिया। मेघ ने अपनी महती घोषणा से मानो इस महा पुरुष के आने की सलामी

दागी। विद्युल्लता मारे आमोद के मीराबाई सी नभ में नाचने लगी। बूँदियों के मिस देवता लोग पुष्प वर्षा करने लगे। प्रकाण्ड बुड्ढे शरीर वाले दिग्पाल और महर्षिगण मंगल पाठ करने लगे और यह अशान्त मर्त्य लोक क्षण के लिये शान्त हो गया। वसुमती तो तृणों के मिस मारे आनन्द के रोमाञ्चित हो गई। अशान्त झंझट मचाने वाला, बकवादी वायु भी शान्त हो गया। ऐसे मंगल में विस्मित बसुदेव ने देखा कि उनके हाथ की हथकड़ी और पैरों की बेड़ियाँ उन्हें छोड़, सज्जन सी, जा अलग पृथ्वी पर पड़ी हैं जिससे उन्हें यह निश्चय प्रतीत हुआ कि मार्ग में हमको इस बालक को नन्द के द्वार पहुँचाने में कोई आपत्ति न पड़ेगी। यह समझ, दुखी देवकी से लड़के को ले वे नन्द गाँव की ओर चले। यद्यपि रात अँधेरी थी पर बसुदेव ने देखा कि जिस ओर वे जाते हैं उस बालक की कृपा से अँधेरी भी उँजेली हुई जाती है। उधर लोमड़ी आगे आगे मार्ग दिखाती जाती है और अनुकूल पवन शीघ्र गमन की प्रेरणा करता। क्षेमकारी पेड़ों पर बैठे बैठे उन्हें मंगल गीत सुनाती और टिटिहिरी मारे प्रसन्नता के खिलाखिलाती पर लजीली औरतों सा कुछ कह न सकती।

इस भाँति जब वे उत्तुङ्ग तरङ्गों से लहराती कालिन्दी के तट पर पहुँचे तो प्राकृतिक मनुष्यों का सा उनका सब साहस छूट गया। जब उन्होंने अपनी आत्मा से सम्मति ली तो वह कहने लगी कि अरे नादान! तू नहीं जानता कि सारे लोक के ठाकुर को तू अपनी गोद में लिये है, इन्हीं से तो समुद्र नदी नद निकलते हैं। तुझे क्या चिन्ता है। फिर क्या था, वह निश्चिन्त यमुना जी में घुस पड़े पर तौभी जैसी मनुष्य की बुद्धि होती है, वे बालक को, जिसके चरण कमल को चूमने के हेतु

यमुना जी बड़ी चाह से मौजें मारतीं, हर हर करती हुई बढ़ती आतीं थीं ज्यों ज्यों उठाते गये त्यों त्यों वह बढ़ती ही गईं, और उस कृपानिधान ने अपने चरणों को उनके आर्द्र ओष्ठों को पवित्र करने के लिये बढ़ाया, जिन्हें चूम कर वह अपने को कृतार्थ और निहालमान, ऐसी हट गईं कि क्षण भर में क्षुद्र नदी सी पार करने योग्य हो गईं। चकित बसुदेव इस लीला को देख, जान गये कि यमुना क्यों बढ़ती थीं और मेमने से उछलते वे उस पार पहुँच ही तो गये।

वहाँ देखा कि नन्द गाँव ऐसा सो रहा है कि कुत्ते भी भूँकना छोड़ दिये हैं और बस्ती उस नायिका सी हो रही थी कि जो सरे शाम से शराब पीते पीते शिथिलगात हो पर्य्यङ्क पर बेहोश पड़ी हो वा जैसे किसी जादूगर ने जादू की छड़ी अपनी महिमा दिखाने के लिये इस गाँव पर फेरी हो और उसके सारे जीव जड़ से हो गये हों। ऐसे प्रशान्त समय में बसुदेव, बाबा नन्द के घर पहुँचे। वहाँ भी देखा कि नन्द के घर के कपाट खुले हुए थे, मनुष्य बेधड़क सो रहे थे, कोई रोकने वाला नहीं, शीघ्र ही अपनी सकल सम्पत्ति को साश्रु यशोदा की गोद में सौंप और भगवती की काली कला को अपनी गोद में ले कंस के द्वार पर सिधारे। परन्तु मैं तो उनका साथ न दे कर नन्द गाँव ही में रह गया।

थोड़े ही काल के पश्चात् नन्द का गृह दिन सा जागृत हो गया ; बाबा नन्द मारे उत्साह के कूदने लगे। यशोदा तो अपने बच्चे की शोभा देख आनन्दाश्रु से आप्लावित हो गईं। नौबत घहरने लगी, मानो सुरलोक की सम्पत्ति मर्त्यलोक में आ बसने का समाचार मारे अहंकार के बसुमती नौबत मिस सुरलोक को भेजती है, अथवा राक्षस कुलों को अब भी चैतन्य

होने का प्रिय सन्देश देती, या यों कहिए कि नन्द गाँव स्वयम् नौबत के मिस गाने लगा। सुनते ही सुर लोक से सुर लोग भूलोक के महोत्सव को देखने चले। भक्तों के मौलिमुकुट, प्रेम की पवित्र नदी में सदा निमज्जन करने वाले, एक घर से दूसरे घर में बिना पूछे समाचार पहुँचाने वाले भगवान् नारद तो मारे आनन्द के सारी रात आकाश में वीणा बजाते, और नर्तन करते ही रह गये। इस पुण्य अवसर पर सप्त ऋषियों ने व्योम में बेद पाठ किया। जब योगियों की प्राणप्यारी, वर्ण में भगवती राधिका सी, शान्तता में भगवती पार्वती सी, सदा सतयुग में निवास करने वाली, शकुन्तला सी रसीली सुन्दरी ऊषा भगवान् की अदृष्ट मंगल आरती साज चुकी, तो कैलाश निवासी आशुतोष, योगिराज, भगवान् शंकर आज प्रातः काल ही अपने प्रकाण्ड व्याघ्र चर्म को लपेट, भयङ्कर तथापि रूपवान् सर्पों से अपने जटाजूट को बाँध, इत्र सा सारे शरीर में बड़े शौक़ से भस्म लगाए, हाथ में शृङ्ग ले, कैलाश छोड़, भगवान् का दर्शन भिक्षा माँगने को नन्द के घर आ खड़े हुए। यशोदा नन्द के पैरों पर पड़ रही हैं कि वे ऐसे विकराल स्वरूप वाले तपस्वी के समक्ष बच्चे को न ले जायँ। जिसके उत्तर में नन्द कहते हैं कि ये तो प्रत्यक्ष शंकर से दीखते हैं। अन्ततः नन्द के बहुत हठ करने पर उस देदीप्यमान, तेजस्वी बच्चे का दर्शन भगवान् शंकर को प्राप्त हुआ लेकिन भगवान् शंकर को गोपिकाओं ने सैकड़ों झिड़कियाँ और अनेक अनकहनी बातें मार्ग में सुनाईं कि ऐसे समय पर ऐसा अभव्य दर्शन देने का प्रातःकाल ही क्या प्रयोजन था। यदि शिव होते तो उन्हें कैलाश छोड़ने की क्या आवश्यकता थी।

भगवान् शंकर के जाने के पश्चात् मैंने देखा कि हर गाँव

से, हर घर से, हर कुटी से गोपिकायें भगवान् की मंगल आरती साजे चली आ रही हैं मानों नूतन प्रभाकर की सोनहरी किरणें व्यक्त रूप में आकाश से पूजा करने चली आ रही हैं। वे अपनी सुहावनी मंगलाचार की गीतों द्वारा वायु से कहतीं, कि तू स्वर्ग में यह संदेश कह दे, कि यदि देवता वर्ग अपना जीवन सफल करना चाहें तो आज इस अपूर्व मंगलोत्सव का दर्शन करें। उनके पाज़ेब कड़े और छड़े की झनकार से शान्त मन बैठा हुआ सारस भी तड़ाग में कूदने लगा। थोड़े काल के पश्चात् नन्द का घर गोपिकाओं से भर गया। नन्द और यशोदा यह नहीं जानते थे कि कौनसी ऐसी प्रिय वस्तु है जो उन्हें न दे दें। आज ऐसा उत्साह और मंगलमय प्रातःकाल कभी ब्रज ने नहीं देखा था। ऐसी अपूर्व मंगलमय लीला और भगवान् के अपूर्व जन्मोत्सव को भगवती भक्ति देवी की कृपा से देख, मैं प्रसन्न मन घर के ठाकुर जी की मंगल आरती साजने को लौट पड़ा।

अब की बार ठाकुर जी के पधारने से यह निश्चय हो गया कि भक्ति योग से और अधिक सरल तथा प्यारा दूसरा योग नहीं है। क्योंकि जिस दिन से घर में ठाकुर जी पधारे छोटा बड़ा सब उनके आतिथ्य और मेहमानदारी में तत्पर था। कोई अनेक प्रकार के पुष्पों के भाँति भाँति के आभूषण रचने में अस्तव्यस्त रहता तो कोई चित्र विचित्र सहस्त्रों मालायें बनाने में मालकारों के भी कान काटते। यदि कोई उनके पालने को नित्य नये धज से सजाने तथा च शृङ्गार करने का काम करता, तो कोरम ने उन्हें अनेक अद्भुत अभिनयों के दिखाने का महाभार अपने सिर पर लिया। इन दिनों जिस ओर आप घर में जाइये उस ओर ठाकुर जी ही की बातें सुन पड़ेंगी। यह

देख कि सारा घर उस पूजनीय अतिथि की परिचर्य्या में सनद्ध है, मैं फूले अङ्गों न समाता और यही कहा करता कि ठाकुरजी की कृपा से यह शीतलगंज आज गोकुल बन रहा है। कोई यदि माला गूंथ रहा है तो कोई अपना पाठ तैयार कर रहा है। कोई उनके लिये प्रसाद प्रस्तुत कर रहा है तो कोई अगर और चन्दन से उनकी कुञ्ज कुटी को सुवासित कर रहा है, और कोई लता और बन बेलरियों को लिये चला आ रहा है। सारांश ऐसा और किसी योग में सब के सब मनुष्य, भक्ति पूर्वक, ठाकुरजी के कर्म में रत नहीं हो सकते क्योंकि शरीर-धारी को व्यक्त उपासना सहज मालूम पड़ती है।

अब की बार सब छटाओं का न वर्णन कर हम केवल तीन अन्तिम छटाओं का दृश्य आप लोगों को दिखायेंगे।

कदली निकुञ्ज।

भक्त पंडित ग्रेजुयेटों का शृङ्गार करना दूसरा है और भाड़े वाले बेदिल पण्डे पुजारियों का शृङ्गार तो जैसा होता है आप सभी जगह देखते हैं। इसी से हमारे इस अपूर्व ठाकुरजी के शृङ्गार का चित्र रसीली कविता चित्रकारिन खींचने आती है, जिसमें कि और ठौर के भी विवुध जन इस विलक्षण छटा के आनन्द का अनुभव कर सकें।

हमारे यहाँ केले का बन है, इसी से सहस्रों खम्भों वाला चिक्कण मनोहारी मन्दिर कदली स्तम्भों का बन जाना प्रायः सुलभ हुआ करता है। आज ठाकुरजी का पालना भी कदली ही का होता है, जिनके श्वेत और हल्के हरे रंग के खम्भों के ऊपर फूलों की ऐसी पंडिताई से चित्रकारी की जाती है, कि यदि प्रकृति ही स्वयम् इन खम्भों पर फूल सजाने को बुलाई जाय

तो इतना ही कर सकेगी। इस संगमरमर के मन्दिर के बीच यदि आप बैठिये और भक्ति और कविता से हृदय आपका पूर्ण रूप से भींगा हुआ है, तो इस मन्दिर को देखकर यही कह दीजियेगा, कि निश्चय ठाकुरजी के पधारने योग्य यही मन्दिर है। हम तो मारे ख़ुशी के इस मन्दिर में बैठे बैठे ठाकुर-जी को धन्यवाद देते, पुजारी को धन्यबाद देते और उनके परिश्रम तथा नैपुण्य को सराहते, फिर अपने केले के वन को आशीर्वाद देते और कहते कि यद्यपि तुम सब जड़ हो पर आज ठाकुरजी की दया से अब तुम चैतन्य लोक को प्राप्त होगे। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस कुटी के देखने वाले और यथार्थ सराहने वाले तो लक्ष्मण ही थे यदि वे देखते और द्वेष-देवी उनकी जिह्वा को रोक न लेतीं, तो वे झट से कह बैठते कि चित्रकूट वाले पर्णकुटी से यह सहस्रों गुना अच्छा है, जिस पर हम सिर झुका कर कहते कि यह सब आप की क़द्रदानी है।

बेली बन बिलास।

जैसे कांग्रेस या पार्लियामेण्ट में केवल प्रधान प्रधान पण्डित जन ही चुन कर भेजे जाते हैं, वैसे ही हमारे ग्रीनहाउस के बनस्पतियों में से जो सब से दर्शनीय, या प्रफुल्लित और रूपवान हैं वे ही ठाकुरजी की सेवा में भेजी जाती हैं और निश्चय इन सबों के इकट्ठे हो जाने से आज भगवान का मन्दिर फरनरी की शोभा धारण किये है।

हमारे सरकार का यद्यपि वर्ण श्याम है, पर तब भी उनके रूप की लावण्य पर लाखों कामदेव निछावर किये जा सकते हैं। लम्बी लम्बी कोरदार त्रिपथगामिनी आँखें ऐसी मनोहारिणी हैं कि प्रकृति ने उनके ऊपर भौंहो मिस काला कज्जल लगा दिया है कि जिसमें नज़र कहीं न लग जाय। प्रशस्त भाल पर

केसर की खौर ऐसी जान पड़ती मानो सारे शास्त्रों का व्यक्त वा अव्यक्त प्रवाह है। मकराकृत कुण्डल कानों में ऐसा सोहता मानों दिशाओं की सकल सम्पत्ति यहीं लटक रही है। कविजन कहते हैं कि जब कामदेव ने देखा कि सारे रूप की सम्पत्ति और खानि इसी ठौर आ बसी है तो लज्जित हो अपना मकर केतु इन्हीं को दे दिया वा गोप कामिनियाँ जो भगवान् के हृदय में निरन्तर बस रही हैं, मकराकृत कुण्डल के मिस अपने सारे आभरण को बाहर छोड़ भीतर प्रवेश कर गई हैं कि जिनकी रक्षा बाल रूपी व्याल सतत कर रहे हैं। माया कैसी उलझाने वाली है, पर तौभी कैसी प्रिय है, इसके प्रत्यक्ष दृष्टान्त भगवान् के घूंघर वाले बाल हैं। कहते हैं कि जब प्रकृति भगवान् के इस शुभ शरीर को रच चुकी, तो देखकर अति प्रसन्न हो ठोढी पर एक अँगुली से मार दिया, जिससे कि वह ईषत् डूब गई और रूप के सोने का ठौर और चक्षुओं की विश्राम स्थली हो गई। लाल और श्वेत गुञ्जों के गुथे हुए मुकुट पर सहस्राक्ष की समता करने वाले मयूर के पंख ऐसे सोहते हैं मानों कविता देवी मोर की आँखों मिस शोभा निरखने आईं, और गुञ्जों के मिस हँसती रह गई पर कुछ कहते न बन पड़ा। करिकलभ के शुण्ड से लम्बे लम्बे हाथों पर मालाओं के भुजबन्द ऐसे भले लगते हैं मानों वसुमती ने पुष्प मिस अपने हाथों से मारे प्यार के उन्हें पकड़ लिया हो। लाल, पीले, श्वेत और अनेक वर्ण के पुष्पों से सजा धजा वक्षस्थल आकाश में निकले हुये नक्षत्रों की भाँति लख पड़ते वा उससे भी अधिक मनोहर क्योंकि ये पुष्प नाना वर्ण के हैं। हाथ में केवल बंसी है जो कि जगत को एक ही बार मूर्छित करने में समर्थ है। कहते हैं कि न ऐसी बंसी कभी बजी थी, न फिर बजेगी, जिसे सुनकर अचाञ्चक

गोपिकागण और राधिका ऐसी उन्मत्त अवस्था में हो जाया करतीं थीं कि इस विष भरी बाँसुरी को कभी बजने नहीं देती थीं। और कौन जाने इसीलिये बंसी प्रायः चुरा ली जाती थी। ऐसे रूपवान् प्रतापवान् महिमावान् भगवान् कृष्ण हमारे नव बनस्पतियों के हिंडोरे में विराजमान हैं जिनके वायें, दाक्षिण्य में लक्ष्मी सी, सत् चरित्रता में अनुसूया सी, नयनों की चपलता में चपला सी, रूप में गर्व्वीली भगवती रति सी, वर्ण में ओस से क्लिन्न गुलाब वा कमल सरीखी, दारुण चरित्र वाले कृष्ण के साथ रहते हुए भी रसीली, वा कृष्ण हृदय सरोवर में विचरने वाली मृडालिनी सी, कृष्ण पक्ष में रहते हुए भी रानियों की रानी, जिसके रूप और दाक्षिण्य को देखकर कैलाश में बसने वाली हिमाद्री के शान्त हृदय में भी ईर्ष्या और द्वेष्याँ की ऊर्मियाँ उठने लगीं थीं, श्याम की विद्युल्लता, बरसाने की द्वितीय चन्द्रिका सी भगवती श्री राधिका पधार कर, सारे विश्व के दुःख को हरती हैं।

देखिये सुम्बुल और पताल निम्ब भगवान को गोपिकाओं की भाँति चारो ओर से घेरे हुए हैं और प्रौढ़ा रतिप्रीता गोपिका सदृश फर्न लम्बी लम्बी तन्तुओं से, लज्जा और अपने गुरुजनों का भय छोड़, सब के सामने ही गाढ़ालिङ्गन कर रही हैं। मेडिन हेयर (सुम्बुल) मारे लज्जा के अज्ञात यौवना सरीखी इस धृष्ट भाव को देख दुबली हो गई है। सेण्टोनिसविकटेटा वा नयन पत्री सहस्राक्ष सी उनके पैरों को चूम रही है और पिलानियाँ पूतना सी पड़ी अपने प्राण का दान माँग रही है। इन्हीं वनस्पतियों के बीच में एक कृत्रिम पर्वत से, लम्बे लम्बे शीशों की चट्टानों पर से एक झरना झूमता झामता भगवान् के दाहिने बगल में रहने के कारण बड़े अभिमान से झर झर

शब्द करता बहता दर्शकों का मन हरता है।

विविध वीरुध विहार।

तीसरे शृङ्गार में प्राचीन काल में वृन्दाबन कैसा बन-बेलरियों से आच्छादित था जिसे नादान भक्तों ने साफ़ कर डाला इसकी समा दिखलाई जाती है। देखो आकाश से उतरी हुई माधवी माधव के चरणों को चूम रही है। कृष्ण के रंग की समता करने वाली कृष्णकान्ती पुष्प और अपने तन्तुओं की सप्रेम भेट दे मानों यह कह रही है कि देखो तुम्हारे प्रेम में हम भी श्याम हो गई हैं। श्रावणी ने भगवान के पैरों में अपने रक्त पुष्पों के मिस इस शुभ अवसर पर महावर लगाया और मन्दार पुष्पो, भक्त रसखान सी, खेलने के लिये श्वेत और बैगनी रंग के छोटे छोटे प्याले समर्पण कर, अपने जीवन को सफल मान रही है। राधालता ने तो इतना पुष्प और पल्लव दिया कि केले के मन्दिर का पता ही नहीं चलता था क्योंकि उसकी हरियाली सारे मन्दिर को श्यामायमान कर रही थी। विरह सन्ताप से कातर और दुर्बल, जिसके पल्लव केश बिखरे हुए अलग अलग भूम रहे हैं, अधरासव के पान हेतु पुष्प मिस अपने ओष्ठ पट को खोले हुये, चन्द्रावली सी, इश्कपेंचा चुपचाप अलग खड़ी है, और हरी हरी लम्बी लम्बी शखाँओं वाली वे झगड़े के झगड़नेवाली, कुब्जा प्रौढ़ा नायिका सरीखी, वेतस लता द्वार पर बिना बुलाये हँसती खड़ी है।

अब आपको दिखाना चाहिये कि ठाकुरजी जङ्गल में मङ्गल कैसे करते हैं और यह दैवी कोरम अपने असीम प्रेम और भक्ति से अभिनयों को कर किस रीति से ऐसे प्रिय पूज्य पावन अतिथि को प्रसन्न करती है। और फिर भी वह सर्वथा अपने हृदय से यही मनाती है कि इस जङ्गल में ऐसे अभिनयों का

हो जाना ठाकुरजी की कृपा के अतिरिक्त और कौन कर सकता है।

अवर्षण के हेतु दैवी कोरम ने भी, प्रार्थी हो, यही विचारा कि पहिले दिन इन्द्र सभा की जाय जिसमें कि इन्द्र महाराज प्रसन्न हों, पर वे यह समझ कि यह उत्सव भगवान् कृष्ण के प्रसन्नार्थ हो रहा है, हमारी प्रसन्नता वा पूजा के अर्थ नहीं, इससे रूठे ही रह गये।

दूसरे दिन का अभिनय हिमाक़त उल्लाह बेग नाम का था। जिनकी डाढ़ी यद्यपि लम्बी और सफ़ेद थी पर कर्म्म कृष्ण थे, शरीर जीर्ण हो गया था पर मन जवान ही था। धर्म्म करते पर दम्भ से, न कि ज्ञान से। इस अवस्था और इस श्वेत कुन्तल पर भी सीरी उसासें लेते न लजाते, और भगवान् कुसुमायुध से एक पकड़ लड़ जाने का दावा रखते थे। यद्यपि उन्हें इश्क़ माशूक़ के रूप में नित्य झाड़ू ही मारता पर वे उसकी गैल न छोड़ते। लड़के हिमाक़त उल्लाह वेग से बड़े प्रसन्न थे। वे उनकी हर एक अदा पर हँसते और खूब शोर मचाते, जब कि हज़रते इश्क़ उनकी फ़ज़ीहत करते थे। और सच तो यह है कि सारी सभा इस विचित्र बुड्ढ़े रसीले नायक से अति प्रसन्न हो हँसती रही और कौन जाने नाटक के पश्चात् स्वप्न में भी द्रष्टागण हँसते ही रहे हों? यद्यपि इन्होंने सभा को तो प्रसन्न किया, पर धर्म्म महाराज रूठे ही रह गये, क्योंकि सत् चरित्रता उनसे मूँ मोड़ भागी थी। पर चूंकि यह शाही दर्बार है और भगवत् जन्मोत्सव है इससे यह बुलाये गये थे, क्योंकि इनसे अधिक रसीला और कोई भाँड़ नहीं मिल सकता था।

तीसरे दिन कवियों के मौलिमुकुट, रसिकों को रसज्ञता का पाठ पढ़ाने वाले, शृङ्गार रस के एक ही निपुण चित्रकार वा

अद्वितीय शृङ्गार कर्ता, मेघ को दूत बनाते हुए भी सहस्राक्ष वा यक्ष नहीं, नाटक लोक रचयिता होते हुए भी ब्रह्मा नहीं, शृङ्गार रस के परमाचार्य्य होते हुये भी कुसुमायुध नहीं, जिस की तपोबन में विहरती हुई कविता देवी वेश्या वीथी में भी विचरती थी, ऐसे महानुभाव कालिदास का परम प्रिय नाटक शकुन्तला खेला गया था। जिसकी नायिका सुकुमारता में जूही सा, नख़रे में उर्वशी सी, दिल लगाने में ज्यूलियट सी, रसीली दमयन्ती सी, सत्चरित्रता में भगवती अरुन्धती सी, प्रभा में लक्ष्मी सी, बिना अपराध पति से त्याग किये जाने पर स्नेहमयी सीता सी थी। यदि गुलाब और कमल ने अपना रंग सौपा तो मृगी ने बड़ी बड़ी आँखों का उपायन दिया, यदि मालती ने सरसता का पाठ पढ़ाया तो विजाती ने मनोहरता का, यदि सारसों ने मन्थर गमन सिखलाया था तो खंञरीटों ने नैनों की चञ्चलता, यदि सुम्बुल ने उसे नम्रता का उपदेश दिया तो लज्जावती ने लज्जा और व्रीड़ा सिखलाई थी। यह शकुन्तला सारे बन की सम्पत्ति थी वा बादशाहज़ादी थी कि जिसे सारे बन के जीव और बनस्पतियों ने भी अपने अपने अपूर्व रूप और गुण का उपायन दिया था कि जिससे इस अरण्य की पाली पोसी अप्सरा की बेटी रूप और गुण में अद्वितीया हो, एक महामहिम महाराजाधिराज के मन के हरने में समर्थ थी।

ज्योंही यवनिका उठी और दुष्यन्त हरिन के पीछे पीछे दौड़ता हुआ, सारथी से अनेक बातें, उस मृग की तीव्रता तथा अपने रथ के वेग की प्रशंसा करता और यह कहता हुआ कि अब वह मृग को लेही लेना चाहता है, निकला कि दो तपस्वी जिनके मस्तक जटाजूट से सुसज्जित और प्रशस्त भाल पर

भस्म विराजमान थी, उस मृग के त्राण करने को दौड़े और अधीर स्वर से कहा कि हे राजा यह आश्रम का मृग है इसे मत मारो मत मारो। तुम्हारे बाण क्रूर शत्रु के वक्षस्थल को विदीर्ण करने के योग्य हैं, न कि रुई से भी मृदुल इस मृग के शरीर को। जैसे कि शृङ्गार रसके भाण्ड, प्रेम की प्रत्यक्ष पान भूमि वा यावत् युवक जनों के मन को प्रेम की पुनीत नदी में स्नान कराने वाले, प्रौढ़ जन के हृदय में पुनरपि प्रेम बीज को हरित करने वाले, और श्वेत कुन्तलवाले बुड्ढों को भूली प्रेम की गति स्मरण करानेवाले रोमियो जूलियट का पढ़ना आरम्भ करते वैसे ही—एक पण्डित समालोचक का कथन है—हमें यह समझ पड़ता है कि मानों किसी दिव्य पुरुष ने अपनी कृपा से हमें एकाएक स्वर्ग के परम अद्भुत उद्यान में ले जाकर बैठा दिया है, वैसे ही आज परदा खुलते ही यह जान पड़ा कि मानो कालिदास की दया से इस छोटे से नेपथ्य में सतयुग आ बसा है। जिसमें धर्मज्ञ राजा और तपस्विओं के पुण्यप्रद दर्शन हुये, तपोवन के कन्याओं की प्रिय लीलायें लखाई पड़ी, जिन लता और वृक्षों को उन्होंने लगाया था उनमें उनका प्रेम निज परिवार के प्राणी सा झलकता था, प्राचीन काल में घर आये अतिथि को कैसा वे पूँजतीं थीं, इत्यादि प्रत्यक्ष देख चित्त हर्ष से आप्लावित हो गया। भगवान् की असीम दया और अनुराग कवि के परिश्रम से सहस्रों वर्षों का पुस्तक में बसने वाला विचित्र चित्र पुनरुज्जीवित सा कर दिया गया था। क्योंकि शकुन्तला को अनुराग जी ने गीत नाट्य रच कर दिखाया। जिसे देख पंडित जब कहते थे कि कालिदासपन किसी कोर से नहीं गया है, पर हम यही कहेंगे कि यह सब भगवान् कृष्ण की अपार माया है।

अस्तु, जैसी कुछ प्रिय जन्माष्टमी हमारे कन्हैयाजी श्री शीतलगंज में किया करते हैं और जिस भाँति इस छोटी सी कोरम और इस परिवार को अपना दास बना डाला है, वह कदाचित् अन्यत्र दुर्लभ है। जब वह परमात्मा चाहता है तब यों ही जंगल में मंगल किया करता है। पर हम सब सच्चे दास और भक्त हो उसपर पूर्ण रूप से निर्भर नहीं करते नहीं तो वह अवश्य नित्य ही नये मंगल और उत्सव दिखाया करे।
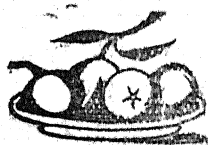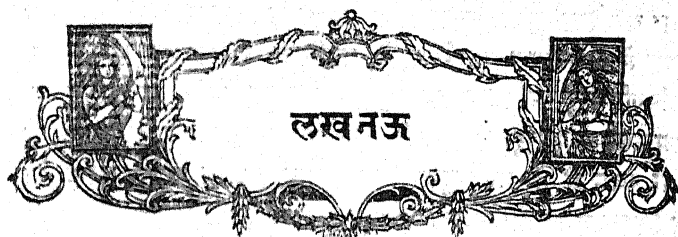
कल लोक को अपने पराक्रम से पराजय करने वाला, अरस्तू के शिष्य-विषयक मनोकामना का पूर्ण पादप, जिसका पताका पराजय व्यभिचार की लज्जा से कुलबधू सरीखा सिकुड़ कर कभी लोक में हास्यास्पद नहीं हुआ, ऐसा विश्व-विजयी सिकन्दर का यह प्रयत्न कि सारा विश्व यथेन्स सा परिडत, विद्वान दार्शनिक, तथा सब कलाओं में कुशल हो जाय; नहीं हो सका; परन्तु रसिकों के मौलि मुकुट, कलियुग के ययाति, काम के एक ही सुपुत्र, नारद से सङ्गीतप्रिय, द्रौपदी से नृत्य में कुशल, वात्सायन से काम कला के विद्वान्; और उनके सूत्रों के हाफ़िज़, बेपरवाही जिनके दामनों में लटकती घूमती, भगवान् कन्दर्प जिनके हृदय देहली में बसते, आखें उन्मत्त भ्रमर सा सदा अमल कामनियों के कमलानन बन में विहार करतीं, और जिनके कर्ण रात दिन अनेक सङ्गीत सरिताओं को समुद्र सा पीते हुए भी नहीं अघाते, रूप-राशि समुद्र के सुप्रसिद्ध मकर, अगस्त्य सा रस समुद्र पीकर भी, चाह बड़वानल जिसका न शान्त हुआ, नल नील समान

मुमुक्षियों का सेतु बांधने वाले, इन्द्र से मर्त्यलोक में इन्द्र सभा करनेवाले, सज्जनता और भक्ति के निधान, योगियों सा ग्रीष्म में जलशयन करने वाले, कामिनी कमल वन के ब्रह्मा, स्वैरिणी मधु मक्खियों के भृङ्गराज, क्षमा में ईसा के तुल्य, कामकला के त्रिभुवन विजयी, उदारता में समुद्रसे, क्रोध जिन्हें कभी स्वप्न में भी नहीं हुआ ; एपीक्यूरस और चार वाक को भी शिक्षा देनेवाले, नवाब वाज़िदअलीशाह की यह मनोकामना कि सारा अवध और लखनऊ के मनुष्य सभ्य, सुशील और सङ्गीत प्रिय हो जायँ, अहर्निश प्रेम की विविध गूढ़ ग्रन्थियों को सुरझाया करें, निश्चय एक एक कर सफलीभूत हुई।

इंगलैंएड की गवईं और कुटियों में चाहे भगवान् कन्दर्प न विचरते हों, पर लखनऊ के तो हर गलियों में वह देख पड़ते हैं। दाक्षिण्य, चतुराई और नखरों में यहाँ की माशूक़ स्वर्गीय माशूक़ों को भी लजा देती है क्योंकि इन विषयों का पाठ यदि अप्सरा भी आवें तो उन्हें भी ये पढ़ा देने में समर्थ हैं। सकल लोक विमोहिनी भगवती सङ्गीत देवी, यदि कहीं बसती हैं तो यहीं। यदि 'मुर्ग़ बिसमिल' की लीला निरखना चाहते हो तो यहीं देख सकते हो, मजनू सा अपने प्रियतमा का नाम ले ले आह भरते हुए, धूलि धूसरित केश किए दीवाने आशिक़ यदि कहीं देख पड़ते हैं तो लखनऊ में। यदि प्रेम से मूर्छित दीवाने दिलों का भी सत्कार मान वा पूजा कहीं होती तो इसी नगरी में, यदि मनुष्य कहीं भी बिना दाम कौड़ी के सारे जीवन के लिए गुलामी का पट्टा लिखाते हैं, तो लखनऊ में। माशूक़ों की जूतियाँ, लात और डण्डे खाकर भी उनके शरीर के कल्याणार्थ मसजिद और मन्दिर में दोआएँ और मन्नतें मानते हैं तो यहीं के लोग। यदि ग़म ग़लतों की

ग़ोल कहीं भी देख पड़ती है तो यहीं, और यदि पुराने ज़माने के ऐतिहासिक अलहदी कहीं भी पाये जाते हैं तो यहीं। यदि प्रेम पादरी कहीं भी घर घर शिक्षा देता है तो लखनऊ में। अफ़ीम खाने में चीन को मात करने वाले, विषय परायणता में पेरिस को भी लजाने वाले, मट्टी के खिलौने बना यूरप की कारीगरी को द्वेष उत्पन्न कराने वाले, और सिर्फ़ मुहर्रम के मातम के मनाने में इंगलैंएड की साल भर की संजीदगी और शान्तता को भी हरानेवाले, जहाँ शास्त्रों के आचार्य्य स्वैरिणी और वार बधू मानी जातीं, न कि परिडत मोलवी वा प्रोफ़ेसर, शास्त्रों के विविध गूढ़ अर्थ उनके कटाक्षों में, परिष्कार उनकी मन्दस्मित में, स्वर्ग और ब्रह्म लोक का सुख उनकी कृपा में और विज्ञान, काम कला में, मानते। जहाँ काबा, मसजिद वा मन्दिर प्रियतमाओं का गृह माना जाता; जहाँ दिल का सौदा होता न कि अर्थ का; जहाँ नेत्र दलाली करते न कि दलाल; विपत्ति वा दुःख माशूकों के रूठने में माना जाता; भौहें कमान का काम करतीं; बरौनी भाला सी चुभती और तीखी तिरछी निगाहों का सामना तेज़ तलवार का सामना समझा जाता; जहाँ कुसुमायुध की कथा सुनी जाती, न कि सत्यनाराण की; यदि किसी की पूजा अर्चना की जाती तो माशूक़ों की, जहाँ के लोगों की अहर्निश आखें अफ़ीम के पीनक से उन्मीलित हुआ करतीं, न कि योग निद्रा से; अत्यन्त कृषित और दुर्बल तनु, विषय परायणता से, न कि तप से; मुख में बटेर बसती न कि राम वा रहीम; हाथ में सुमिरनी फेशन के लिए रहती न कि भजन के अर्थ, असभ्यता चित्रों में, अश्लील भाषण भाड़ वा शुहदों में, तोड़ों की झनकार नृत्य में न कि द्रव्य में, अहंकार और औदार्य्य आ-

तिथ्य में, देखे जाते । निदान-वह खुशबू जो हमारे रसीले नवाब ने फैलाना चाहा था वह अब तक विधि की दया से सारे अवध में वर्तमान है ।

वसुमती को अपने वचन पवन की अद्भुत शक्ति से पुष्पों मिस स्मित कराने वाला प्यारा वसन्त, यदि कहीं अपने सारे समाज से आता देख पड़ता है तो लक्ष्मणपुर में । कविजनों ने इसे मारे प्यार के पुष्पों की नगरी वा रानी कहा है । ऋतुराज कैसे इस प्यारी नगरी में वसन्तोत्सव मनाता है, यदि देखना चाहते हैं तो बनारसी बाग (विनफील्ड पार्क) में जाइये । वसुमती को कवियों ने क्यों रत्नगर्भा कहा है, तथाच वह कैसे सब रूपवानों और विविध वर्णों को अपने प्रसून मिस लजाती है, इसका उदाहरण प्रत्यक्ष देखने में आ सकता है । वहाँ के संगमरमर की बारहदरी नव युवतियों सी मानो अपने रूप से समय देव को ऐसा मोहित कर दिये है कि वह अद्यापि इसके रूप को न लूट सका या ऐसा कहें कि पुष्प सुन्दरियों के निरन्तर देखने से दिल जो जवान रहा तो शरीर भी जीर्ण न हुआ, इससे अब भी बीच पार्क में यूरपियन प्रौढ़ा कामिनी सी स्थित है, जिस पर आप यदि स्वस्थ सुमनस्क जा बैठिये तो भगवान् कुसुमायुध के अनेक कुसुम लीला महारास को सहज ही में देख सकते हैं । वा कौन जाने यही रसीले माननीय जनाब वाजिदअली शाह की पान भूमि ही रही हो । उक्त बारहदरी के चारो ओर फूलों के तख़्ते साजे जाते हैं जो सत्यतः चार लोक वा पुष्पों की चित्रकारी हैं व फूलों में माला-कार की कविता है वा वसुमती की सांझी की सजावट है । इन विलायती वसन्त के पुष्पों को निरख के यद्यपि मैं इनके रूप का कुछ साधारण उपासक नहीं, पर जैसी मनुष्य की प्रकृति

होती है कि वह अक्सर अवगुणों पर ध्यान देता है, जो वक़ौल ब्लाकी के सदा ऊपर ही रहता है, किन्तु इन वसन्त के पुष्पों के महत रूप सम्मत्ति को देख प्रायः विधि को उलहना दिया करता कि उसने ऐसे रूपवानों को गन्ध गुणों से वञ्चित कर मधुकरों से क्यों अपमान का भाजन कराया, कभी इन्हें अपठित रूपवान् धनाढ्य कहता, कभी रूपवती कुलटा कामिनी, जिनमें कि सत्चरित्रता का आमोद नहीं, कभी नवनीत सी कोमलाङ्गी यवनीयों से समता देता जिन पर चाहे आप लाख दिल से निछावर हूजिये पर उनमें प्रेम आमोद की रसमञ्जरी न पाइयेगा, कभी ज्ञान शून्य अन्तःकरण से, जिसमें भगवत् भक्ति की सुगन्धि नहीं है, उससे समता देता, कभी कभी हँसी में यह भी कह देते कि ये यूरप के मनुष्य सरीखे हैं जो रूपवान हैं धनी हैं पर ईश्वर परिचर्य्या वा भक्ति प्रिय आमोद से नितान्त वंचित हैं।

सिकन्दर बाग़ में यद्यपि बसन्त उस तैयारी से तो नहीं आता पर इससे कि यहाँ एक वृक्षों का कुंज है जिसमें आप घंटों टहलते रहिए पर सूर्य की किरणें आप को न सतायेंगी, इससे मिलटन की तरह यह प्रार्थना करने की आवश्यकता नहीं होती कि "हे भगवान् सहस्र रश्मि जब आप सुन्दरी प्राची के पार्श्व को अनुरञ्जन करें तो ख़ूबसूरत बादल रूमाल से मुँह ढापे हुए दिखाई पड़ें"। जिसमें मिलटन के प्रकृति अध्ययन में बाधा न पड़े। इसके वामपार्श्व में हरित दूर्वा नदी परिखा से युक्त पामवृक्ष रूपी पुत्र पौत्रों से भाग्यशाली शाहनजफ़ सैकड़ों वर्ष वाले फ़क़ीर की भाँति श्वेत कुन्तल संयुक्त, समय पर परिहास करता हुआ, स्थित है।

विक्टोरिया पार्क जो चौक के सन्निकट है एक हरित सागर

सरीखा है जिसके ऊँचे नीचे असमधरातल उसकी लहरों सा प्रतीत होता है और कहीं कहीं उसके बीच वृत्त पालवन्द नौका से सुहाते। यह प्रशस्त लम्बा चौड़ा हरित दूर्वा का क्षेत्र पुनीत तपोवन सा है जिसके बीच बीच में चार चार छः छः आठ आठ डेट पाम के समूह मानों तपस्वियों के वृन्द से हैं जो विहङ्गमों के अनेक गाने मिस स्वाध्याय कर रहे हैं। वा यह कहिए कि मरकतमणि की भूमि है जिसकी रक्षा करने के हेतु, ये सब चाक चौबन्द पहरूदार सरीखे चारो ओर खड़े हैं और कोयल पपीहों के निरन्तर कूज ने मिस सब को उस पर चलने से मानो वारण से करते हैं।

प्रकृति कैसी सुहावनी है, इसको विक्टोरिया पार्क प्रत्यक्ष सा करता है और यह भी प्रमाणित करता है कि चारबाक का चेला चौक कितना गर्हित और त्याज्य है। जितनी देर कि आप चौक में नज़ारेबाज़ी के लिए घूमते वा शौक़ से चहल-क़दमी करते हैं या लखनऊ शाम को कैसा बना ठना है यह देखने उसकी वीथियों में विचर रहे हैं और हरेक श्वास में धूलि और धूम्र को छान के पीते पीते ध्वस्त हो गए, और आँखें कडुवाने लगीं पर तृष्णा यही कहती कि कौन जाने कि किसी सुन्दरी का अपूर्व दर्शन हो जाय जिससे जीवन और चक्षु सफलीभूत हो जायँ, पर सन्तोष और विवेक के समझाने पर ज्योंही चौक से बाहर निकलते हैं तो सहस्रों वनस्पतियों से सुगंधित पवन प्रत्यक्ष प्राण दान देने लगता, मन जो कूप मण्डूक सा एक छोटी सी गली में बन्दी कृत था वह अब आकाश के चारों छोर का अधिपति हुआ; नक्षत्र परियों सा आकाश में मुस्कुराते देख पड़ते, भगवान कलानिधि तो मारे प्यार के उसके हरित लान (Lawn) पर मानों सोना चाहते हैं। निदान यदि थोड़े में यह कहें कि चौक में यदि माया विषय

और अविद्याओं की लीला है तो उक्त पार्क में शान्ति और प्रकृति के सौन्दर्य्य का औदार्य्य है, और ऐसाही अनुभव मनुष्य को उस समय भी होता है जब वह इस जगत के सुखों से विरक्त हो, उस निर्मल देश की ओर बढ़ता है तब हरक्षण जैसे आप चौक के पश्चात् विक्टोरिया पार्क की प्रशान्त-मर्मा स्थली को प्राप्त कर कहते कि जान आ गई, प्राण बच गए, ठीक वैसाही तो ज्ञानी और भक्त भी कहा करते कि संसार के लोहे की चक्की में पिसने से बच गए और विषय तृष्णादि की गुलामी से छुटकारा मिला, शान्ति उज्वल और पवित्र लोक में मन रमने लगा।

इसके पार्श्व में अंजुमन हाल है जो अवध के नवाबों की तसवीरों से सुसज्जित है। इन चित्रों को ध्यान पूर्वक देखने से यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि कैसे एक राज्य उन्नति और सम्पत्ति को प्राप्त कर, धीरे धीरे इन विषय-अमीरी-डाइनें उन्हें प्रमादी और बेख़बर बना, राज्य की पदवी से उतार पुनः प्राकृतिक मनुष्य सा कर देती है। आसफुद्दौला इत्यादि जो फैज़ाबाद और लखनऊ के बसाने वाले हैं उनके नेत्रों को देखने ही से त्रास, भय, मान, और प्रतिष्ठा उपजती है उनके वपु पर ध्यान देने से उनके वीर्य्य पराक्रम और साहस का पता चलता है, पर ज्यों ज्यों आप नीचे की पीढ़ी के नवाबों को देखिये त्यों त्यों मालूम होता है कि कैसे विषय आलस्य तन्द्रा और अमीरी धीरे धीरे उन्हें पराजय करती चली गई और जब अन्तिम नवाब वाजिदअली शाह साहब को देखिए तो आपको शोक से कहना पड़ेगा कि अमीरी रोग ने अब अपना इनपर पूरा अधिकार जमा लिया और अब ये रणश्रम वा धूप में गश्त करने योग्य नहीं रह गए तो फिर राजभार का

गरूतर भार इन से कैसे सँभल सकता है। मुग़ल बादशाह जब तक कि अपने को सिपाही सा रखते थे, और इस शरीर को फोड़े के समान नहीं पालते थे, तब तक जगत को ललचाने वाली दिल्ली के महत् तख़्त पर आरूढ़ थे। पर जब कि वह अपनी राज्य-रानी से न सन्तुष्ट हो आलस्य अमीरी और तास्सुब इत्यादि रानियों के वशवर्ती हुए तब से धीरे धीरे उनके हाथ से राज्य लक्ष्मी चली गई।

इसके पश्चिम छोर पर हुसेनाबाद अपने हुस्न पर और शीशे आलात रूपी दैवी अद्भुत सम्पत्ति पर उन्नत कन्धर, परमात्मा को धन्यवाद देते देते जिसका मस्तक नमाज़ियों सा काला हो गया है, स्थित है। वह देखिये विक्टोरिया टावर अपने चतुर्दिक् देखता हुआ मानो मन ही मन कहता कि अब भी क्या कोई अँगरेज़ों में ऐसा प्रतापी कीर्तिवान् समृद्धिवान् और पुत्रवान् बादशाह होगा? विक्टोरिया ऐसी शाहन्साहज़ादी अब कैसे पुनः इंगलैंड देख सकती है और रानी मालती जो इसे अङ्ग में लिपटाए हुए है यह हलचल देख प्रायः पूछा करती कि मैं कैसे सुरक्षित रहूँगी। अथवा यह टावर लखनऊ के अइय्याशों सा है जो सब से ऊँचे खड़ा हो आँखों से परीज़ादों को घूरता घूरता प्रत्यक्ष जड़ सा हो रहा है। इन्हीं उद्यानों के एक कोने में उदास मन, समय के परिवर्तन से दुखी, प्रकाण्ड शरीरवाला पुण्यात्मा मच्छी भवन शान्त, मन ही मन में नमाज़ सा पढ़ता हुआ चुपचाप खड़ा है। क़ैसर बाग़ में हम कभी नहीं जाते क्योंकि इसके देखने से जी दुखी होता है। इससेकि जो अप्सरा सरीखी यवनियों की विहार स्थली थी वहाँ एक्का और गाड़ी खड़ खड़ाते हैं, जिन महलों में चन्द्र मुखियों के पूर्णचन्द्र आनन देख पड़ते वहाँ सुफ़ेद दाढ़ी वाला

कोई कुत्सित मकान का रखवार भृत्य निष्कर्म मक्खी मारता हुआ दिखाई पड़ता है। जहाँ सङ्गीत के सरस सुर के आकाश सुरीला हो जाता था वहाँ अब साईप्रेस Cypres और सरो के वृक्ष पुरानी विस्मृत गीत को धीरे धीरे डर से साँय साँय करते गा रहे हैं। जिस बारहदरी में प्रत्यक्ष अप्सरियों का अखाड़ा उतरा करता था, वहाँ अब कपोतों का करहना वा उनके पंखों की फड़फड़ाहट सुन पड़ती है। जहाँ बड़े बड़े से आदमियों के जाते पैर थर्राते थे वहाँ मनुष्य की कौन कथा, अब ख़र और ख़च्चड़ चरते दिखाई पड़ते हैं।

चूंकि बूढ़े वेली गारद की कथा प्रायः सभी ने गाई है इससे मैं गोलियों से छिन्न भिन्न जीर्ण दिवालों की कथा जिसमें अब केवल उल्लू और भूत मात्र रहते हैं क्या सुनाऊँ।

लखनऊ वाले अपने वज़हदारी शऊर सलीका और अपने इल्म महफ़िल के कुछ ऐसे क़ायल हैं कि वे किसी और शहर को इन बातों में सनद ही नहीं देते। अपने नगर के अभिमान में प्रायः कहा करते कि अल्लाह तआला ने दूसरा ऐसा ख़ित्ता ख़ल्क़ में पैदा ही नहीं किया है। कोई कहते कि दिल्ली के शाहंशाह लोग चाहते ही रह गए कि बुड्ढी दिल्ली को भी यह हुस्न और जमाल दें, ताकि एक बार हुस्न से इतराती बीबी लखनऊ भी झेंप जाय पर यह न हुआ और उन सब का अरमान दिल ही में रह गया, क्योंकि खुदा दाद हुस्न को बनावट कैसे पा सकती है? कोई कहते कि हिन्दोस्तान में लखनऊ एक ज़ाफ़रान का टुकड़ा है और इसकी ख़ुशबू को बिचारी बुढ़िया दिल्ली कैसे पा सकती है। यदि आप कहीं भूल से कह दीजिए कि पेरिस कुछ लखनऊ से कम वैषयिक शहरदार सभ्य तथा शिष्ट नहीं है तो वे सब एक दम ही बोल उठेंगे कि

तोबाः तोबाः कभी आप ऐसी बातें ज़बान शरीफ़ पर न लाइए क्योंकि ख़्वाब में भी तो कभी जङ्गली चुड़ैल पेरिस लखनऊ का मुक़ाबिला नहीं कर सकती, और सच तो यह है कि अभी बीसों बरस पेरिस आकर लखनऊ की जूतियाँ उठाए पेस्तर की शऊरदारी का दम भर सकती है! एक साहब कहने लगे कि मैं तो यहाँ तक क़ायल हूँ कि जो लोग यूरप की सैर करने जाते हैं वे निरे भोंड़े और बेशहूर होकर लौटते हैं हमारे यहाँ की दो तीन माशूक़ जो वास्तव में परी पैकर थीं पेरिस के हुस्न नुमाइश में तशरीफ़ ले गई थीं, और वहाँ बुलडागों से आँखें लड़ा के जो आईं तो नतीजा यह हुआ कि बएवज़ आशिक़ों के बग़ल में बैठने के अब बदतमीज़ नालायक़ उनके बग़ल में बैठते हैं। बएवज़ पेचवान लगाने के, जिसकी ख़ुशबू से दीवान खाना भी मुअत्तर होता था, अब सिगरेट और चुरुट की बदबू से वहाँ बैठना दुश्वार होता है। दूसरे साहब कहते कि वहां जाने की कौन कहे जो सिर्फ़ उनका इल्म ही पढ़ लेते हैं उनमें ऐसी ऐसी नाजायज़ हरकतें और बेशऊरी आ जाती हैं, मसलन खड़े होकर पेशाब करना, टोकरी सी सिर पर टोपी रखना, चलने में घोड़ों को मात करना, वग़ैरह जो कि शराफ़त के वईद है।

लखनऊ वालों का यह अभिमान सर्वथा व्यर्थ नहीं है। जो शऊरदारी, मेहमानदारी, सभ्यता, लखनऊ वलों में है वह और नगरों में प्रायः दुर्लभ है। इसी से जब किसी और नगर के मनुष्य यहाँ आते हैं तो उनकी चाल ढाल देख, यदि लखनऊ वाले मज़ाक़ कर बैठते हैं तो कभी कभी वे लोग उन से रुष्ट भी हो जाया करते हैं और क्रोध में कह बैठते हैं कि लखनऊ तो एक मसख़रों की बस्ती है। जो कुछ हो ब्रज के पश्चात्, यदि प्यारी

भाषा कहीं की है तो लखनऊ की ; यदि बीबी उर्दू हर गलियों में किसी नगर की झाड़ू लगाती हैं तो यहीं, यदि कहीं बोलने में शहद वा फूल झड़ता है तो लखनऊ के माशूक़ों ही की ज़बान से। ऐसा कुछ प्यारा यह लखनऊ नगर है कि लोग कहते हैं, कि नवाब वाजिदअलीशाह ने मटियाबुर्ज जाना क़बूल किया पर इसे गोली और तोपों से छिन्न भिन्न होने नहीं दिया।

शरद

घन घेरो छुटिगो हरखि , चली चहूँदिसि राह ।
किया सुचैनो आय जग , शरद सूर नर नाह ॥

कास के विकास मिष जटिल तपस्वी सा, नदियों के निर्मल और शान्तता से बहने के मिष जोगियों सा, जलपक्षियों को इस ताल से उस ताल में भेजने के मिष कप्तान सा, प्रातःकाल वृक्षों से हिमाश्रु गिरा प्रिया से विरहित प्रेमी सा, करवनों के सुस्वाद फल से सञ्चित कर पक्षियों को सदावर्त बाँटने मिष नृपति सा, कमलबन में मधुकरों के झङ्कार मिष वेदपाठियों सा, खंजरीटों को चतुर्दिक् भेज कामिनियों को कटाक्ष निक्षेप की शिक्षा देनेवाला, प्रातःकाल सारे बनस्पतियों को हिमकणों से सुसज्जित कर मोतियों की खेती करने वाला, हिमालय राजधानी से सहस्रों कड़ाँकुलों को भेज दीन भारत की व्यवस्था पूछने वाला, क्षेत्रों में किसानों के सहस्रों हाथा चलाने मिष ब्राह्मण सा मार्जन करने वाला, आर्द्र होते हुए भी निष्ठुर, कमलों को पुष्पित करते हुए भी बसन्त नहीं, नीलाम्बर धारण करते हुए भी कृष्ण नहीं, खेतों के पानी भरे नालों के झरने चलाते हुए भी पावस नहीं, निर्मल चाँदनी को प्रकाशित कर,

सकल समान साज भगवान् कृष्ण के महारास की अज्ञानता से प्रतीक्षा करने वाला, ग्राम के धूम्र राक्षसों को आकाश में भागते हुए पकड़ कर, काला मूँ किये चुगुल सा बीच ही में लटकाने वाला, एक ताल के पक्षियों को दूसरे ताल में भेज पक्षियों में सम्मेलन कराने वाला, आकाश में अनेक कन्दीलों को टांग नक्षत्र लोक की विडम्बना करनेवाला, स्नान करने को जाती हुई अनेक गाती हुई अबलाओं के गाने मिष नारद सा भगवान् का कीर्तन करने वाला, रात्रि में पानी के जलकुक्कुटों के कलरव मिष भीमसेन सा अनेक बेसुरी तान लगाने वाला; ओस क्लिन्न वृक्षों को चाँदनी रात्रि में मणि से जटित करने वाला, प्यारा शरद् आकर आकाश को स्वच्छ, भूमि को पङ्क-हीन और वसुमति को सुहर्षित कर दिया।

इस हिमकाल के निर्मल गगन में कभी शरद् धुनियाँ सुफ़ैद बादलों के रुई के लच्छे वायु से विधूनित कर देवगणों के शीत के कपड़े भरने का सामान करता है, कभी पराक्रमी महावीर सा शरद् अपने वायु मस्तक पर सहस्त्रों हिम सिखरों के समान बादलों को लिए इधर उधर घूमता है। कभी शरद् के श्वेत बलाहक ऐरावत के पुत्र प्रपौत्र सदृश किसी भाँति बन्धन से मुक्त हो, उत्कट मद से उन्मादित आकाश जङ्गल में भागते फिरते हैं; कभी बादलों की फाँफी की लहरें यह जान पड़तीं मानो हिम नदी स्वर्ग से चली पर पुण्य विशेष के कारण पृथ्वी पर नहीं गिर सकी वा यह जान पड़ता कि वरुण देवने सहस्त्रों रूप के द्वीप आकाश महोदधि में बसा दिये हैं। इस ऋतु में आकाश ऐसा नीला हो जाता है कि वह भगवान् विष्णु के तन की शोभा धारण करता है और भगवान् मरुतदेव जी जाड़े के आगमन की कथा कहते और बनस्पति लोक को

उपदेश देते हैं कि उनके गिरने का समय निकट है जो कुछ जप तप करना हो कर डालें। भगवती बसुन्धरा अपने जीर्ण परिच्छद को उतार इक्षुकाएड के मिष स्वर्णमय कुन्तलों का प्रसाधन कर, नूतन गेहूँ की हलकी धानी सारी पहन, हरे हरे अरहर का दुपट्टा ओढ़, पुनः नई दुलहिन सी हो जाती है। मैं ऐसे सुखमयी और पवित्र सरस समय में प्रायः ग्राम के खेतों में विचरा करता हूँ, कभी घएटों अरहर की छाया में बैठा मीलों तक फैले पलिहर की शोभा देखता, कभी मटर की घनी हरियाली को सराहता, और कभी चना को खोटाई के त्रास से काला होता देख, हँसता। कभी सरोवरों को देखता कि सारे आकाश को उन्होंने अपने अन्तःकरण में प्रतिविम्ब मिष बसा दिया और तटस्थ वृक्षों की शोभा भी अपहरण करने लगे, जिसे देख वे ईर्ष्या से काँपने लगे, जिसमें कि उनका यथार्थ प्रतिविम्ब उसमें न पड़े। कभी छोटी छोटी नदियों को नित्य प्रति घनश्याम के बिरह से क्षीण तनु होते देख दुखी होता। कभी कुमुदिनी बन में सारस के बड़े विचार पूर्वक चलने पर कहता कि पण्डित भी तो ऐसा ही चलेगा ज्ञानी भी इसी प्रकार और प्रेम से मूर्छित भी इन्हीं के सदृश। और जब वे गर्दन उठाकर गाने लगते तब तो शरद की सब दिशायें उन्हीं के साथ गाने लगतीं। कभी दुपहर को बनों में किसी मधूक वृक्ष के सघन छाया के तले बैठे देखते कि बन, परमहंस सा, शान्त और सौम्य चुपचाप अनन्य ध्यान लगाये खड़ा है। कभी घास छीलती हुई घसियारिन के प्रेम की गीत सुन कहते कि सरसता सबी के हृदय में कुछ न कुछ रहती है। कभी चरवाहों से भूत और पिशाचों की कथा सुन हँसते और फिर कानन में अन्तर्लीन हो जाते। कभी सहस्रों लाल चुड़के और

बटेरों को, जो आनन्द पूर्वक अरहर में बैठे चुन रहे हैं, एक ताली बजा कर उड़ाने का सुख लेता। इस प्रकार अनेक कुतूहलों के साथ शरद का आनन्द अनुभव करते हैं।

प्रावृट् और शरद में इतना ही भेद है जितना विषयी और ज्ञानी मनुष्य में। यदि एक प्राणी मात्र को घर बैठने की शिक्षा देता तो दूसरा देश देशान्तर जाने की आज्ञा देता। यदि एक चञ्चल तो दूसरा शान्त का प्रत्यक्ष स्वरूप। यदि प्रावृट् गवहियों सा गाढ़ा रङ्ग पहिनता तो शरद नागरिकों सा हलका रङ्ग पसन्द करता। यदि वर्षा का मुख काला तो शरद का शुभ्र यदि एक गरज कर सब को डराता तो दूसरा कृष्ण सा नीला आकाश दिखा मन को लुभाता है।

मिरजापुर के अन्तर्गत अभीरटोला में मैं एक मित्र के यहाँ गया था। एक दिन हम सबों की राय पड़ी कि मगन दिवाने के पर्वत पर शारदीय छटा देखने चलें, अतएव हम सब मगन दिवाना को रवाना हुए। चलते चलते जब इस पर्वत की चोटी पर पहुँचे तो देखा कि वह पारिजात (हरसिंगार) वृक्षों से आच्छादित था और बीच में बीबी कहानी के राक्षस का खना हुआ एक वृहत् तालाब है जो ऐसा तृणों से आच्छादित है कि जल देवता देख ही नहीं पड़ते थे। जब हम सब सन्ध्या के नित्य कर्मों से छुट्टी पाए तो पश्चिम दिशा को भगवान् प्रभाकर को सनाथ करते देखा। वसुमती की शोभा ऐसी विचित्र, प्यारी और भली देख पड़ी, कि मैं अचम्भित सा होगया, और वाह वाह करने लगा। मैंने कहा दुष्यन्त स्वर्ग से उतरते हुये ऐसे ही प्यार भरे चक्षुओं से वसुमती को निरखे होंगे, वा जब भगवती सीता वर्ष भर के कारागार से छूट, भगवान् रामचन्द्र के पार्श्व में पुष्पक विमान पर बैठ ऊँचे आकाश से

उमड़ते हुये महोदधि कानन और शैल को ऐसे ही प्रेम भरे नैनों से देखी होगी, रोडरिक की चमकती कटार के आघात से मूर्च्छित हो पुनर्जीवित फिट्स जेम्स भी ऐसे ही प्यार भरे चक्षुओं से पृथ्वी और आकाश को प्रणाम किया होगा। ऐसी प्यारी पृथ्वी उस समय देख पड़ी कि जैसा कविता देवी कदाचित् उन अनेक दृश्यों और रंगों का वर्णन कर सकतीं, यदि स्काट के कथनानुसार प्रकृति चित्रकार अपने रंगीन दावात में कलम को डुबोने देता।

उस समय कहीं जोते हुये धवलित पलिहर के खेत चाँदी के पत्र सदृश चमक रहे थे, कहीं निकले हुए गेहूँ के खेत ऐसे हरे भरे देख पड़ते, मानो हरियाली स्वयम् डेरा डाले उस खेत में पड़ी है। कहीं सूर्य्य की किरणों से चमकता बरहा चाँदी के शलाका सा जान पड़ता और हाथा के पानी से बिखरे जलकण इन्द्र धनुष की शोभा दिखाते। हम सब पश्चिम की ओर जब पुनः परिक्रमा करते पहुँचे तो देखा कि भगवान् प्रभाकर ने पश्चिम के समुद्र के स्वर्ण मन्दिर को प्रस्थान किया, और सारी दिशा स्वर्णमयी हो गई। किन्तु प्रलम्बायमान हरितक्षेत्र जिनके बीच में छोटे पर्वतों की शृङ्खलायें ऐसी जान पड़तीं मानो हरित जल नदी के सेतु हैं अथवा हरित समुद्र के द्वीप हैं। अथवा पर्वतों को हरित मेखला प्रकृति ने पहिनाया है। कहीं हरित क्षेत्रों के बीच में अमराइयों की शोभा कुछ और ही दीख पड़ती मानो हरी फ़र्श के आम्रवृक्ष मीर फ़र्श हैं अथवा परीज़ादों के बीच में वे राक्षस हैं। इस पर्वत के पूर्व की ओर एक विस्तीर्ण झील है जो कमल और कुमुदिनी से हरा भरा और चतुर्दिश हरे जड़हन से घिरा हुआ बहुत हो भला लगता है। भगवान् प्रभाकर के अस्त होने से कमलिनी तो परम संकुचित जल में

अन्तर्लीन सी हो गई थी परन्तु कुमुदिनी तो प्रसन्नता से पुष्पित हो भगवान् निशानाथ की बाट जोह रही थी। चरवाहे अपने गौ और भेड़ों को बुलाते थे कि अब स्वच्छन्द घूम घूम कर तृण चरने का समय आ गया, आओ अब घर चलें। इस समय कहीं भेड़ों के उतरने से पर्वत का पर्वत श्याम हो रहा था। कहीं दिन भर के मूँ छिपाये हिंसकजीव अपने गह्वर के बाहर निकल जँभा रहे थे, कहीं हिरनों के गोल अपने नायक के पीछे धीरे धीरे हरित तृण को देख प्रसन्न होते चले जा रहे थे। कहीं जङ्गल के बाहर शृगालों के गोल एकत्र हो भगवान् प्रभाकर के चले जाने पर शंखनाद सा कर रहे थे जिस हर्ष का दिशाएँ प्रतिवाद कर रहीं थीं।

हरेभरे क्षेत्र, नूतन पत्रावलियों से सुसज्जित कानन, नक्षत्रों से जटित आकाश, शुक्ल पक्ष की निशा, वा राक्षस सा चढ़ा आता हुआ तूफ़ान वा दूसरे समुद्र सी, विस्तृत झील, वा घुड़दौड़ सी करती हुई नदी वा ऊँची लहरें लेकर, भगवान् चन्द्रमा के चरणों को चूमने का प्रयत्न करता हुआ महोदधि, इन सब अपूर्व दृश्यों में हमें उसी परमात्मा परमेश्वर की शोभा दिखाई पड़ती है और इसी से कौन जाने प्रकृति देवी इतनी हमें अपूर्व और विलक्षण देख पड़ती हैं। और सच भी है क्योंकि स्वामी से बिना लगन के लगाये आप कैसे उसकी कारीगरियों को सम्यक्रूप से सराह सकते हैं। कहते हैं कि ऊँचे चढ़ जाने से प्रकृति की शोभा, अत्यन्त उत्तम और सराहनीय लख पड़ती है परन्तु मेरी समझ में जब मनुष्य अपनी आत्मा में सम्यक् स्थित हो, परमात्मा के प्रेम आसव को पूर्ण रूप से पान कर लेगा तभी ऋतुओं की छटा दिखा पड़ेगी और तभी शारदीय प्रभात और संध्या का पूर्ण रूप से अनुभव मनुष्य कर सकेगा।

इति

रघुनाथ सहाय पाठक के प्रबन्ध से यूनियन प्रेस, प्रयाग में छपा।